CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

१·3

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दण्डि स्वामी विमलानन्द सरस्वती
अध्यक्ष सर्वसंघ
राजगुरुमठ ; शिवालाघाट
वाराणसी.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पाणिनि
के
उत्तराधिकारी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पाणिनि के उत्तराधिकारी

डॉ० उदयनारायण तिवारी
अध्यक्ष, हिन्दी एवं भाषाविज्ञान विभाग
जबलपुर विश्वविद्यालय, जबलपुर

लोकभारती प्रकाशन
१५-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-१

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लोकभारती प्रकाशन
१५-ए, महात्मा गांधी मार्ग
इलाहाबाद-१ द्वारा प्रकाशित

●

कॉपीराइट
डॉ० उदयनारायण तिवारी

●

प्रथम संस्करण
अप्रैल १९७१

●

माया प्रेस (प्रा०) लिमिटेड
इलाहाबाद—३ द्वारा मुद्रित

मूल्य : विद्यार्थी संस्करण ९.००
विशेष संस्करण १२.५०

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

समर्पणम्

'सरस्वती' के यशस्वी सम्पादक
एवं हिन्दी के परमोन्नायक
भैया साहब
पंडित श्रीनारायण चतुर्वेदी के
करकमलों में
सादर-सभक्ति-सप्रीति
सर्मपित

● ●

वागीश्वर्याः वरंलब्ध्वा सरस्वत्या प्रकाशकः ।
तत्त्वज्ञः राष्ट्रभाषायाः प्राणकल्पश्च यः परः ॥
विशिष्टाद्वैततत्त्वज्ञः ब्रह्मविद्या कलातिगः ।
श्रीनारायणो जयति परमब्रह्मण्य वैष्णवः ॥

प्रणम्य शिरसा भक्त्या
श्रीकरकरकराम्बुजे
उदयनारायणाख्येन
ग्रन्थोऽयं सुसमर्प्यते ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आमुख

प्रस्तुत पुस्तक, समय-समय पर लिखे गए, मेरे वारह निवन्धों का संकलन है जो 'पाणिनि के उत्तराधिकारी' नाम से साहित्य के सुरुचि-सम्पन्न जिज्ञासुओं के लिए उपलब्ध हो रही है।

भाषा तथा लिपि-सम्वन्धी समस्याओं के चिन्तकों के लिए तो इन निवन्धों में पर्याप्त सामग्री है ही, उच्चस्तरीय शिक्षण के अध्येताओं को भी अपनी-अपनी आवश्यकताओं के अनुकूल इन लेखों से मार्ग-दर्शन मिल सकेगा।

हिन्दी-साहित्य की श्रीवृद्धि में अपना विशिष्ट योगदान देनेवाली प्रसिद्ध साहित्यिक पत्रिका 'सरस्वती' के कतिपय अंकों में इनमें से कई निवन्ध प्रकाशित हो चुके हैं। अपने सुहृद एवं हिन्दी के परम उन्नायक, श्रद्धेय भैया साहव पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी के प्रति इन पंक्तियों का लेखक अत्यधिक आभारी है जिनकी वलवती प्रेरणा से इन निवन्धों की रचना हुई है।

प्रत्येक देश में किसी न किसी रूप में भाषा एवं लिपि की समस्या है और उसे हल करने में उस देश के नेता एवं विद्वान् संलग्न हैं। 'टर्की भाषा में सुधार' एवं 'साम्यवादी चीन की भाषा-समस्या' निवन्धों के पढ़ने से यह वात स्पष्ट हो जायेगी।

इनमें से अधिकांश निवन्ध मेरे अमेरिका-प्रवास के समय लिखे गये थे। आज लगभग वारह वर्षों के उपरान्त मुझे यह स्मरण भी नहीं है कि इनकी सामग्री के मूल स्रोत क्या थे? 'पालिवाङ्मय' की अधिकांश सामग्री गायगर-कृत 'पालिभाषा एवं साहित्य' से ली गई है।

पृष्ठ ७६, ७७ में ब्राह्मी से प्रसूत विभिन्न लिपियों का एक चार्ट दिया गया है। इसके पृष्ठ ७६ में २२ कालम हैं जिनका विवरण इस प्रकार है—

१. प्राचीन मौर्य लिपि, २-३, ५. उत्तर-भारतीय लिपियों का प्राचीन नमूना, ४. भव्य गुप्त लिपि, ६. उत्तरी भव्य लिपि का पूर्वी रूप, ७. तथा-कथित 'कुटिल' लिपि, ८-१०. तिव्वती लिपियाँ, ११. पस्सेपा लिपि (तिव्वती लिपि का एक रूप), १२. देवनागरी, १३. गुरुमुखी, १४. बंगला, १५. उड़िया, १६. गुजराती, १७. सिन्धी, १८. मुल्तानी, १९-२०. फिलिपाइन्स की प्राचीन लिपियाँ, २१-२२. सेल्वीज की लिपियाँ।

इसी प्रकार पृष्ठ ७७ के २१ कालमों में उल्लिखित लिपियों का विवरण इस प्रकार है :—

१-३. वर्मा की लिपियाँ, ४-५. स्याम की लिपियाँ, ६. मॉन लिपि, ७. अहोम लिपि, ८. जावा की लिपि, ९-१०. वटक लिपियाँ, ११-१२. लैम्पौङ्ग

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रेड्जङ लिपियाँ (दक्षिण-पश्चिमी सुमात्रा की लिपियाँ), १३. सिंहली लिपि, १४. कदम्ब लिपि, १५. प्राचीन चालुक्य (प्राचीन कन्नड़) लिपि, १६. मध्यभारतीय लिपि (मध्य प्रदेश तथा उत्तरी हैदराबाद में उपलब्ध लिपि), १७. तेलुगू लिपि, १८. कन्नड़ लिपि, १९. ग्रन्थ लिपि, २०. तमिल लिपि, २१. वट्टेलुट्टू लिपि (दक्षिण की हलावर्त लिपि)।

'लोकभारती' की ओर से मुद्रण कराने के दायित्व के लिए श्री पद्मधर त्रिपाठी तथा प्रूफ आदि कठिनाइयों का भार वहन करनेवाले डॉ० जयशंकर त्रिपाठी भी मेरे हार्दिक धन्यवाद के पात्र हैं।

जबलपुर
गांधी जयन्ती, १९७०.

—उदयनारायण तिवारी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अनुक्रम

१. पाणिनि के उत्तराधिकारी १
२. पाणिनि, कात्यायन तथा पतंजलि ८
३. पालि वाङ्मय १६
४. व्युत्पत्ति विज्ञान ६०
५. भारतीय लिपियों की उत्पत्ति तथा विकास ... ७४
६. हिन्दी-क्षेत्र में भाषाशास्त्र के अध्ययन की प्रगति ... १३७

७. हिन्दी के विभिन्न रूप और उनका समन्वय ... १४६
८. हिन्दी भाषा-शिक्षा की समस्या १५२
९. राष्ट्रभाषा-विषयक कतिपय प्रयोग ... १५७
१०. राष्ट्रभाषा हिन्दी : कुछ विचार ... १६३

११. साम्यवादी चीन की भाषा-समस्या ... १७०
१२. टर्की भाषा में सुधार १८५

अनुक्रमणिका २२३

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पाणिनि के उत्तराधिकारी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पाणिनि के उत्तराधिकारी

जब से यूरोप तथा अमरीका में वर्णनात्मक (Descriptive) भाषा-शास्त्र के अध्ययन का आरम्भ हुआ है, तब से संस्कृत के वैयाकरण पाणिनि का महत्त्व बढ़ गया है। संस्कृत व्याकरण के क्षेत्र में पाणिनि, कात्यायन तथा पतञ्जलि सर्वोपरि माने जाते हैं तथा 'मुनित्रय' के नाम से विख्यात हैं। पाणिनि के पूर्व अनेक वैयाकरणों के नाम तो मिलते हैं, किन्तु उनकी कृतियाँ आज उपलब्ध नहीं हैं; पर पाणिनि के सर्वांगीण व्याकरण को देखकर यह सहज में ही अनुमान किया जा सकता है कि उनके बहुत पूर्व ही, भारत में, व्याकरण की शास्त्ररूप में प्रतिष्ठा हो चुकी होगी। यूरोप के लोग अपनी सभ्यता एवं संस्कृति का संयोगसूत्र ग्रीक से जोड़ते हैं। उच्च सांस्कृतिक दृष्टि से संसार की पाँच भाषाएँ—प्राचीन चीनी, संस्कृत, अरबी, ग्रीक तथा लैटिन—श्रेष्ठ मानी जाती हैं। यूरोप की आधुनिक भाषाओं के व्याकरण में, वाक्य को आठ भागों—संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, अव्यय, उपसर्ग, संयोजक, विस्मयादि-सूचक—में वर्गीकृत करने की पद्धति, वस्तुतः ग्रीक से, लैटिन द्वारा होते हुए आई है। पहले यूरोप के लोगों को इस बात का अभिमान था कि ग्रीक लोग दर्शन से लेकर भाषा तक के चिन्तन के क्षेत्र में अप्रतिम हैं, किन्तु इधर जब से अमरीका के विद्वानों ने भाषा-शास्त्र का सूक्ष्म अध्ययन करना आरम्भ किया है, तब से यह स्पष्ट हो गया है कि कम-से-कम भाषा के क्षेत्र में जितना सूक्ष्म एवं गम्भीर चिन्तन प्राचीन भारत में हुआ था, उतना कहीं अन्यत्र नहीं हुआ। सन् १७८६ ई० में बंगाल की एशियाटिक सोसायटी के सम्मुख संस्कृत को ग्रीक तथा लैटिन से अधिक समृद्ध एवं पूर्ण बतलाते हुए विलियम जोन्स ने कहा था—

"व्याकरण विषयक रूपों तथा धातुओं में संस्कृत, ग्रीक एवं लैटिन में इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है, जो आकस्मिक नहीं हो सकता। इनमें पारस्परिक इतना अधिक सम्बन्ध है कि कोई भी भाषाशास्त्री इनका परीक्षण करके इस परिणाम पर पहुँच सकता है कि इन तीनों का स्रोत एक है। यद्यपि इस बात के लिए प्रमाण का अभाव है तथापि इसकी सहज में ही कल्पना की जा सकती है कि गॉथिक तथा केल्टिक का भी मूल स्रोत वही है जो संस्कृत का है।"

यूरोप में जोन्स के इन शब्दों का मंत्रवत् प्रभाव पड़ा। यद्यपि जोन्स के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस कथन के पूर्व ही संस्कृत यूरोप में पहुँच चुकी थी, तथापि विद्वानों ने इसके महत्त्व पर ध्यान नहीं दिया था। उस समय तक यूरोप के भाषाशास्त्री अपनी मातृभाषाओं का हिब्रू तथा अरबी से ही सम्बन्ध जोड़ने में व्यस्त थे। जोन्स की विचारधारा ने यूरोप के भाषाशास्त्रियों का स्पष्ट रूप से मार्ग-प्रदर्शन किया और वे भाषा के सम्बन्ध में वैज्ञानिक ढंग से विचार करने के लिए बाध्य हुए। भाषाशास्त्र के लिए इसका परिणाम भी अत्यधिक शुभ हुआ और यूरोप के विद्वानों ने भारोपीय परिवार की भाषाओं[1] का, गम्भीर, तुलनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन प्रस्तुत किया। किन्तु इतना होते हुए भी, भाषा तथा व्याकरण-शास्त्र के सम्बन्ध में पाणिनि ने जो अभूतपूर्व कार्य किया था, उसका यूरोप के विद्वान्, पूर्ण रूप से मूल्यांकन न कर सके। इधर जब से यूरोप तथा अमरीका के भाषाशास्त्री, भाषा के अन्तस्तल में प्रवेश करने का प्रयत्न करने लगे तथा जब उन्होंने देखा कि प्रत्येक भाषा का अपना गठन अथवा अपना ढाँचा होता है, इस ढाँचे का पता केवल उस भाषा के विविध तत्त्वों के सूक्ष्म विश्लेषण से ही ज्ञात हो सकता है और वास्तव में इस ढाँचे की सूत्ररूप में व्याख्या ही उस भाषा के व्याकरण का मुख्य विषय है, तब उन्हें पाणिनि का महत्त्व ज्ञात हुआ। उन्होंने इस बात का अनुभव किया कि आधुनिक भाषाओं के विश्लेषण के लिए जिस प्रक्रिया (Methodology) की आवश्यकता है, उसकी पूर्ण परिणति तो भारत में, ईसा के जन्म से पाँच सौ वर्ष पूर्व[2] पाणिनि की कृति अष्टाध्यायी में हो चुकी थी। इस तत्त्व के ज्ञात होते ही यूरोप तथा अमरीका के भाषाशास्त्री पाणिनि का दाय अथवा उत्तराधिकार प्राप्त करने में संलग्न हो गये।

ऊपर के तथ्य को समझने के लिए हमें यूरोप तथा अमरीका के भाषाशास्त्र के इतिहास को संक्षेप में समझना पड़ेगा। इसके साथ ही पाणिनि तथा ग्रीक एवं लैटिन वैयाकरणों के अन्तर को भी जानना होगा। जहाँ तक पाणिनि की कृति का प्रश्न है, उसका धर्म तथा दर्शन से कोई सम्बन्ध नहीं है। उस युग में, शिष्ट लोगों में प्रचलित भाषा का विवरण है। इसके विपरीत ग्रीक एवं लैटिन के व्याकरण पर धर्म एवं दर्शन की स्पष्ट छाप है और वे पाणिनि

---

१. भारोपीय के अन्तर्गत मुख्य रूप से केल्तिक, इतालीय, ग्रीक, आर्मेनीय, आल्बनीय, बाल्तोस्लाविक, ट्यूटनिक या जर्मेनिक, आर्यभाषा (संस्कृत तथा ईरानीय) हत्ती या खत्ती एवं तोखारीय भाषाओं की गणना है।

२. यूरोप के तथा अनेक भारतीय विद्वान् पाणिनि का समय यही मानते हैं, यद्यपि कई भारतीय विद्वान् इसके पक्ष में नहीं हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के व्याकरण की भाँति वर्णनात्मक भी नहीं हैं। पाणिनि तथा संस्कृत के सम्बन्ध में जो अनेक भ्रान्तिपूर्ण बातों का प्रचार हमारे देश में हो गया है, उनमें से एक यह है कि संस्कृत कृत्रिम तथा मृत भाषा है और पाणिनि ने इसका व्याकरण लिखकर इसकी समाधि खड़ी कर दी है। यह विचारधारा गत शताब्दि के कतिपय यूरोपीय विद्वानों के उर्वर मस्तिष्क से प्रसूत होकर भारत पहुँची और आज भी उनके मानस पुत्र इसकी रट लगाये जा रहे हैं। सच बात तो यह है कि पाणिनि ने जिस संस्कृत का व्याकरण लिखा था, वह उस युग में उसी रूप में सजीव भाषा थी, जिस रूप में आज हिन्दी, अँगरेजी, फ्रेंच, जर्मन तथा रूसी हैं। जिस प्रकार आधुनिक भाषाओं में सामाजिक स्तर के अनुसार यत्किंचित् भेद है, उसी प्रकार पाणिनि-काल की संस्कृत में भी रहा होगा। पाणिनि ने उस युग के ब्राह्मण-गुरुकुलों में प्रचलित शिष्ट उदीच्य (पश्चिमी पंजाब की) भाषा को लेकर उसका वर्णनात्मक व्याकरण तैयार कर दिया। आज अँगरेजी, फ्रेंच, हिब्रू तथा अमरीका की विविध बोलियों के वर्णनात्मक व्याकरण लिखे जा रहे हैं।

ऊपर यह कहा जा चुका है कि संस्कृत की उपलब्धि के बाद यूरोप में भाषाशास्त्र के वैज्ञानिक अध्ययन का सूत्रपात हुआ था। इस अध्ययन पर प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से पाणिनि का प्रभाव परिलक्षित होता है। सर्व-प्रथम हमें यह प्रभाव फ्रेडरिक मूलर (१८७६-१८८८) तथा फिक (१९१०) की भारोपीयेतर भाषाओं की कृतियों में दृष्टिगोचर होता है। यूरोप के इस युग के अनेक विद्वानों ने भाषा एवं ध्वनि का वैज्ञानिक अध्ययन किया, जिनमें वॉन हम्बोल्ट (१८३६-१८३९), स्टिथल (१८६०), वॉन डेर गैबेलेंज, वुण्ड (१९००-१९०९), हेमहोल्ज (१८६३), केम्पलेन (१७९१), विलिस (१८३०) के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। १९वीं शताब्दी के अन्त तक में इस रूप में भाषाशास्त्र के अध्ययन की शुरूआत हुई थी। वस्तुतः इसने बीसवीं शताब्दी के अध्ययन के मार्ग को प्रशस्त किया। यह बात अमरीका तथा यूरोप दोनों के सम्बन्ध में कही जा सकती है। अमरीका के प्रख्यात भाषाशास्त्री स्वर्गीय ब्लूम फील्ड, १९वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में, भाषाशास्त्र की गति-विधि पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं—"इस युग में, एक ओर, ऐतिहासिक तुलनात्मक तथा दूसरी ओर दार्शनिक विवरणात्मक भाषा-सम्बन्धी विचारधारा के समन्वय से कतिपय ऐसे सिद्धान्त सामने आये, जो १९वीं शताब्दी के भारोपीय भाषाओं के अध्येताओं को उपलब्ध न हो सके थे। इन सिद्धान्तों के हरमन पाउल की कृति में हमें दर्शन होते हैं। प्रायः भाषा-सम्बन्धी सभी ऐतिहासिक अध्ययनों का आधार दो या दो से अधिक वर्णनात्मक सामग्री की तुलना होती है। इन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अध्ययनों की शुद्धता वस्तुतः सामग्री पर निर्भर करती है।"

१९वीं शताब्दी के अन्तिम चरण के सबसे प्रतिभाशाली भाषाशास्त्री फर्डिनेण्ड डि सासे (१८५७ से १९१३) थे, जिन्होंने भाषा के गठन-सम्बन्धी अध्ययन तथा वर्णनात्मक वर्णन पर विशेष बल दिया। इसी समय ध्वनि-ग्राम (Phoneme) का अनुसन्धान हुआ, जिससे भाषा के विश्लेषण का कार्य सरल हो गया। इसके आविष्कर्ता दो रूसी भाषाशास्त्री बॉडविन डि कुर्तने तथा उनके शिष्य क्रुजेवस्की (१८८१) थे। प्राहा विचार-शैली (Prague School) के भाषाशास्त्री, रोमन याकोब्सन तथा त्रुबेस्क्वाय ने अपने नवीन अनुसन्धानों से भाषाशास्त्र के अध्ययन को पर्याप्त प्रगति प्रदान की है। अमरीका तो आज ध्वनि-शास्त्र तथा गठन-सम्बन्धी (Structural) एवं वर्णनात्मक भाषाशास्त्र (Descriptive linguistics) के अध्ययन का विराट् केन्द्र हो रहा है। यहाँ एक ओर तो बाइबिल के अनुवाद के लिए मिशनरियों ने ध्वनि एवं भाषाशास्त्र के अंध्ययन का केन्द्र स्थापित कर रखा है, तो दूसरी ओर यहाँ के प्रत्येक विश्वविद्यालय में भाषाशास्त्र के गम्भीर अध्ययन का कार्यक्रम चल रहा है। अमरीका की पिछली पीढ़ी के भाषाशास्त्रियों में फ्रैंजबोआ, लिओनार्ड ब्लूमफील्ड, एडवर्ड सापिर तथा बेंजामिन ली हूर्फ प्रसिद्ध हैं। वर्त्तमान पीढ़ी के भाषाशास्त्रियों में पेन्सिलवानिया विश्वविद्यालय के प्रो० जैलिग हैरिस तथा कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय की कुमारी मेरी हास का स्थान बहुत ऊँचा है। मिशनरी भाषाशास्त्रियों में पाइक तथा नाइडा प्रसिद्ध हैं। प्राहा तथा अमरीका के अतिरिक्त डेनमार्क में भी भाषाशास्त्र के अध्ययन का एक केन्द्र है, जो "ग्लासमेटिक" विचारधारा के नाम से प्रसिद्ध है। 'ग्लॉस' ग्रीक भाषा का शब्द है। इसका अर्थ है 'भाषा'। इस विचारधारा के भाषाशास्त्रियों में लुई हेमसेव, एच० जे० उदाल एवं कुमारी जोर्गेन जोर्गेन्सन मुख्य हैं।

ऊपर ध्वनि-ग्राम (फोनीम) शब्द का व्यवहार किया गया है। यहाँ इसे स्पष्टतया समझ लेना आवश्यक है। हिन्दी में पता, पत्ता, पुर, पुण्य तथा पौत्र में प्रयुक्त प-ध्वनि को हम ओष्ठ के नाम से अभिहित करते हैं, किन्तु यदि हम इन शब्दों में प-ध्वनि का विश्लेषण करें तो ज्ञात होगा कि यद्यपि सुनने में प-ध्वनि सर्वत्र समान प्रतीत होती है, किन्तु इनमें पारस्परिक भिन्नता है, जो इनके उच्चारण-प्रयत्न की भिन्नता के कारण है। इनमें 'पता' के 'प' के उच्चारण में दोनों होंठ उतनी सघनता से नहीं मिलते, जितना 'पत्ता' के 'प' के उच्चारण में। इसी प्रकार 'पुर', 'पुण्य' तथा 'पौत्र' की प-ध्वनि की भी दशा है। यदि हम ऊपर के शब्दों में प-ध्वनि का विश्लेषण करें तो इन्हें क्रमशः 'प' 'प'^{1}, त^2, प^3, प^4 के रूप में लिख सकते हैं। यहाँ 'प' के साथ जो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

१,२,३,४ अंकों का प्रयोग किया गया है, वह केवल उच्चारण की भिन्नता प्रदर्शित करने के लिए है, गणितीय-मान प्रदर्शित करने के लिए नहीं। सूक्ष्म विश्लेषण से 'प'ध्वनि में चाहे जितना भी अन्तर हो, किन्तु इनकी निर्माण-पद्धति तथा इनके ध्वन्यात्मक रूप एक वर्ग के अन्तर्गत हैं। दूसरे शब्दों में ये ओष्ठ ध्वनियाँ हैं और कोई भी हिन्दी-भाषा-भाषी इन पाँचों शब्दों के 'प' के उच्चारण में किसी प्रकार के अन्तर का अनुभव नहीं करता। यहाँ यह बात स्पष्ट रूप से समझनी चाहिए कि "प" ध्वनिग्राम वस्तुतः एक वंश का परिचायक है और इसके अन्तर्गत, अलग-अलग भाषण-ध्वनियों, प१, प२, प३ प४ की सत्ता सदस्य के रूप में वर्त्तमान है। यदि हमें व्यावहारिक रूप में 'प' ध्वनिग्राम का ज्ञान न हो तो हमें प१ ,प२, प३, प४ आदि के लिए अन्य प्रतीकों अथवा वर्णों का निर्माण करना पड़ेगा और तब हमारी वर्णमाला भी चीनी और जापानी की भाँति ही जटिल हो जायगी।

महर्षि पाणिनि ध्वनिग्राम से पूर्णतया परिचित थे और उन्होंने चौदह माहेश्वर-सूत्रों के अन्तर्गत इन्हें बाँधा था।[1] यही बात ध्वनिशास्त्र (Phonetics) के सम्बन्ध में भी है। पाणिनि ने अपने व्याकरण में वर्णों के उच्चारण-स्थान, मात्राकाल, उदात्त, अनुदात्त, स्वरित आदि के सम्बन्ध में भी विचार किया है। पदग्राम (Morpheme) का भी पाणिनि को ज्ञान था और शब्दों की विश्लेषणात्मक पद्धति के तो वे पूर्ण ज्ञाता थे। इसी प्रकार उन्होंने जो परिभाषाएँ दी हैं, वे एक रूप से उदाहरणों में लागू होती हैं और उनके अपवाद नहीं मिलते। संक्षेप में भाषा के अध्ययन के लिए जिस प्रक्रिया को वर्णनात्मक भाषा-शास्त्री (Descriptive Linguists) बीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण से अपनाने लगे हैं, वह पाणिनि को ईसा से ५०० वर्ष पूर्व ही ज्ञात थी। इस बात का अनुभव करके आज अमरीका का भाषाशास्त्री महर्षि पाणिनि के प्रति नतमस्तक हो जाता है और भावातिरेक से, उसके हृदय से श्रद्धासंवलित उद्गार निकल पड़ते हैं। इस शताब्दी के महान् भाषाशास्त्री स्वर्गीय ब्लूमफील्ड ने अपनी पुस्तक में कई स्थानों पर इस प्रकार के उद्गार प्रकट किए हैं। आप लिखते हैं—

(वास्तव में) वह भारत देश था जहाँ ऐसे ज्ञान का उदय हुआ, जो यूरोप के लोगों की भाषा-सम्बन्धी विचारधारा में क्रान्तिकारी परिवर्तन उपस्थित करनेवाला था। . . . . जिस प्रकार आज हमारे देश में विभिन्न वर्ग के लोगों

---

१. आधुनिक भाषाविद् 'ङ' को ध्वनिग्राम नहीं मानते। इनके अनुसार अनुरूपता (Symmetry) के लिए महर्षि ने इसे रखा है। —लेखक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

की भाषा में अन्तर है, उसी प्रकार (प्राचीन काल में) हिन्दुओं में भी विभिन्न सामाजिक स्तर के लोगों की भाषा में अन्तर था। उस समय कुछ ऐसी परिस्थिति आ गई थी कि उच्चवर्ग के लोग निम्नवर्ग के लोगों की भाषा को अपनाने के लिए बाध्य हो रहे थे। ऐसी स्थिति में हिन्दू वैयाकरणों का ध्यान वैदिक भाषा की ओर से उच्चवर्ग के लोगों की भाषा की ओर गया और वे उस भाषा के नियम-उपनियम बनाने में प्रवृत्त हुए जिसे आज संस्कृत कहते हैं। समय की प्रगति से इस भाषा के व्यवस्थित व्याकरण एवं कोश का निर्माण हुआ। (ऐसा प्रतीत होता है कि) पाणिनि के व्याकरण की रचना के पूर्व वैयाकरणों की कई पीढ़ियाँ गुजर गई होंगी। पाणिनि के व्याकरण की रचना ३५० ई० पूर्व—२५० ई० पू० में हुई होगी। यह व्याकरण वस्तुतः मानव-ज्ञान का सर्वोत्कृष्ट प्रतीक है। इसमें वैयाकरण ने अपनी भाषा के शब्दरूपों, क्रियारूपों एवं शब्द-निर्माण-सम्बन्धी सूक्ष्मातिसूक्ष्म नियम दिये हैं। आज तक संसार की किसी भी भाषा का इतना पूर्ण विवरण उपलब्ध नहीं है। आगे चलकर, संस्कृत जो ब्राह्मण-संस्कृति से ओत-प्रोत भारत की, साहित्यक एवं राज्य-भाषा बनी, उसका आंशिक कारण पाणिनि का व्याकरण भी था। जब भारत में संस्कृत किसी की मातृभाषा नहीं रह गई, उसके बहुत दिनों बाद तक (इसी व्याकरण के कारण) यह विद्वानों तथा धर्म की भाषा रही।...यदि यूरोप के विद्वानों को संस्कृत के वर्णनात्मक व्याकरण की भाँति ही ग्रीक एवं लैटिन के व्याकरण उपलब्ध होते तो भारोपीय भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन आज की अपेक्षा कहीं अधिक तीव्रगति से एवं शुद्ध रूप में होता।

अपने सन् १९४० के दिसम्बर के एक लेख में, प्रसिद्ध भाषाशास्त्री स्वर्गीय श्री बेंजामिन ली ह्वर्फ, भाषाशास्त्र के विषय में अपने विचार प्रकट करते हुए पाणिनि के सम्बन्ध में लिखते हैं —

यद्यपि भाषाशास्त्र बहुत प्राचीन विज्ञान है तथापि इसका आधुनिक प्रयोगात्मक रूप, जो अलिखित भाषा के विश्लेषण पर जोर देता है, सर्वथा आधुनिक है। जहाँ तक हमें ज्ञात है, आज के रूप में ही, ईसा से कई शताब्दी पूर्व, पाणिनि ने, इस विज्ञान का शिलान्यास किया था। पाणिनि ने उस युग में वह ज्ञान प्राप्त कर लिया था, जो हमें आज उपलब्ध हुआ है। (संस्कृत) भाषा के वर्णन अथवा संस्कृत भाषा को नियमबद्ध करने के लिए पाणिनि के सूत्र बीजगणित के जटिल सूत्रों (फार्मूलों) की भाँति हैं। ग्रीक लोगों ने वस्तुतः इस विज्ञान (भाषाशास्त्र) की अधोगति कर रखी थी। इनकी कृतियों से ज्ञात होता है कि वैज्ञानिक विचारक के रूप में, हिन्दुओं के मुकाबले में, ये (ग्रीक लोग) कितने अधिक निम्नस्तर के थे। (सच तो यह है कि) उनकी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भ्रान्तिपूर्ण विचारधारा का प्रभाव प्रायः दो सहस्र वर्षों तक चलता रहा। (वास्तव में) १९वीं शताब्दी के आरम्भ से, जब से पश्चिम ने पाणिनि को प्राप्त किया है, तभी से आधुनिक वैज्ञानिक भाषाशास्त्र का आरम्भ होता है।

सम्प्रति अमरीका के कई विश्वविद्यालयों में भाषाशास्त्र के अध्ययन का कार्य अत्यधिक तीव्रगति से चल रहा है। यद्यपि मुख्य रूप से इस अध्ययन का आधार वर्णनात्मक भाषाशास्त्र है तथापि यहाँ के अधिकांश भाषाशास्त्री संस्कृत भाषा तथा पाणिनि से पूर्णतया परिचित हैं तथा वे अपना संयोग-सूत्र पाणिनि से जोड़ने एवं उनका उत्तराधिकारी बनने में गौरव का अनुभव करते हैं। क्या पाणिनि के वास्तविक उत्तराधिकारी भी इनसे शिक्षा लेंगे ?

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पाणिनि, कात्यायन तथा पतंजलि

पाणिनि, कात्यायन तथा पतंजलि इन तीनों को संस्कृत व्याकरण के मुनित्रय के नाम से अभिहित किया जाता है; यहाँ इन तीनों के सम्वन्ध में संक्षेप में विचार किया जाता है ।

पाणिनि का जीवन तथा स्थिति-काल

लौकिक संस्कृत भाषा की भागीरथी को भारत की पुण्यभूमि में प्रवाहित करनेवाले, पाणिनि का नाम संस्कृत साहित्य में सदैव अमर रहेगा । उनके समय के सम्वन्ध में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है । युधिष्ठिर मीमांसक एक ओर जहाँ उनका समय विक्रम संवत् पूर्व अट्ठाइस सौ वर्ष मानते हैं वहाँ, पं० सत्यव्रतसामाश्रमी उनका समय ईसा पूर्व चौवीस सौ वर्ष स्थिर करने के पक्ष में हैं । वेवर तथा मैक्समूलर के अनुसार पाणिनि ईसा पूर्व ३५० में वर्तमान थे । किन्तु डा० गोर्डस्कूटर एवं भण्डारकर उनका समय ईसा पूर्व पाँच सौ निर्धारित करते हैं । सत्य तो यह है कि जव तक वैदिक साहित्य के विभिन्न स्तरों का समय निर्धारित न हो जाय, तव तक पाणिनि के स्थितिकाल के विषय में अन्तिम निर्णय देना कठिन है ।

श्री पुरुषोत्तम देव ने, अपने "त्रिकाण्ड शेष कोश" में पाणिनि के छह नामों का उल्लेख किया है: यथा—१. पाणिनि, २. पाणिन, ३. दाक्षीपुत्र, ४. शालंकि, ५-शालातुरीय तथा ६. आहिक । इनमें से पाणिनि नाम ही लोक-प्रसिद्ध है । दाक्षीपुत्र नाम संज्ञा के विषय में यह तथ्य ज्ञातव्य है कि इनकी माता का नाम दाक्षी था । प्राचीन काल में माता के नाम में पुत्र शब्द संयुक्त कर नामकरण की प्रथा प्रचलित थी, यथा सारिपुत्र । शालातुरीय नाम देश-परक है । विद्वानों के अनुसार वे पश्चिमी पंजाव के अटक जिले (अव पाकिस्तान) के वर्तमान लाहुर ग्राम में आविर्भूत हुए थे । इस लाहुर का ही प्राचीन नाम शालातुर था । यह ग्राम वस्तुतः पाणिनि का अभिजन था । यहाँ अभिजन और निवास के भी अन्तर को जान लेना आवश्यक है । अभिजन का तात्पर्य है पूर्वजों का निवास-स्थान, निवास से अपने वासस्थान का वोध होता है । इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि पाणिनि के पूर्वज शालातुर ग्राम में वसते थे । किन्तु पाणिनि कहीं अन्यत्र रहने लगे थे ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पंचतंत्र के एक कथानक के अनुसार पाणिनि की मृत्यु सिंह के द्वारा हुई थी। वैयाकरणों में यह किंवदन्ती है कि यह घटना त्रयोदशी को घटित हुई थी। मास और पक्ष का निश्चय न होने से पाणिनि-वैयाकरण त्रयोदशी को आज भी अनध्याय करते हैं। यह परिपाटी काशी में आज भी प्रचलित है।

पाणिनीय अष्टाध्यायी के अनुशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि पाणिनि केवल शब्द-शास्त्र के ज्ञाता ही नहीं थे, अपितु समस्त प्राचीन वाङ्मय उनके लिए हस्तामलकवत् था। वैदिक साहित्य के अतिरिक्त भूगोल, इतिहास, मुद्रा-शास्त्र एवं लोकव्यवहार का उन्हें अद्वितीय ज्ञान था। महाभाष्यकार पतंजलि उनके प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करते हुए लिखते हैं—

"दर्भ से पवित्रपाणि होकर आचार्य ने, शुद्ध एकान्त स्थान में, पूर्वाभिमुख बैठकर एकाग्र चित्त होकर, अत्यन्त प्रयत्नपूर्वक सूत्रों की रचना की है, अतः उनमें एक वर्ण भी व्यर्थ नहीं हो सकता। इतने बड़े सूत्र के व्यर्थ होने की आशंका ही नहीं करनी चाहिए।"

प्रसिद्ध वैयाकरण जयादित्य उद्‌गार प्रकट करते हुए लिखते हैं:—"सूत्रकार की दृष्टि बड़ी सूक्ष्म है। वे साधारण स्वर की भी उपेक्षा नहीं कर सकते।" पातंजल महाभाष्य से ज्ञात होता है कि "कौत्स" पाणिनि के विशिष्ट शिष्य थे। पाणिनि के अन्य व्याकरण-ग्रन्थ, धातु-पाठ, गण-पाठ, उणादि-सूत्र, लिंगानु-शासन बताये जाते हैं। उणादि पाठ कात्यायन-प्रणीत प्रतीत होता है। अष्टाध्यायी की वृत्ति स्वयं पाणिनि के प्रवचनों का प्रतिरूप है। पाताल-विजय अथवा जाम्बवती-विजय नामक महाकाव्य के रचनाकार के रूप में भी पाणिनि की ख्याति है। यद्यपि यह अभी भी विवाद का विषय है। द्विरूप कोश, उनका एक कोश-ग्रन्थ बताया जाता है।

अष्टाध्यायी की रूपरेखा

पाणिनि के ग्रन्थ का नाम अष्टाध्यायी है। जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, इसमें आठ अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय के चार छोटे भाग हैं जिन्हें "पाद" कहते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण अष्टाध्यायी में ३२ 'पाद' हैं। प्रत्येक 'पाद' में जो व्याकरण-सम्बन्धी नियम हैं उन्हें सूत्र कहते हैं। सूत्रों को किस प्रकार संक्षिप्त बनाया जाय, और उनकी स्पष्टता भी बनी रहे, इसके लिए पाणिनि ने कुछ नियम बना लिये थे जिनका उन्होंने अष्टाध्यायी में उल्लेख किया है।

पाणिनि ने अनुवृत्ति के द्वारा पूर्व के सूत्रों में प्रयुक्त शब्दों को बाद में आनेवाले सूत्रों में पुनरावृत्ति से बचाया है। इसी प्रकार अष्टाध्यायी में उन्होंने सूत्रों को इस क्रम से सजाया है कि यदि किसी शब्द की सिद्धि में दो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सूत्रों का समान रूप से व्यवहार आवश्यक प्रतीत होता हो तो 'पूर्वत्रासिद्धम्' के अनुसार, पूर्व वाला सूत्र ही व्यवहार्य होता है। पाणिनीय सूत्रों की रचना-शैली इतनी संक्षिप्त है कि बाद के वैयाकरणों ने यहाँ तक लिख डाला कि यदि सूत्र के शब्दों में, आधी मात्रा अर्थात् एक व्यंजन की कमी हो जाये और अर्थ में व्यत्यय न हो, तो सूत्र रचनेवाले को, पुत्रोत्पन्न होने के समान आनन्द होता है। "अर्धमात्रा- लाघवेन वैयाकरणाः पुत्रोत्सवं मन्यन्ते"। पाणिनि के सूत्रों के विषय में यह उल्लेखनीय है कि संक्षिप्त होते हुए भी उन्हें क्लिष्ट या दुरूह नहीं कहा जा सकता। इस सम्बन्ध में वास्तविक बात तो यह है कि यदि सूत्रों के अर्थ करने की शैली को, थोड़े अभ्यास से समझ लिया जाये तो संस्कृत भाषा के नियम सूत्रों की सहायता से शीघ्रता से बोधगम्य हो जाते हैं। पाणिनि के अष्टाध्यायी में कुल ३९९५ सूत्र हैं। पाणिनि व्याकरण की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने धातुओं से शब्द-निर्माण की प्रक्रिया को स्वीकार किया है। इसके लिए उन्होंने उस समय की भाषा में प्रचलित धातुओं का एक बृहत् संकलन किया है, जो पाणिनीय धातु पाठ के नाम से अभिहित किया जाता है। इसमें १९४३ धातुएँ हैं। इसकी एक यह भी विशेषता है कि इसमें उदीच्य, प्रतीच्य और प्राच्य चारों ओर प्रचलित संस्कृत भाषा की विभिन्न धातुएँ समाहित हैं। पाणिनि के सम्बन्ध में यह बात भी उल्लेखनीय है कि प्राचीन वैयाकरणों में, जहाँ विवाद या अलग-अलग मतों का आग्रह था, वहाँ आचार्य ने दोनों मतों में समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया है।

उदाहरणार्थ, 'उणादि' प्रत्यय आवश्यक है अथवा नहीं, इस बात को लेकर वैयाकरणों में पर्याप्त मतभेद है। प्रसिद्ध वैयाकरण शाकटायन का यह स्पष्ट मत था, कि धातु में उणादि प्रत्यय जोड़कर, संज्ञा शब्द सिद्ध किए जा सकते हैं। सम्प्रति जो उणादि सूत्र उपलब्ध हैं, उनके प्रणेता, सम्भवतः शाकटायन अथवा उनके मतानुयायी थे। पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी में अलग से कोई 'उणादि' पाठ नहीं बनाया, किन्तु उन्हें यह स्पष्ट प्रतीत हुआ कि कुछ शब्दों की सिद्धि उणादि प्रत्ययों द्वारा की जा सकती है। अतएव उन्होंने "उणादयो बहुलम्" ३।३।१ सूत्र लिखकर, उणादि शैली से शब्द सिद्ध करने की प्रक्रिया पर अपनी स्वीकृति दी तथा 'बहुलम्' कहकर यह छूट भी दी कि इस दिशा में यथेच्छ व्यवहार हो सकता है।

पाणिनि के विराट व्यक्तित्व के प्रभाव में, उनके समकालीन तथा परवर्ती अनेक उद्भट वैयाकरणों का अस्तित्व क्षीण-प्रभ रह गया। आज भी संस्कृत वाङ्मय के इने-गिने आचार्यों के बीच उनका महत्त्व ध्रुवतारे की तरह स्थायी है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अष्टाध्यायी के वार्त्तिककार

पाणिनि कृत अष्टाध्यायी पर अनेक आचार्यों ने वार्तिक पाठ का प्रणयन किया, किन्तु इनके ग्रन्थ आज अनुपलब्ध हैं। महाभाष्य में निम्नलिखित वार्तिककारों के नामों का उल्लेख मिलता है—

१. कात्य या कात्यायन
२. भारद्वाज
३. सुनाग
४. क्रोष्टा
५. वाडव

इनके अतिरिक्त महाभाष्य की टीकाओं में दो नाम और मिलते हैं। वे हैं—

६. व्याघ्रभूति
७. वैयाघ्रपाद

कई वैयाकरणों ने तो वार्तिककार के लिए वाक्यकार शब्द का प्रयोग किया है। एक ने तो उन्हें पदकार की भी संज्ञा दी है। किन्तु पदकार वास्तव में भाष्यकार महर्षि पतंजलि के लिए प्रत्युक्त होता है। वार्तिक का लक्षण है—

> उक्तानुक्तदुरुक्तानां चिन्ता यत्र प्रवर्तते ।
> तं ग्रन्थं वार्तिकं प्राहुर्वार्तिकज्ञा मनीषिणः ॥

अर्थात् जिस ग्रन्थ में सूत्रकार द्वारा उक्त, अनुक्त और दुरुक्त विषयों पर विचार किया गया हो, उसे विद्वानों ने वार्तिक की संज्ञा दी है।

वार्तिककारों में कात्यायन का नाम सर्वश्रेष्ठ माना जाता है, अतएव यहाँ उनके सम्बन्ध में विचार किया जाता है।

कात्यायन

प्रसिद्ध वार्तिककार कात्यायन के अन्य नाम पुनर्वसु, मेधाजित् और वररुचि भी मिलते हैं। पंडित युधिष्ठिर मीमांसक के अनुसार याज्ञवल्क्य के पौत्र कात्यायन के पुत्र, "वररुचि कात्यायन" ही अष्टाध्यायी के वार्तिककार हैं।

पाश्चात्य पण्डितों के अनुसार कात्यायन का समय, ईसा से ५०० वर्ष पूर्व से ३५० वर्ष पूर्व के बीच में है। किन्तु युधिष्ठिर मीमांसक इनका समय विक्रम पूर्व २७०० वर्ष मानते हैं।

महाभाष्य से यह सूचना मिलती है—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

"प्रिय तद्धिता दाक्षिणात्याः यथा लोके वेदे चेति प्रयोक्तव्यं लौकिकेषु वैदिकेषु प्रयुज्यते ।"

इससे ज्ञात होता है कि कात्यायन दाक्षिणात्य थे। पतंजलि ने कात्यायन के लिए "भगवान्" शब्द का प्रयोग किया है, "प्रोवाच भगवांस्तु कात्यः" जो, स्वतः प्रमाण है कि कात्यायन ने अपने युग में अपूर्व ख्याति अर्जित कर ली थी।

कात्यायन-कृत वार्तिक

कात्यायन विरचित वार्तिकों की संख्या डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार लगभग सवा चार हजार हैं। डा० अग्रवाल ने 'पाणिनि परिचय' नामक अपनी कृति में लिखा है कि कात्यायन के बारे में यह बात गढ़ ली गई है कि वे पाणिनि के यश से कुढ़ते थे, और उन्होंने वक्रदृष्टि से सूत्रों में त्रुटि निकालने के लिए वार्तिक बनाए। कहाँ पाणिनीय-व्याकरण के सूत्रों के सम्बन्ध में इतना महान् परिश्रम और कहाँ उन पर यह लांछन! सच तो यह है कि कात्यायन ने वार्तिक रचकर पाणिनीय शास्त्र को अत्यधिक निखार दिया है। जहाँ तक वार्तिकों का सम्बन्ध है, उन्होंने एक-एक शब्द अलग करके उसका अर्थ समझाया है। इस सरल शैली का नाम चूर्णि है।

डा० वेलवेलकर ने उचित ही कहा है कि कात्यायन के वार्तिक का लक्ष्य पाणिनि के सूत्रों में संशोधन और परिवर्धन है। इतना ही नहीं, कात्यायन पाणिनीय शास्त्र के अभावों के अनुपूरक हैं। यथार्थ तो यह है कि कात्यायन-विरचित वार्तिक पाणिनीय व्याकरण के ऐसे आवश्यक अंग हैं जिनके अभाव में पाणिनि की शब्द-सिद्धि अपूर्ण ही कही जाएगी।

भाष्यकार पतंजलि

पाणिनीय व्याकरण पर महाभाष्य की रचना करके पतंजलि ने अक्षय कीर्ति अर्जित की है। यह परम आश्चर्य की बात है कि उन्होंने महाभाष्य जैसी अपनी विशालतम कृति में आत्म-प्रकाशन नहीं किया। कतिपय विद्वानों का अनुमान है कि पतंजलि की जन्मभूमि कश्मीर थी। महाभाष्य ३।२।१२३ से ज्ञात होता है कि वे बहुधा पाटलिपुत्र में निवास करते थे। महाभाष्य के अन्तर्साक्ष्य के कतिपय स्थल प्रमाणित करते हैं कि वे मथुरा, साकेत, कौशाम्बी, आदि स्थानों से भलीभाँति परिचित थे।

विभिन्न ग्रन्थों में पतंजलि के गोनर्दीय, गोणिकापुत्र, नागनाथ, अहिपति, फणिभृत, चूर्णिकार और पदकार नाम मिलते हैं। पतंजलि के गोनर्दीय और गोणीकापुत्र नामकरण के सम्बन्ध में डा० राजेन्द्रलाल मित्र तथा डा० किलहार्न

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

का विचार है कि ये नाम भिन्न ख्यातिलब्ध लेखकों के हैं—जिन्हें कि वात्सायन ने अपने कामसूत्र में स्मरण किया है। युधिष्ठिर मीमांसक भी इसी आशय का समर्थन करते हैं।

कैयट–महाभाष्य ४।२।९२ की व्याख्या में पतंजलि के लिए "नागनाथ" चक्रपाणि–'चरक टीका' में अहिपति, भोजराज अपनी योग-सूत्र-वृत्ति में 'फणिभृत' तथा भर्तृहरि महाभाष्य दीपिका में "चूर्णिकाकार" नामों से पतंजलि के प्रति श्रद्धा ज्ञापित करते हैं।

पतंजलि का समय निरूपण करनेवाले विद्वानों, विशेषकर वेलवेलकर के अनुसार पतंजलि ईस्वी पूर्व-१५० के लगभग विद्यमान थे। अपने मत की पुष्टि में वे पतंजलि की रचना के निम्नलिखित अन्तर्साक्ष्य उपस्थित करते हैं—

१. इह पुष्यमित्रं याजयामः (मैं पुष्यमित्र का यज्ञ कराता हूँ।) इससे ज्ञात होता है कि पतंजलि पुष्यमित्रों के अश्वमेघ यज्ञ के ऋत्विक् रहे।

२. "अरुणद्यवनः साकेतम्" तथा "अरुणद्यवनो माध्यमिकाम्"—इन पंक्तियों से मिनाण्डर नामक यवन सैनिक द्वारा साकेत राज्य पर आक्रमण किए जाने की सूचना मिलती है। पुष्यमित्र राजा का उल्लेख पतंजलि को उनका समकालीन सिद्ध करता है। पाश्चात्य तथा कतिपय भारतीय इतिहासविद् पुष्यमित्र का राज्य काल-ईस्वी पूर्व १५० स्वीकार करने के पक्ष में है, किन्तु युधिष्ठिर मीमांसक इस विषय में उनसे विमत हैं। आपकी धारणा है कि पुष्यमित्र का काल भारतीय पौराणिक कालगणनानुसार विक्रम से लगभग १२०० वर्ष पूर्व है। अधिकांश विद्वान् पतंजलि का काल ईसा पूर्व १५० ही मानते हैं।

पतंजलि प्रणीत महाभाष्य का महत्त्व

सरल, सुबोध, सुस्पष्ट और वार्ता पद्धति पर आधारित, महाभाष्य की रचना करनेवाले पतंजलि, शैली की दृष्टि से अपना प्रतिद्वन्द्वी नहीं जानते। उनके महाभाष्य से यह सिद्ध होता है कि उनके युग में जन-साधारण से लेकर शिष्ट वर्ग तक, संस्कृत भाषा को व्यवहार की भाषा के रूप में व्यवहृत करता था। संस्कृत-साहित्य के आनन्द-सिन्धु में अवगाहन करनेवाले प्रवुद्ध पाठक यह स्वीकार करेंगे कि पतंजलि और आदि शंकराचार्य ये दो ही ऐसी विभूतियाँ हैं, जिनकी कृतियाँ अपनी मौलिक शैलियों में अध्येताओं की कण्ठहार हैं।

पतंजलि महाभाष्य अपने विराट रूप में सिन्धु के समान है, जिसमें व्याकरण-सम्बन्धी अन्य रचनाओं की सरिताएं समाहित देखी जा सकती हैं। पतंजलि के ग्रन्थ का यथार्थ मूल्यांकन तो भर्तृहरि के इन शब्दों में ही दिखाई देता है—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कृतेऽथ पतंजलिना गुरुणा तीर्थदर्शिना ।
सर्वेषां न्यायबीजानां महाभाष्ये निबन्धने ॥
(वाक्यपदीय, २।४८६)

पतंजलि महाभाष्य के रचना-विधान और उसकी ललित-शैली का परिचायक एक प्रसंग संवाद के रूप में उदाहृत है, जो सूत्र ६।३।१०९ तथा सूत्र २।४।५६ से सम्बन्धित है —

'प्राजिता' (चलानेवाला) शब्द की व्युत्पत्ति की शुद्धि को लेकर वैयाकरण तथा एक सारथी में जो वाद-विवाद हुआ, वह महाभाष्य की मनोरंजक शैली में इस प्रकार है—

वैयाकरण ने पूछा—इस रथ का प्रवेता कौन है ?

सूत का उत्तर— आयुष्मान, मैं इस रथ का 'प्राजिता' हूँ (चलानेवाला हूँ)।

वैयाकरण— "प्राजिता" अपशब्द है ।

सूत—(देवानां प्रिय) महाशय जी, आप केवल "प्राप्तिज्ञ हैं, 'इष्टिज्ञ' (प्रयोग के ज्ञाता) नहीं ।

वैयाकरण—ओह ! यह दुष्ट सूत (दुरुत) हमें कष्ट पहुँचा रहा है ।

सूत–आपका 'दुरुत' प्रयोग उचित नहीं है। 'सूत' शब्द-सू (प्रसव, उत्पन्न करना) धातु से निर्मित है। 'वेञ्' धातु बिनना से नहीं । अतएव यदि आप निन्दा ही करना चाहते हैं, तो 'दुःसूत' शब्द का प्रयोग करें ।

महाभाष्य का लोप और पुनरुद्धार

भर्तृहरि के वाक्यपदीय के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि पतंजलि की महान् कृति पहली बार "वैजि सौभव" और "हर्यक्ष" सदृश शुष्क तार्किकों के प्रकोप से नष्ट हुई थी और तब दक्षिण के किसी पर्वतीय क्षेत्र से प्राप्त हस्तलेख की सहायता से चन्द्राचार्य ने इसका पुनरुद्धार किया था ।

कश्मीरी कवि कल्हण की 'राजतरंगिणी' में प्राप्त प्रसंग से विदित होता है कि विक्रमाब्द ८वीं शताब्दी में कश्मीर के महाराज जयापीड के समय लुप्त महाभाष्य का पुनरुद्धार, 'क्षीर' नामक शब्द-विद्योपाध्याय द्वारा सम्पूर्ण हुआ था । इधर दो ढाई सौ वर्ष पूर्व महाभाष्य की अध्ययन-प्रणाली पुनः विच्छिन्न-सी हो गई थी। परन्तु कुछ ही काल में, पाणिनि-व्याकरण के स्पष्ट समझने में महाभाष्य के योगदान को स्वीकार करके विद्वानों ने इसके अध्ययन-अध्यापन की पुनर्व्यवस्था की, जिसका परिणाम यह हुआ कि आज

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

संस्कृत-व्याकरण की सर्वोच्च परीक्षाओं के पाठ्यक्रम में भी इसे स्थान प्राप्त हुआ।

व्याकरण के क्षेत्र में पतंजलि—'यथोत्तरं–मुनीनां प्रामाण्यम्" के प्रतिष्ठापक हैं, वे पाणिनी के व्याख्याता मात्र ही नहीं, अपितु स्वयं मनस्वी चिन्तक भी हैं।

पतंजलि के महाभाष्य में उनके युग की समस्त परिस्थितियों का प्रतिविम्ब प्राप्त होता है। महाभाष्य में उन्होंने, काठक, कालापक, मौदक, पैप्पलाद और अथर्वण संज्ञक प्राचीन धर्म-सूत्रों का उल्लेख किया है। पतंजलि सांख्य, न्याय, काव्य आदि विषयों में भी अद्भुत ज्ञान रखते थे। सांख्य-प्रवचन, सामवेदीय-निदान सूत्र, 'छंदोविचिति' आदि ग्रन्थ भी उनके द्वारा विरचित वताये जाते हैं। उनके 'महाभाष्य' पर निम्नलिखित प्रसिद्ध टीकाएँ उपलब्ध हैं —

१. भर्तृहरि (विक्रम पूर्व ४५०) महाभाष्यदीपिका
२. कैयट-महाभाष्य प्रदीप—(११०० ई० के आसपास)
३. मैत्रेय रक्षित (१२वीं शती) धातु प्रदीप
४. पुरुशोत्तमदेव (१२वीं शती) प्राण पणित
५. शेषनारायण (१६वीं शती) मुक्ति रत्नाकर
६. विष्णुमित्र (१६वीं शती) महाभाष्य टिप्पण
७. नीलकण्ठ (१७वीं शती) भाषा तत्त्व विवेक
८. शिवरामेन्द्र सरस्वती (१७वीं शती) महाभाष्य रत्नाकर
९. शेषविष्णु (१७वीं शती) महाभाष्य प्रकाशिका

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पालि वाङ्मय

बुद्ध के समस्त उपदेश मौखिक ही थे। उनके शिष्य उन्हें कंठस्थ कर लेते थे। इन्हीं उपदेशों का संकलन 'तेपिटक' [सं० त्रिपिटक] के नाम से विख्यात है जिसके अन्तर्गत 'सुत्त' 'विनय' तथा 'अभिधम्म' पिटक आते हैं। त्रिपिटक की भाषा पालि है। ये सीलोन (लंका) के थेर [स्थविर] वादियों के मुख्य ग्रंथ हैं। परम्परा के अनुसार इनका संकलन तथा संगायन, भगवान् बुद्ध की मृत्यु के पश्चात् ईसा के ४८३ वर्ष पूर्व, राजगृह [राजगृह) की प्रथम संगीति (सभा) में महाकस्सप [महाकश्यप] के अधिनायकत्व में हुआ था। वैशाली-निवासी वज्जिपुत्तक [वृजिपुत्र] भिक्षुओं ने विनय के विरुद्ध आचरण आरम्भ किया, अतएव व्यवस्था के लिए प्रथम संगीति के सौ वर्ष बाद ही वैशाली में दूसरी संगीति हुई, जिसमें महास्थविर रेवत तथा सर्वकामी मुख्य थे। तीसरी संगीति अशोक [ईस्वी पूर्व २६४–२२७] की प्रेरणा से हुई, जिसमें 'पिटकों' को एक प्रकार से अन्तिम रूप मिला। इस संगीति में ही 'सुत्तपिटक' के उपदिष्ट सिद्धान्तों के आधार पर 'अभिधम्म' [अभिधर्म] पिटक अस्तित्व में आया तथा अशोक के गुरु मोग्गलिपुत्त तिस्स ने 'कथावत्थुप्पकरण' का संगायन किया। तिस्स ने बौद्ध संघ में प्रविष्ट अनेक भ्रान्त-धारणाओं का भी निराकरण किया। यह तीसरी संगीति इस दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है कि इसके प्रस्तावानुसार बौद्ध-धर्म के प्रचार के लिए अनेक प्रचारक पड़ोस के देशों में भेजे गए। परम्परा के अनुसार अशोक-पुत्र महिन्द [महेन्द्र] को धर्म-प्रचरार्थ सीलोन (लंका) जाना पड़ा था। वहीं अपने साथ त्रिपिटक भी ले गये थे।

दीर्घकाल तक, सीलोन में, त्रिपिटक की मौखिक परम्परा ही चलती रही, किन्तु दीपवंस तथा महावंस के अनुसार वट्टगामिनी के राजत्वकाल [ईस्वी पूर्व २९–१) में 'अट्ठ [अर्थ] कथाओं' सहित उसे लिपिबद्ध किया गया। समस्त त्रिपिटक मूल बुद्ध-वचन ही है, इसमें विद्वानों में मतभेद है। इसमें कुछ गाथाओं के प्रक्षिप्त होने की बात तो पुराने आचार्यों ने भी स्वीकार की है।[1] किन्तु इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि इनमें मूल बुद्ध-वचन पूर्णरूप से सुरक्षित

---

१. महावग्ग महाक्खन्धक की 'अट्ठकथा' में 'नेरंजरायं भगवा' आदि गाथाओं को 'पच्छापक्खिता' (पीछे डाली गई) कहा गया है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है। सूत्रों की शैली अत्यधिक सजीव है तथा प्रत्येक सूत्र के आरम्भ में उस स्थान का नाम भी है, जहाँ भगवान् ने उसका उपदेश किया; यथा—"एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे"—अर्थात् 'एक समय भगवान् बुद्ध, श्रावस्ती में, अनाथपिण्डिक के आराम, जेतवन में, विहार करते थे।' धर्मोपदेश आरम्भ करने के पूर्व, इस बात का विस्तार-सहित वर्णन रहता है कि किस अवसर पर किस सम्बन्ध में वह उपदेश दिया गया था। उपदेश के अवसर पर जो प्रश्नोत्तर होते थे, उनका भी पूरा-पूरा वर्णन मिलता है। उपदेश के अन्त में श्रद्धा से गद्गद होकर श्रावकगण जो सन्तोष प्रकट करते थे, उसके सम्बन्ध में भी सूत्रों में सुन्दर वाक्य आते हैं, यथा—

"अभिकन्तं भो गोतम, अभिकन्तं भो गोतम, सेय्यथापि भो गोतम, निक्कुजितं वा उक्कुज्जेय्य, पटिच्छन्नं वा विवेरेय्य, मूलहस्स वा मग्गं आचिक्खेय्य, अन्धकारे वा तेलपज्जोतं धारेय्य, चक्खुमन्तो रूपानि दक्खिन्तीति......।"

अर्थात्—हे गौतम ! आपने सुन्दर कहा। जैसे उलटे को सीधा कर दे, ढके को खोल दे, भटके को राह दिखा दे, अन्धकार में तेल का दीपक जला दे, जिससे आँखवाले रूपों को देख लें।

कतिपय सूत्रों में ऐसा भी आता है—"इदमवोच भगवा। अत्तमना ते भिक्खू भगवतो भासितं अभिनन्दुन्ति।" अर्थात्—भगवान् ने यह कहा। संतुष्ट होकर उन भिक्षुओं ने भगवान् के कथन का अभिनन्दन किया।

साधारणतः सभी सूत्र गद्य में ही हैं, किन्तु बीच-बीच में गाथाएँ भी आती हैं। कितने सूत्र तो पद्य में ही हैं। भाषा अत्यन्त ओजपूर्ण है। 'धम्मचक्क पवत्तन सुत्त' में भोगवाद की निन्दा करते हुए भगवान् बुद्ध कहते हैं—

"....यो चायं भिक्खवे ! कामेसु कामसु मुखल्लिकानुयोगो हीनो, गम्मो, पोथुज्जनिको, अनरियो, अनत्थ-संहितो....।" अर्थात्—भिक्षुओ ! जो यह "खाओ पीओ—मौज करो" का सिद्धान्त है, वह दीन है, ग्राम्य है, अनार्य है, अनर्थकर है....।

सतिपट्ठान सुत्त उपदेश करते हुए भगवान् कहते हैं—"एकायनो अयं भिक्खवे मग्गो, सत्तानं विसुद्धिया, सोक परिद्दवानं समतिक्कमाय, दुक्खदोमनस्सानं अत्यङ्गमाय, ञाणस्स अधिगमाय, निब्बाणस्स सच्छिकिरियाय, यदिदं चत्तारो सतिपट्ठाना।"

अर्थात्, भिक्षुओ ! यही अकेला एक मार्ग है—जीवों की विशुद्धि के लिए, शोक तथा व्याकुलता के समतिक्रमण के लिए, दुःख और दौर्मनस्य को अस्त करने के लिए, ज्ञान की प्राप्ति के लिए तथा निर्वाण के साक्षात्कार करने के लिए—जो यह चार स्मृति उपस्थान हैं।

२

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

१. सुत्तपिटक

त्रिपिटक का सामान्य परिचय ऊपर दिया जा चुका है। अब प्रत्येक पिटक के सम्बन्ध में विवरण यहाँ दिया जाता है। सुत्त (सं० सूत्र) पिटक में साधारण बातचीत के ढंग पर दिए गए भगवान् बुद्ध के उपदेशों का संग्रह किया गया है। इसमें सारिपुत्त तथा मोग्गल्लान[1] आदि द्वारा भी उपदिष्ट कतिपय सूत्र सम्मिलित कर लिए गये हैं जिनका अनुमोदन भगवान् ने अन्त में कर दिया है। सुत्तपिटक के अन्तर्गत निम्नलिखित पाँच निकाय हैं—१. दीघनिकाय, २. मज्झिम-निकाय, ३. संयुक्तनिकाय, ४. अंगुत्तरनिकाय, ५. खुद्दकनिकाय। खुद्दक-निकाय में पन्द्रह ग्रन्थ हैं :—१. खुद्दक पाठ २. धम्मपद, ३. उदान, ४. इतिवुत्तक, ५. सुत्तनिपात, ६. विमानवत्थु, ७. पेतवत्थु, ८. थेरगाथा, ९. थेरीगाथा, १०. जातक, ११. निद्देस, १२. पटिसम्भिदामग्ग, १३. अपदान, १४. बुद्धवंस, १५ चरियापिटक।

सुत्तपिटक के ग्रन्थों को पाँच निकायों में विभक्त करने में सूत्रों के विषय का नहीं, अपितु उनके आकार-प्रकार का विचार किया गया है। लम्बे-लम्बे सूत्रों का संग्रह करके उसका नाम 'दीघनिकाय' रखा गया। 'दीघनिकाय' का 'ब्रह्मजाल-सुत्त' 'संयुक्त-निकाय' में भी उद्धृत किया गया है। पालि के प्रसिद्ध विद्वान् आर० ओ० फ्रांके ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि 'दीघ-निकाय' एक क्रमबद्ध साहित्यिक रचना है; किन्तु अन्य विद्वान् आपके इस मत से सहमत नहीं हैं। बात यह है कि 'दीघनिकाय" के सुत्तों में भी कहीं-कहीं विपरीत विचार धाराएँ मिलती हैं। यदि किसी साहित्यिक ने इसका सम्पादन किया होता तो ऐसा न होता। इस निकाय का सोलहवाँ—महा-परिनिब्बान [महापरिनिर्वाण]—सुत्त अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इसमें भगवान् बुद्ध के जीवन के अन्तिम दिनों की घटनाओं का सुन्दर चित्रण है। 'दीघ नेकाय' में कुल ३४ सूत्र हैं जो तीन वग्गों [वर्गों] में विभाजित हैं। ये हैं क्रमशः 'सीलक्खन्धवग्ग', 'महावग्ग' तथा 'पाटिक वग्ग'।

'मज्झिमनिकाय' में मध्यम आकार के सूत्रों का संग्रह है। इसके कतिपय सुत्त, यथा 'रट्ठपाल' [८२ वाँ], 'मखादेव' [८३वाँ] तथा 'अस्सलायण' [९३ वाँ] अत्यन्त सुन्दर हैं। मज्झिमनिकाय में कुल १५२ सुत्त हैं जो तीन

---

१. सारिपुत्त तथा मोग्गल्लान भगवान् बुद्ध के प्रधान शिष्यों में से थे। विहार स्थित प्राचीन नालन्द विश्वविद्यालय के निकट ही इनकी जन्मभूमि थी। निर्वाण के पश्चात् इनकी पवित्र धातु (अस्थियाँ) साँची के स्तूप में रखी गई थीं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भागों में विभक्त हैं। प्रथम भाग, 'मूलपण्णासक' में ५० सुत्त, द्वितीय भाग 'मज्झिमपण्णासक' में ५० सुत्त तथा तृतीय भाग 'उपरिपण्णसक' में ५२ सुत्त हैं।

'संयुक्त' तथा 'अंगुत्तर' निकाय वस्तुतः अन्य निकायों के पूरक रूप हैं। ये दोनों दीर्घ तथा मज्झिम निकाय से बड़े हैं। 'संयुक्तनिकाय' में छोटे-बड़े, दोनों प्रकार के सुत्तों का संग्रह किया गया है। इसमें पाँच वर्ग हैं—१—सगाथ वर्ग, २—निदानवर्ग, ३—स्कन्धवर्ग, ४—षडायतनवर्ग, ५—महावर्ग। इस निकाय के भीतर वर्गों का विभाजन विषय की दृष्टि से किया गया है। अन्य निकायों में भागों अथवा वर्गों का विभाजन विषय की दृष्टि से नहीं, अपितु आकार की दृष्टि से किया गया है। संयुक्त-निकाय का सर्वाधिक प्रसिद्ध सुत्त "धम्मचक्क पवत्तन" है। सम्यक् सम्बुद्ध होने के पश्चात् भगवान् बुद्ध का यह प्रथम उपदेश है। इस निकाय में संयुक्तों की संख्या ५६ तथा सुत्तों की संख्या २८८९ है।

'अंगुत्तरनिकाय' में एकक निपात, द्विक निपात, तिक निपात आदि ग्यारह निपात हैं। एक-एक धर्म बतलानेवाले सूत्र 'एकक निपात' में, दो-दो धर्म बतलानेवाले सूत्र 'द्विक निपात' में तथा ग्यारह-ग्यारह धर्म बतलानेवाले सूत्र 'एकादस निपात' में हैं। यथा :—

एकक निपात—"नाहं भिक्खवे अञ्ञं एक धम्मम्पि समनुपस्सामि, यो एवं महतो अनत्थाय संवत्तति, यदिदं भिक्खवे पापमित्तता। पापमित्तता भिक्खवे महतो अनत्थाय संवत्तति।"

अर्थात्—भिक्षुओ! मैं किसी भी अन्य वस्तु को नहीं देखता हूँ, जो इतनी अनर्थकारी हो जितनी 'पापमित्रता'। भिक्षुओ! पापमित्रता महान् अनर्थकारी है।

द्विक निपात—"द्वे मे भिक्खवे, असनिया फलन्तिया न सन्तसन्ति। कतमे द्वे? भिक्खू च खीणासवो, सीहो च मिगराजा। इमे खो भिखवे, द्वे असनिया फलन्तिया न सन्त-सन्तीति।"

अर्थात्—भिक्षुओ। बिजली कड़कने पर दो ही प्राणी चौंक नहीं पड़ते हैं। कौन से दो? क्षीणाश्रव भिक्षु और मृगराज सिंह। भिक्षुओ! यही दो बिजली कड़कने पर चौंक नहीं पड़ते।

'खुद्दकनिकाय' छोटे-छोटे सूत्रों का संग्रह है। इसमें विभिन्न आकार-प्रकार के ग्रन्थों का समावेश है। इन ग्रन्थों के सम्बन्ध में भी सीलोन, बर्मा तथा स्याम के बौद्ध एकमत नहीं हैं। इसके अन्तर्गत ऊपर जो १५ ग्रन्थों की सूची दी गई है, वह सीलोन के बौद्धों के अनुसार है। यहाँ इन १५ ग्रन्थों के सम्बन्ध

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

में विवरण दिया जाता है। १—'खुद्दक पाठ' में ९ सुत्त हैं। लोग इसे प्रतिदिन पाठ करते हैं। इसके ५, ६ तथा ९वें ['मंगल', 'रतन' तथा 'मेत्त'] सुत्त 'सुत्तनिपात' में भी मिलते हैं। इसका, ७वाँ 'तिरोकुड्डसुत्त' प्रेतों के सम्बन्ध में है जिसके पद सीलोन तथा वर्मा में मृतक के दाह-संस्कार के समय पढ़े जाते हैं।

२. 'धम्मपद' में ४२३ प्रसिद्ध गाथाओं का संग्रह किया गया है। यह विषयानुसार २६ वग्गों [वर्गों] में विभक्त है। गीता की भाँति ही बौद्ध देशों में "धम्मपद" का भी प्रचार है। संसार की प्रायः सभी प्रसिद्ध भाषाओं में इसका अनुवाद भी हो चुका है। इसकी आधी से अधिक गाथाएँ तो त्रिपिटक के अन्य ग्रन्थों में भी उपलब्ध हैं।

३. 'उदान'—में भगवान् बुद्ध के मुख से समय-समय पर भावातिरेक में निकले हुए प्रीति-वाक्यों का संग्रह है। ये वाक्य गाथाओं के रूप में ही हैं, किन्तु प्रत्येक उदान के साथ, गद्य में इस बात का भी उल्लेख है कि वह किस स्थान तथा अवसर पर कहा गया था। उदान में ८० सुत्त हैं जो ८ वर्गों में विभक्त हैं।

४. 'इतिवुत्तक'—में भी उदान की भाँति ही प्रीति-वाक्यों का संग्रह है। ये वाक्य आचरण-सम्बन्धी हैं। इसमें कुल ११२ सुत्त हैं। कहीं-कहीं गद्य तथा गाथाओं में एक ही विचार व्यक्त किए गए हैं, किन्तु अन्य स्थानों पर वे एक दूसरे के पूरक रूप में हैं। 'अंगुत्तरनिकाय' की भाँति ही 'इतिवुत्तक' भी पहले एकक, दुक, तिक और चतुक्क निपातों में तथा बाद में वर्गों में विभक्त है।

५. 'सुत्तनिपात'—अत्यधिक प्राचीन ग्रंथों में से है। इसके प्रथम चार वर्गों में ५४ सुत्त हैं। पाँचवें 'पारायण वग्ग' में बावरी ब्राह्मण के सोलह शिष्यों ने भगवान् बुद्ध से जो प्रश्न किए हैं, उनके उत्तर हैं। सुत्तनिपात के कतिपय सुत्त तो आख्यान काव्य की भाँति हैं।

६. 'विमानवत्थु' तथा ७. 'पेतवत्थु'—बाद की रचनाएँ हैं। ये उतनी सुन्दर भी नहीं हैं। कदाचित् इनका संकलन तीसरी संगीति के कुछ पहले हुआ था। 'विमानवत्थु' में उन स्वर्गीय सुन्दर भवनों का वर्णन है, जो जीवन में शुभकर्म करने के पश्चात् देवों को उपलब्ध होते हैं। इसमें ८३ कथाएँ तथा सात वर्गों में विभक्त हैं। 'पेतवत्थु' में ५० कथाएँ हैं, जो चार वर्गों में विभक्त हैं। पूर्व योनि में अशुभ तथा पापकर्म करने के कारण प्रेतों को जो अनेक यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं, उनका विशद वर्णन इसमें है।

८. थेरगाथा, ९. थेरीगाथा—'विमानवत्थु' तथा 'पेतवत्थु' की भाँति ही 'थेरगाथा' तथा 'थेरीगाथा' की रचना भी पदों में हुई है। ये पद थेरों [स्थविरों] तथा थेरियों [स्थविरियों] के मुख से कहलाए गए हैं। इसमें संदेह नहीं कि इनके अधिकांश पद अत्यन्त प्राचीन हैं। ये गाथाएँ किसी एक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

व्यक्ति की रचना नहीं हैं, क्योंकि इनमें एकरूपता का अभाव है। ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय में प्रचलित गाथाओं को संग्रह करके उन्हें थेरों तथा थेरियों के द्वारा कहलाया गया है। 'थेरगाथा' में १२७९ तथा 'थेरीगाथा' में ५२२ गाथाएँ हैं। ये एक दुक, तिक आदि निपातों में भी विभक्त हैं।

१०. जातक का अर्थ है, जन्म-सम्बन्धी। सम्यक् सम्बुद्ध होने के पूर्व भगवान् बुद्ध बोधिसत्व थे। बोधिसत्व का अर्थ है, 'बुद्धत्व के लिए प्रयत्नशील प्राणी।'

जातकों में बोधिसत्व के पाँच सौ सैंतालीस जन्मों का उल्लेख है। त्रिपिटक में जिस जातक ग्रन्थ का समावेश है, वह केवल गाथाओं का संग्रह है, जातक अट्ठकथा तो बाद की चीज़ है। इस अट्ठकथा के बिना केवल गाथा से जातक की कथा का बोध नहीं होता। जातकट्ठकथा में अट्ठकथा-सहित जातक कथाएँ आरम्भ होने से पूर्व 'निदान कथा' नाम का एक लम्बा उपोद्घात है। इस निदान कथा में सिद्धार्थ गौतमबुद्ध के जीवन-चरित्र के साथ उनके पूर्व के २७ बुद्धों का भी जीवन-चरित है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह 'बुद्धवंस' से लिया गया है।

जातक की अट्ठकथा तीन भागों में विभक्त है—(१) दूरे निदान, (२) अविदूरे निदान, (३) सन्तिके निदान। बोधिसत्व ने जब सुमेध तपस्वी का जन्म ग्रहण कर भगवान् दीपङ्कर के चरणों में जीवन समर्पित किया, उस समय से लेकर 'वेस्सन्तर'[1] का शरीर छोड़, तुषित स्वर्गलोक में उत्पन्न होने तक की कथा "दूरे निदान" कही जाती है। तुषित लोक से च्युत होकर महामाया देवी के गर्भ से उत्पन्न होकर बोधगया में बुद्धत्व प्राप्त करने तक की कथा 'अविदूरे निदान' कही जाती है। जहाँ-जहाँ भगवान् बुद्ध ने विहार करते समय कोई जातक कथा कही, उन स्थानों का जो उल्लेख है, वह 'सन्तिके निदान' है।

जातक की कथाएँ दूरे निदान के अन्तर्गत ही आती हैं। प्रत्येक जातक-कथा के चार विभाग हैं—(१) 'पच्चुपन्नवत्थु' (२) 'अतीतवत्थु' (३) अत्थवण्णना' (४) 'समोधान'। पच्चुपन्नवत्थु से तात्पर्य है वर्तमान कथा अर्थात् भगवान् बुद्ध के समय की कोई घटना; अतीतवत्थु से तात्पर्य है किसी भी ऐसे अवसर पर भगवान् बुद्ध द्वारा कही गई पूर्वजन्म की कथा; अत्थ-वण्णना से तात्पर्य है इन गाथाओं की व्याख्या। इसमें गाथाओं का शब्दार्थ तथा विस्तृतार्थ रहता है। समोधान सदैव अन्त में आता है। इसमें बुद्ध

---

१. देखिए, वेस्सन्तर जातक (५४७)।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बतलाते हैं कि उन्होंने जो अतीतवत्थु सुनाई, उसके प्रधान पात्रों में कौन-कौन था तथा वे स्वयं उस समय किस योनि में उत्पन्न हुए थे।

जातकों की समस्त गाथाएँ किसी एक व्यक्ति की कृति नहीं प्रतीत होतीं, बाद के कई जातकों की गाथाएँ तो वर्णनात्मक हैं और वीरकाव्य का रूप ग्रहण कर लेती हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इन गाथाओं के रूप में उस समय तक की प्रचलित गाथाओं का संग्रह कर लिया गया है। थेर और थेरीगाथा की भाँति ही निपातों में उनका कृत्रिम विभाजन भी इसी धारणा को पुष्ट करता है।

११. निद्देस—सुत्तनिपात के एक भाग का भाष्य है जिसके कर्ता सारिपुत्त बतलाए जाते हैं। —१२. पटिसम्भिदामग्ग—में अर्हतों द्वारा उपलब्ध ज्ञान का उल्लेख है। विषय की दृष्टि से यह अभिधम्म-साहित्य की वस्तु है। —१३. अपदान—पद्यबद्ध कथाओं का संग्रह है। इनमें बौद्ध सन्तों के पूर्व जन्म के शुभकर्मों का वर्णन किया गया है। त्रिपिटक-साहित्य में यह सबसे बाद की वस्तु है, किन्तु संस्कृत में लिखित बौद्ध अवदान-साहित्य से तो यह प्राचीन ही है। १४ बुद्धवंस—की रचना पदों में हुई है। यह २८ काण्डों में विभक्त हैं। इसमें २४ अतीत बुद्धों की कथाएं हैं, जिनमें गौतमबुद्ध की कथा भी सम्मिलित है, बुद्ध के मुख से कहलाई गई हैं। —१५. चरिया पिटक—पद्यबद्ध ३५ जातकों का संग्रह है। बुद्धत्व प्राप्त करने के पूर्व, बोधिसत्त्वावस्था में बुद्ध ने किस प्रकार दश पारमिताओं को पूर्ण किया था, वही बात बुद्ध के द्वारा कहलाई गई है। अन्य चार निकायों में पारमिताओं की कुछ भी चर्चा नहीं है। चरिया पिटक में कवित्व का अभाव है। श्रीविंटर्निट्ज़ महोदय का अनुमान है कि इसका रचयिता कोई स्थविर होगा।

२. विनयपिटक

इस पिटक में भगवान् बुद्ध की उन शिक्षाओं का संग्रह है, जो उन्होंने समय-समय पर संघ-संचालन को नियमित करने के लिए दी थीं। प्रव्रज्या की दीक्षा कैसे देनी चाहिए, शिष्य तथा आचार्य का परस्पर व्यवहार कैसा होना चाहिए, भिक्षुओं को कैसे भिक्षाटन के लिए, गाँव में जाना चाहिए, कैसे उठना-बैठना, खाना-पीना चाहिए, क्या दोष करने से भिक्षु को क्या दंड देना चाहिए, किन-किन वस्तुओं का व्यवहार भिक्षु के लिए विहित है और किन-किन का निषिद्ध, आदि-आदि दैनिक-जीवन की छोटी-छोटी बातों तक के विषय में भगवान् बुद्ध की शिक्षाएँ इस पिटक में मिलती हैं। संक्षेप में इसे संघ के शासन सम्बन्धी नियमों का कोष कहा जा सकता है। किस अवसर पर अथवा कि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्थिति में ये शिक्षाएँ बनीं, रद्द अथवा संशोधित की गईं—इसका भी इस पिटक में विशद वर्णन किया गया है। 'विनयपिटक' के निम्नलिखित विभाग हैं—

१. सुत्तविभंग—[क] पाराजिक [ख] पाचित्तिय
२. खन्धक—[क] महावग्ग [ख] चुल्लवग्ग
३. परिवार

१. सुत्त-विभंग वस्तुतः 'पातिमोक्ख सुत्तों' (प्रातिमोक्ष-सूत्रों) की व्याख्या मात्र है। पातिमोक्ख सुत्तों के अन्तर्गत 'भिक्खु पातिमोक्ख' तथा 'भिक्खुनी पातिमोक्ख' की गणना है। ये दोनों 'विनय-पिटक' के सर्वाधिक प्रामाणिक अंश हैं। उपोसथ[1] के दिन संघ के उपोसथागार में एकत्र होकर किसी स्थान विशेष में रहनेवाले भिक्खुओं तथा भिक्खुनियों को पातिमोक्ख के नियमों की आवृत्ति करना आवश्यक है। ये नियम अपराधों के स्वीकरण के सम्बन्ध में हैं। अपराध भी गुरुता के अनुसार विभक्त हैं—यथा—पाराजिकधम्म—के अन्तर्गत वे अपराध आते हैं जिनके करने से भिक्षु सदैव के लिए संघ से बहिष्कृत कर दिए जाते हैं। 'संघादिसेस धम्म'—के अन्तर्गत उन अपराधों की गणना है जिनके करने पर संघ किसी भिक्षु को कुछ समय का परिवास (मुअत्तली) का दंड देता है। 'अनियत धम्म०'—से तात्पर्य उन अपराधों से है जिनके करने से 'पाराजिक', 'संघादिसेस' अथवा 'पाचित्तिय' में से कोई एक दंड दिया जाय। पहले से 'नियत' (निश्चित) न होने के कारण इसे 'अनियत धम्म' की संज्ञा दी गई है। 'निस्सग्गिय पाचित्तिय' तथा 'पाचित्तिय'—'पाचित्तिय' का अर्थ है 'प्रायश्चित्तिक' तथा 'निस्सग्गिय' का 'नैसर्गिक'। इनके अन्तर्गत वे अपराध आते हैं जिन्हें संघ, अनेक भिक्षु अथवा एक भिक्षु के समक्ष स्वीकार करने पर उनका प्रतिकार हो जाता है। 'पाटिदेसनीय'—से तात्पर्य उन अयुक्त अथवा निन्दनीय कर्मों से है जिन्हें भिक्षु को स्वीकार कर लेना चाहिए। स्वीकरण के समय भिक्षु को कहना चाहिए—'आयुष्मान्! मैंने निन्दनीय, अयुक्त, प्रतिदेशना (=अपराध की स्वीकृति) करने योग्य कार्य किया, अतएव मैं उसकी प्रतिदेशना करता हूँ। 'सेखिय धम्म'—के अन्तर्गत वे व्यावहारिक शिक्षाएँ आती हैं जिन्हें भिक्षु को सदैव पालन करना चाहिए। 'अधिकरणसमथं'—में, अधिकरणों (=झगड़ों) के शमन करने के लिए उपाय बतलाए गए हैं।

---

१. प्रत्येक मास की कृष्ण चतुर्दशी तथा पूर्णिमा का दिन 'उपोसथ' का दिन है। इनके अतिरिक्त, कार्य विशेष के लिए, यदि किसी दिन संघ एकत्र हो तो वह भी उपोसथ का ही दिन कहलाएगा।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भिक्खुपातिमोक्ख तथा भिक्खुनीपातिमोक्ख के शिक्षापदों की संख्या २२७ है। ये भिक्खु तथा भिक्खुनियों के लिए हैं।

२. खन्धक—भी वास्तव में सुत्तविभंग के ही पूरक हैं। इनमें भिक्षुओं के दैनिक जीवन-सम्बन्धी नियमों का उल्लेख है। 'महावग्ग' में दश खन्धक (स्कन्धक) हैं। प्रथम, 'महास्कन्धक' में बुद्ध के बुद्धत्वलाभ, शिष्य-उपाध्याय के कर्त्तव्य तथा उपसम्पदा आदि के संबंध में विचार किया गया है। द्वितीय, 'उपोसथ-स्कन्धक' में उपोसथ एवं प्रातिमोक्ष के विधान एवं आवृत्ति आदि के सम्बन्ध में नियम दिए गए हैं। तृतीय, 'वर्षोपनायिका स्कन्धक', में भिक्षुओं के वर्षावास सम्बन्धी नियमों का उल्लेख है। चतुर्थ, 'प्रवारणास्कन्धक', में प्रवारणा में स्थान, काल और व्यक्ति-सम्बन्धी नियम हैं। पंचम, 'चर्म-स्कंधक', में, 'चरण-पादुका (जूते) धारण करने के नियम हैं। षष्ठ, 'भैषज्य-स्कन्धक', में ओषधियों के नियम हैं। सप्तम्, 'कठिन स्कन्ध', में कठिन चीवर-सम्बन्धी नियम हैं। वर्षावास की समाप्ति पर समस्त संघ की सम्मति से सम्मान प्रदर्शन के लिए किसी भिक्षु को जो चीवर दिया जाता है, उसे 'कठिन-चीवर' कहते हैं। अष्टम्, 'चीवर-स्कन्धक', में चीवर-सम्बन्धी नियम हैं। नवम्, 'चाम्पेय-स्कन्धक', में कर्म-अकर्म एवं नियमविरुद्ध तथा नियमानुकूल दंड आदि के सम्बन्ध में व्यवस्था है। इस स्कन्ध के 'चाम्पेय' नामकरण का यह कारण है कि जिस समय ये नियम बने, उस समय भगवान् बुद्ध चम्पा नगरी में विहार करते थे। दशम, 'कौशम्बक-स्कन्धक' के नियम कौशाम्बी में बने। उस समय भगवान् बुद्ध कौशाम्बी के 'घोषिताराम' में विहार करते थे। इसमें भिक्षु संघ में कलह तथा धर्मवादी एवं अधर्मवादी आदि के सम्बन्ध में विचार किया गया है।

महावग्ग के बाद ही विनय-पिटक में 'चुल्लवग्ग' आता है। इसमें भी 'कर्म', 'पारिवासिक', 'समुच्चय', 'शमथ', 'क्षुद्रक-वस्तु', 'शयन-आसन', 'संघ-भेद', 'व्रत', 'प्रातिमोक्ष', 'स्थापन', तथा 'भिक्षुणी', ये दश स्कन्धक हैं। आरम्भ के नव स्कन्धकों में भिक्षुओं के दैनिक जीवन-सम्बन्धी अति साधारण बातों को लेकर नियम बनाए गए हैं, जैसे, नियम-विरुद्ध-दंड, नियमानुसार-दंड, दंड क्षमा करने की विधि, शयनासन, संघभेद तथा व्रत-सम्बन्धी नियम। दसवें, भिक्षुणी स्कन्धक में भिक्षुणियों की प्रव्रज्या तथा उपसम्पदा आदि के नियम हैं। विनयपिटक के ग्यारहवें तथा बारहवें स्कन्धक में क्रमशः राजगृह की प्रथम संगीति (सभा) तथा वैशाली की द्वितीय संगीति के सम्बन्ध में विवरण हैं। भगवान् बुद्ध के निर्वाण के पश्चात् जब विनय के विरुद्ध आचरण करना आरम्भ किया गया तो नियमों के ठीक अर्थ तथा व्याख्या करने के लिए इन संगीतियों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

की आवश्यकता पड़ी। विंटर्निट्ज़ के अनुसार ये दोनों स्कन्धक वस्तुतः विनय-पिटक में वाद में सम्मिलित किए गए हैं और एक प्रकार से चुल्लवग्ग के परिशिष्ट हैं।

परिवार वस्तुतः विनयपिटक की मात्तिका (सूची) है। इसकी रचना कदाचित् सीलोन में हुई और यह वहुत वाद की रचना है। इसका कोई महत्व भी नहीं है।

विनय-पिटक के नियमों को देखने से यह वात स्पष्ट हो जाती है कि इनका क्रमशः विकास हुआ होगा और समय की प्रगति के साथ ही साथ इनमें परिवर्तन भी हुआ होगा। साधारणतः भिक्षु को भिक्षान्न से ही जीवन-निर्वाह करना चाहिए, किन्तु समय की प्रगति के साथ-साथ उन्हें निमंत्रण स्वीकार करने की भी आज्ञा मिली। इसी प्रकार आरम्भ में उनके लिए चिथड़ों से वने हुए चीवर पहनने तथा वृक्षों के नीचे निवास करने का नियम था, किन्तु आगे चलकर उन्हें कौशेय वस्त्र धारण करने तथा घरों एवं गुफाओं में भी निवास करने की आज्ञा मिली। ओपधि में साधारण रूप से वे गोमूत्र का ही उपयोग कर सकते थे, किन्तु उन्हें मक्खन, तेल तथा मधु के उपयोग का भी अधिकार था। वे मांस भी खा सकते थे, किन्तु इसके साथ शर्त यह थी कि वह "त्रिकोटि परिशुद्धि" हो, अर्थात् वह भिक्षु के लिए पशुवध से प्राप्त न किया गया हो। इन सभी नियमों में विकास का क्रम स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है।

३. अभिधम्म पिटक

सुत्तपिटक के उपदिष्ट सिद्धान्तों के आधार पर ही वस्तुतः 'अभिधम्म पिटक' का विकास हुआ है। इसके अन्तर्गत निम्नलिखित सात ग्रंथों की गणना है—

१. धम्मसंगिनि, २. विभंग, ३. कथावत्थु, ४. पुग्गलपञ्जत्ति, ५. धातुकथा अथवा धातुकथापकरण, ६. यमक, ७. पट्ठानप्पकरण अथवा महापट्ठान।

ये वौद्ध-धर्म के दर्शन-ग्रन्थ कहे जाते हैं, किन्तु वे उस रूप में दर्शन-ग्रंथ नहीं हैं जिस रूप में ब्राह्मण-दर्शन ग्रंथ। वौद्ध-धर्म 'आत्मा' के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता। इसके अनुसार मनुष्य, चित्त (mind) और शरीर [matter] का संघात मात्र है। शरीर ही रूप कहलाता है और चित्त के चार आकार हैं—वेदना [feeling], संज्ञा [conceptual knowledge], संखार [Synthetic mental states], विज्ञान [consciausness]। इन संघात की अवस्थाओं को ही 'धम्म' कहते हैं। 'अभिधम्म-पिटक' के सर्वाधिक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्राचीन एवं महत्त्वपूर्ण-ग्रंथ 'धम्मसंगिनि' में इन धर्मों का पूर्ण विश्लेषण एवं विभाजन किया गया है, जैसे—'कुसला धम्मा' 'अकुसला धम्मा', 'अव्याकता धम्मा' आदि। 'अभिधर्म-पिटक' के शेष छह ग्रन्थों में इन्हीं धर्मों के स्वरूप तथा परस्पर सम्बन्ध पर विचार किया गया है। धर्मों का वर्गीकरण भी चार भागों में किया गया है। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित गाथा उल्लेखनीय है—

> तत्थ वुत्ताभिधम्मत्था चतुधा परमत्थतो।
> चित्तंचेतसिकं रूपं निब्बानमिति सब्बथा।

अर्थात् परमार्थ की दृष्टि से 'अभिधर्म' के चार विषय बतलाए गए हैं:— १. (किसी वस्तु का जाननेवाला) चित्त, २. (चित्त से संयुक्त रहनेवाला) चैतसिक, ३ (विकार स्वभाव वाला) रूप और ४ (तृष्णा से विमुक्त) निर्वाण।

ऊपर अभिधम्म-पिटक के सात ग्रंथों में 'कथावत्थु' का भी नाम आया है। परम्परानुसार कथावत्थु का संगायन बौद्ध-धर्म की तीसरी संगीति में सम्राट् अशोक के गुरु मोग्गलिपुत्त तिस्स ने किया था। बौद्ध-संघ में जो अनेक भ्रान्त धारणाएँ प्रचलित हो गई थीं, उनका निराकरण करके उन्होंने सच्चे 'विभज्जवाद' की स्थापना की।

पालि-साहित्य—त्रिपिटकेतर

प्रथम युग : [त्रिपिटक की समाप्ति से पाँचवीं शताब्दी ईस्वी तक)]

भारतीय परम्परा के अनुसार महिन्द [महेन्द्र] अपनी सीलोन (लंका) यात्रा के समय तिपिटक तथा अट्ठकथा (—अर्थकथा जो त्रिपिटक का भाष्य है) अपने साथ लेते गये थे। पुष्ट प्रमाणों के अभाव में इस सम्बन्ध में कुछ भी कहना कठिन है, किन्तु इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि अति प्राचीन-काल में भी सीलोन में अट्ठकथा-साहित्य विपुल-परिमाण में उपलब्ध था। इसी अट्ठकथा-साहित्य के आधार पर बुद्धघोष ने अपनी अट्ठकथा लिखी और दीपवंस तथा अन्य इतिहास सम्बन्धी ग्रन्थों की आधारभूता भी यहीं अट्ठकथाएँ थीं। ये अट्ठकथाएँ बारहवीं शताब्दी तक सीलोन में उपलब्ध थीं। विनयपिटक की अट्ठकथा 'समन्त पासादिका' के आरम्भ की गाथा में बुद्धघोष[1] ने अपने

---

१. आचार्य बुद्धघोष का समय विद्वानों ने ईसा की ५वीं शताब्दी निश्चित किया है। महावंस (पालि में लिखित सीलोन का इतिहास) के अनुसार बुद्धघोष सीलोन के राजा महानाम के राजत्वकाल में हुए थे। महानाम का राजत्वकाल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस ग्रन्थ का आधार अट्ठकथा बतलाया है। बुद्धघोष के अनुसार यह अट्ठकथा प्राचीन सिंहली भाषा में थी। बुद्धसिरी (=बुद्धश्री) थेर(=स्थविर) की प्रेरणा से उन्होंने इन अट्ठकथाओं को सिंहली से पालि में अनूदित किया था।

बुद्धघोष की कृति का मुख्य आधार 'महा-अट्ठकथा' थी, किन्तु उन्होंने अन्य अट्ठकथाओं—जैसे 'महापच्चरी' तथा 'कुरुण्डी-अट्ठकथा'—से भी सहायता ली। 'समन्त-पासादिका' की दो टीकाओं, 'वजिरबुद्धि' तथा 'सारत्थदीपनी' में 'चुल्लपच्चरी, 'अन्धट्ठकथा', 'पण्णवार' तथा 'संखेपट्ठकथाओं' के भी उल्लेख मिलते हैं। 'सद्धम-संगह' (१४वीं शताब्दी) के अनुसार 'सुत्तपिटक' पर 'महा-अट्ठकथा, 'अभिधम्म' पर 'महापच्चरी अट्ठकथा' तथा 'विनयपिटक' पर 'कुरुण्डी-अट्ठकथा', लिखी गई थीं। 'गंधवंस' में भी इन तीन अट्ठकथाओं का उल्लेख मिलता है। 'महाअट्ठकथा' के प्रणेता 'पोराण' (प्राचीन आचार्यगण) बतलाए गए हैं। इससे यह विदित होता है कि शेष दो अट्ठकथाएँ बाद की रचना हैं। प्राचीन सिंहली में लिखित अट्ठकथाएँ अब उपलब्ध नहीं हैं।

बुद्धघोष के पूर्व की दो पुस्तकों—'नेत्तिप्पकरण' अथवा 'नेत्ति' एवं 'पेटकोपदेस'—को बर्मा में त्रिपिटक के अन्तर्गत ही माना जाता है। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट हो जाता है, ये दोनों ग्रंथ वस्तुतः बुद्ध की शिक्षा की भूमिकाएँ हैं। परम्परा के अनुसार इनके प्रणेता बुद्ध के प्रसिद्ध शिष्य महाकच्चायन

५वीं शताब्दी ही है। किन्तु विद्वानों के अनुसार महावंस १३वीं शताब्दी के मध्य की रचना है। जो हो, आचार्य की एक कृति का अनुवाद चीनी भाषा में ४८९ ई० में हुआ था। इससे महावंस में दी हुई तिथि की पुष्टि हो जाती है। ऐसा प्रतीत होता है कि महानाम के राजत्वकाल में, सीलोन स्थित अनुराधपुर के महाविहार में आचार्य ने त्रिपिटक तथा उसकी सिंहली-अट्ठकथा का अध्ययन किया था और इसके परिणामस्वरूप उन्होंने पालि में 'विसुद्धिमग्ग तथा अट्ठ-कथाओं की रचना की।

परम्परानुसार बुद्धघोष का जन्म बोधगया के निकट ब्राह्मण-कुल में बतलाया जाता है। अपने आरम्भिक-जीवन में आचार्य ने वेद, शास्त्र तथा उपनिषदों का गम्भीर अध्ययन किया था, किन्तु महास्थविर रेवत से शास्त्रार्थ में परास्त होकर उन्होंने बौद्धधर्म की दीक्षा ली। इसके पश्चात् ही वे प्राचीन सिंहली में लिखित अट्ठकथाओं का अध्ययन करने के लिए सीलोन गये। यहीं पर उन्होंने पालि में अट्ठकथाओं की रचना की जिससे वे महान् भाष्यकार बने। बहुत सम्भव है कि कई अट्ठकथाओं के प्रणेता अन्य विद्वान् हों, किंतु प्रसिद्धि के कारण बुद्धघोष ही उनके रचयिता मान लिए गए हों।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बतलाए जाते हैं, किन्तु यह सत्य नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि इसके प्रणेता कच्चायन नाम के कोई अन्य व्यक्ति होंगे, किन्तु बाद में लोगों ने इनका रचयिता महाकच्चायन को मान लिया होगा। अन्तःसाक्ष्य तथा वहिः-साक्ष्य के आधार पर श्री ई० हार्डी ने इन दोनों ग्रन्थों का रचनाकाल ईस्वी सन् की प्रथम शताब्दी का आरम्भ माना है। 'नेत्ति' तथा 'पेटक' के साथ ही साथ यहाँ सुत्त 'संगह' का उल्लेख भी आवश्यक है। यह वस्तुतः सूत्रों का संग्रह मात्र है। इसके रचनाकाल तथा प्रणेता के सम्बन्ध में कुछ भी मालूम नहीं है। इसका उल्लेख यहाँ इसलिए आवश्यक है कि 'नेत्ति', 'पेटक' एवं 'मिलिन्दपञ्हों', के साथ-साथ वर्मा में इसे भी 'खुद्दकनिकाय' के अन्तर्गत माना जाता है।

मिलिन्द-पञ्हों [मिलिन्द प्रश्न] में राजा मिलिन्द तथा भिक्षु नागसेन के प्रश्नोत्तर हैं। यद्यपि इस ग्रन्थ की गणना त्रिपिटक के अन्तर्गत नहीं है, फिर भी इसकी प्रामाणिकता उससे कम नहीं मानी जाती। अट्ठकथाचार्य बुद्ध-घोष तक ने भी कई बातों को पुष्ट करने के लिए स्थान-स्थान पर मिलिन्द प्रश्न का प्रमाण दिया है। यह ग्रन्थ पूर्णरीति से स्थविरवादी दृष्टिकोण का प्रतिनिधि है और बौद्ध-जनता में इसका अत्यन्त आदर है।

मिलिन्द से यहाँ बैक्ट्रिया के ग्रीक राजा मिनाण्डर [Minander] से तात्पर्य है। उत्तरी-भारत में सतलज नदी के पार यमुना के आसपास तक उसके राज्य का विस्तार था। अभी तक राजा मिलिन्द के बाईस सिक्के उपलब्ध हुए हैं। इनमें एक ओर ग्रीक में और दूसरी ओर पालि में लेख हैं। इक्कीस सिक्कों पर निम्नलिखित लेख हैं :—
एक तरफ—Basileos Soteros Menadrou और दूसरी तरफ :—महरज-सतद्रतस मेनन्द्रस। कतिपय सिक्कों पर दौड़ते घोड़े, ऊँट, हाथी, सूअर, चक्र तथा ताड़ के पत्ते खुदे हैं। चक्रवाले सिक्के से यह प्रमाणित होता है कि राजा पर बौद्धधर्म का प्रभाव अवश्य पड़ा होगा। एक सिक्के के लेख से तो यह भी मालूम पड़ता है कि कदाचित् राजा ने बौद्ध-धर्म को स्वीकार भी कर लिया था। उसके एक तरफ लिखा है:—Basileos Dikaiou Menandrou और दूसरी तरफ लिखा है:—महरजसधमिकस मेनन्द्रस; यहाँ 'धमिकस' से 'धामिकस्य' तात्पर्य है। बौद्ध-ग्रन्थों में उपासक राजा के लिए बराबर "धम्म-राज" शब्द का प्रयोग मिलता है। अशोक का तो नाम ही हो गया था, धर्माशोक। अतः इस सिक्के का 'धामिकस्य' इस मत की पुष्टि करता है कि कदाचित् अपने जीवन के अन्तिम दिनों में मिलिन्द ने बौद्धधर्म की दीक्षा ले ली थी।

मिलिन्द का राजत्व काल ईसा से लगभग डेढ़ सौ वर्ष पूर्व था, किन्तु इससे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यह सिद्ध नहीं होता कि 'मिलिन्दप्रश्न' की रचना भी इसी समय हुई होगी। बुद्धघोष (५वीं शताब्दी) के समय तक, 'मिलिन्द-प्रश्न' पर्याप्त प्रसिद्ध हो चुका था। बहुत सम्भव है कि इस ग्रन्थ की रचना ईसा की प्रथम शताब्दी में हो चुकी हो, क्योंकि उस समय मिलिन्द का नाम उत्तरी-भारत की जनता में अवश्य प्रसिद्ध होगा।

परम्परा से प्रसिद्ध है कि मिलिन्द बड़ा विद्याव्यसनी था। वेद, पुराण, दर्शन आदि का उसने अच्छा अध्ययन किया था। दार्शनिक विवाद में वह अत्यन्त निपुण था। बड़े-बड़े दिग्गज पण्डित भी उससे शास्त्रार्थ करने में भय मानते थे। तर्क में वह अजेय समझा जाता था। एक बार राजा अर्हत-पद प्राप्त, परम-यशस्वी, स्थविर, नागसेन के पास, शास्त्रार्थ करने गया। स्थविर ने राजा के तर्कों को काटकर उसे बुद्ध-धर्म की शिक्षा दी। इस ग्रंथ में उसी राजा मिलिन्द तथा नागसेन के शास्त्रार्थ का वर्णन है। ग्रंथ के अन्तिम भाग में आता है कि राजा बुद्धधर्म से इतना प्रभावित हुआ कि सारा राजपाट छोड़कर उसने प्रव्रज्या ग्रहण की और अर्हत-पद को प्राप्त हुआ।

'मिलन्द-प्रश्न' के सम्बन्ध में सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि इसके प्रणेता का नाम अभी तक ज्ञात नहीं। कतिपय विद्वानों का मत है कि यह ग्रंथ मूलत: संस्कृत अथवा किसी अन्य प्राकृत में लिखा गया था, किन्तु बाद में इसका पालि में अनुवाद हुआ। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि इसकी शैली पालि की अपेक्षा संस्कृत के ही अधिक निकट है।

पालि के अतिरिक्त मिलिन्द-प्रश्न का एक दूसरा संस्करण चीनी-भाषा में भी उपलब्ध है। त्रिपिटकाचार्य भिक्षु जगदीश काश्यप ने एक चीनी पण्डित की सहायता से उसका अनुवाद अंग्रेजी में किया। श्री काश्यप का इस सम्बन्ध में निम्नलिखित विवरण है—

पुस्तक का चीनी नाम "ना-से-पि-क्कु-किन्" है जिसका अर्थ है "नागसेन-भिक्षु-सूत्र"। इस पुस्तक में कुल छब्बीस पृष्ठ हैं। अनुवाद से पता चला कि—

१. इसका "पूर्व योग" पालि 'मिलिन्द'-प्रश्न से बिल्कुल भिन्न है।

२. यह ग्रन्थ पालि 'मिलिन्द-प्रश्न' तीसरे परिच्छेद तक ही है।

३. इसके प्रश्नोत्तर करीब-करीब उतने ही और वे ही हैं, भाषा और प्रकार में कहीं-कहीं साधारण अन्तर है।

चीनी 'ना-से-पि-क्कु-किन्' का पूर्वयोग संक्षेप में निम्नलिखित है:—

"एक-समय भगवान् बुद्ध 'सिय ओ ए-कोक" (श्रावस्ती) में विहार करते थे। भिक्षु-भिक्षुणियों तथा उपासक-उपासिकाओं से दिन-रात घिरे रहने से उनका मन ऊब गया। एकान्तवास के लिए वे सभी को छोड़ "कार लो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चोंग शू" (पारिलेय्य?) नामक वन में जाकर एक बरगद के वृक्ष के नीचे ध्यान मग्न होकर बैठ गए।

उसके पास ही दूसरे जंगल में एक हस्तिराज अपने अनुचर पाँच सौ हाथियों के साथ वास करते थे। हस्तिराज भी समुदाय के जीवन से ऊबकर अपने सभी अनुचरों को छोड़ उसी जंगल में उस स्थान पर पहुँचे, जहाँ भगवान् बुद्ध बैठे थे। भगवान् बुद्ध ने हस्तिराज को प्रेम से अपने निकट बुलाया। बहुत दिनों तक हस्तिराज वहाँ भगवान् की सेवा करते रहे। जब भगवान् ने वहाँ से प्रस्थान किया तो हस्तिराज को बड़ा दुःख हुआ। वे जीवन भर सदा भगवान् का स्मरण करते रहे।

दूसरे जन्म में हस्तिराज एक ब्राह्मण के घर उत्पन्न हुए। बड़े होने पर उन्हें वैराग्य हो आया और वे संन्यास ग्रहण कर एक पहाड़ पर रहने लगे। उसी पहाड़ पर एक दूसरा संन्यासी भी रहता था जिससे उनकी बड़ी मित्रता हो गई। इन्होंने उससे कहा—"भाई, संसार बड़ा दोषपूर्ण है, इसमें दुःख ही दुःख है। इसी से निर्वाण पाने के लिए मैं संन्यास ले ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत कर रहा हूँ।"

उसने कहा—नहीं, मैं तो यह जीवन इसलिए व्यतीत कर रहा हूँ जिससे अगले जन्म में इस पुण्य के कारण लोक-विजयी अधिराज हो सकूँ। मेरी यही कामना है।

अगले जन्म में उनमें से एक समुद्र के किनारे 'वी-नन' (मिलिन्द) नाम का राजकुमार हुआ। दूसरा "की-पिनकुन" प्रदेश में उत्पन्न हुआ। पूर्वजन्म में निर्वाण पाने की प्रबल इच्छा होने के कारण 'बच्चा' ऐसा मालूम पड़ता था, मानो काषाय पहने हो। उसके उत्पन्न होने के दिन ही उस स्थान पर एक हथिनी को बच्चा पैदा हुआ था। चूँकि हाथी को 'नाग' कहते हैं, इसलिए उसका नाम इस संयोग से "नागसेन" पड़ा।

नागसेन का एक मामा था जिसका नाम था लोहन। लोहन बड़े सिद्ध भिक्षु थे। बालक नागसेन लोहन के साथ रहकर धर्म का अध्ययन करने लगा। नागसेन की बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण थी। उसने अपना अध्ययन शीघ्र समाप्त कर डाला। बीस वर्ष की अवस्था होने पर "ही-सेन" नामक विहार में उसकी उपसम्पदा हुई। भिक्षु-नागसेन निर्वाण प्राप्त करने का दृढ़ अधिष्ठान करके निकल पड़े।

शेष 'पूर्वयोग' पालि संस्करण के जैसा ही है। सभी प्रश्नोत्तर, उपमाएँ तथा भाषा भी कुछ हद तक पालि संस्करण के समान ही है।

पालि मिलिन्द-प्रश्न के तीसरे परिच्छेद के अन्त में स्पष्ट लिखा है—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मिलिन्द राजा के 'प्रश्नों का उत्तर' देना समाप्त। चीनी संस्करण "ना-से-पिञ्कु-किन्" यहीं समाप्त हो जाता है। इस ग्रन्थ का अन्तिम वाक्य है—"तब स्थविर नागसेन पात्र और चीवर लेकर उठे और जाने को उद्यत हुए, राजा भी प्रासाद के द्वार तक आया और उसने उन्हें सम्मान-पूर्वक विदाई दी।" इससे ऐसा जान पड़ता है कि मूल ग्रंथ यहीं तक लिखा गया होगा। पालि-संस्करण में आगे के तीन परिच्छेद—(१) मेण्डक प्रश्न (१) अनुमान प्रश्न तथा (३) उपमा-कथा-प्रश्न पीछे से जोड़ दिए गए होंगे। वास्तव में ये तीन परिच्छेद स्थविर नागसेन तथा राजा मिलिन्द के स्वाभाविक प्रश्नोत्तर नहीं मालूम पड़ते।

बहुत सम्भव है कि मूल-ग्रंथ भारत में संस्कृत में लिखा गया हो और ये पालि तथा चीनी-संस्करण उसी के अनुवाद हों अथवा उसी के आधार पर लिखे गए हों। पालि संस्करण के अन्त में आता है कि राजा मिलिन्द भिक्षु बना और उसने अर्हत-पद प्राप्त किया। इसमें ऐतिहासिक सत्य कहाँ तक है, निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता।

जटिल से जटिल दार्शनिक-तत्त्वों को दैनिक-जीवन की घटनाओं द्वारा स्पष्ट करना, 'मिलिन्द-प्रश्न' की एक बड़ी विशेषता है। प्रश्नोत्तर द्वारा ही इसमें बौद्धधर्म के सिद्धान्त समझाए गए हैं। उदाहरणस्वरूप बौद्धदर्शन के अनुसार मनुष्य नाम-रूप का संघात मात्र है। इसके अतिरिक्त शाश्वत आत्मा का अस्तित्व बौद्ध धर्म को स्वीकार नहीं है। 'मिलिन्द-प्रश्न' के द्वितीय परिच्छेद में "पुद्गल-प्रश्न मीमांसा" के अन्तर्गत इस सिद्धान्त को बड़े अच्छे ढंग से समझाया गया है। नीचे यह अंश दिया जाता है।[1]

तब राजा मिलिन्द आयुष्यमान् नागसेन के पास गया और उन्हें नमस्कार तथा अभिनन्दन करने के बाद एक ओर बैठ गया। आयुष्मान् नागसेन ने भी उत्तर में राजा का अभिनन्दन किया। उससे राजा के चित्त को सांत्वना मिली।

तब, राजा मिलिन्द ने पूछा—'भन्ते ! आप किस नाम से जाने जाते हैं, आपका शुभ नाम ?"

महाराज ! 'नागसेन' के नाम से मैं जाना जाता हूँ, और मेरे सब्रह्मचारी मुझे इसी नाम से पुकारते हैं। महाराज ! यद्यपि माँ-बाप नागसेन, सूरसेन, बीरसेन या सिंहसेन ऐसा कुछ नाम दे देते हैं, किन्तु ये सभी केवल व्यवहार करने के लिए संज्ञाएँ भर हैं, क्योंकि यथार्थ में ऐसा कोई एक पुरुष (आत्मा) नहीं है।

---

१. मिलिन्द प्रश्न—अनु० भिक्षु जगदीश काश्यप, पृ० ३०-३४।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तब राजा मिलिन्द बोला—'मेरे पाँच सौ यवन और अस्सी हजार भिक्षुओ! आप लोग सुनें!! आयुष्मान् नागसेन का कहना है—'यथार्थ में कोई एक पुरुष नहीं है।' उनके इस कहने को क्या समझना चाहिए ?"

"भन्ते नागसेन! यदि कोई एक पुरुष नहीं है तो कौन आपको चीवर, पिण्डपात, शयनासन और ग्लान प्रत्यय–[1] देता है? कौन उसका भोग करता है? कौन शील की रक्षा करता है? कौन ध्यान-भावना का अभ्यास करता है? कौन आर्य-मार्ग के फल, निर्वाण का साक्षात्कार करता है? कौन प्राणतिपात करता है? कौन अदत्तादान (चोरी) करता है? कौन मिथ्या भोगों में अनुरक्त होता है? कौन मिथ्या भाषण करता है? कौन मद्य पीता है? कौन इन पाँच अन्तराय-कारक-कर्मों[2] को करता है? यदि ऐसी बात है तो न पाप है और न पुण्य; न पाप और पुण्य कर्मों का कोई करनेवाला है, और न कोई करानेवाला; न पाप और न पुण्य कर्मों के कोई फल होते हैं। भन्ते नागसेन! यदि कोई आपको मार डाले तो किसी का मारना नहीं हुआ। भन्ते नागसेन! तब आपके कोई आचार्य[3] भी नहीं हुए, कोई उपाध्याय[4] भी नहीं हुए, आपकी उपसम्पदा भी नहीं हुई।

आप कहते हैं कि आपके सब्रह्मचारी आपको 'नागसेन' नामसे पुकारते हैं, तो यह 'नागसेन' क्या है? भन्ते! क्या ये केश नागसेन हैं?

नहीं महाराज!

ये रोम (रोयें) नागसेन हैं?

नहीं महाराज!

ये नख, दाँत, चमड़ा, मांस, स्नायु, हड्डी, मज्जा, वक्क, हृदय, यकृत

---

१. चीवर, पिण्डपात, शयनासन तथा ग्लान प्रत्यय—ये भिक्षु के चार प्रत्यय कहलाते हैं। भिक्षु का काषाय वस्त्र जो कई टुकड़ों को जोड़कर तैयार किया जाता है, चीवर कहलाता है। पिण्डपात से भिक्षान्न का तात्पर्य है; और शयनासन का अर्थ है वासस्थान। ग्लान प्रत्यय के अन्तर्गत ओषधियाँ आती हैं।

२. पाँच अन्तराय-कर्म ये हैं—(१) माता को जान से मार देना, (२) पिता को जान से मार देना (३) अर्हत् को जान से मार देना, (४) बुद्ध के शरीर से रक्त बहाना, (५) संघ में फूट पैदा करना। इन पाँच कर्मों से मनुष्य उस जन्म में कदापि मुक्त नहीं हो सकता।

३. जो गुरु पढ़ाता-लिखाता है, उसे आचार्य कहते हैं।

४. जो गुरु प्रव्रज्या देता है, उसे उपाध्याय कहते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

क्लोमक, प्लीहा (तिल्ली), फुफ्फुस, आँत, पसली आँत, पेट, पखाना, पित्त, कफ़, पीव, लोहू, पसीना, मेद, आँसू, चर्वी, लार, नेटा ,लसिका, दिमाग नागसेन हैं ?

नहीं, महाराज !

क्या आपकी वेदनाएँ नागसेन हैं ?

नहीं, महाराज !

आपकी संज्ञा नागसेन है ?

नहीं महाराज !

आपके संस्कार नागसेन हैं ?

नहीं, महाराज !

आपका विज्ञान नागसेन है ?

नहीं, महाराज !

भन्ते ! तो क्या, रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान सभी एक साथ नागसेन हैं ?

नहीं, महाराज !

भन्ते ! तो क्या इन रूपादि से भिन्न कोई नागसेन है ?

नहीं, महाराज !

भन्ते ! मैं आपसे पूछते-पूछते थक गया, किंतु 'नागसेन' क्या है, इसका पता नहीं लगा। तो क्या 'नागसेन' केवल शब्दमात्र है ? आखिर नागसेन है कौन ? भन्ते ! आप झूठ बोलते हैं कि नागसेन कोई नहीं है।

तब आयुष्मान् नागसेन ने राजा मिलिन्द से कहा—महाराज ! आप क्षत्रिय बहुत ही सुकुमार हैं। इस दोपहर की तपी और गर्म बालू तथा कंकड़ों से भरी भूमि पर पैदल चलकर आने से आपके पैर दुख रहे होंगे, शरीर थक गया होगा, मन को अच्छा नहीं लगता होगा और बड़ी शारीरिक पीड़ा हो रही होगी। क्या आप पैदल चलकर यहाँ आए या किसी सवारी पर ?

भन्ते ! मैं पैदल नहीं, किन्तु रथ पर आया।

महाराज ! यदि आप रथ पर आए तो मुझे बतावें कि आपका रथ कहाँ है? महाराज ! क्या ईषा (दंड) रथ है ?

नहीं भन्ते !

क्या अक्ष रथ है?

नहीं भन्ते !

क्या चक्के रथ हैं ?

नहीं भन्ते !

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रथ का पञ्जर रथ है,?

नहीं भन्ते !

क्या रथ की रस्सियाँ रथ हैं ?

नहीं भन्ते !

क्या लगाम रथ है ?

नहीं भन्ते !

क्या चाबुक रथ है ?

नहीं भन्ते !

"महाराज ! आपसे पूछते-पूछते मैं थक गया, किन्तु यह पता नहीं लगा कि रथ कहाँ है ? क्या रथ केवल एक शब्द मात्र है? आखिर यह रथ है क्या ? महाराज ! आप झूठबोलते हैं कि रथ नहीं है ! महाराज ! सारे जम्बूद्वीप[1] के आप सबसे बड़े राजा हैं; भला किससे डरकर आप झूठ बोलते हैं !

पाँच सौ यवन और मेरे अस्सी हजार भिक्षुओ ! आप लोग सुनें ! राजा मिलिन्द ने कहा—मैं रथ पर यहाँ आया; किन्तु मेरे पूछने पर कि रथ कहाँ है, वे मुझे नहीं बता पाते। क्या उनकी बातें मानी जा सकती हैं ?

इस पर उन पाँच सौ यवनों ने आयुष्मान् नागसेन को साधुकार देकर राजा मिलिन्द से कहा—"महाराज ! यदि आप दे सकें तो उत्तर दें।"

तब राजा मिलिन्द ने आयुष्मान् नागसेन से कहा—भन्ते नागसेन ! मैं झूठ नहीं बोलता। ईषा इत्यादि रथ के अवयवों के आधार पर केवल व्यवहार के लिए "रथ" ऐसा एक नाम कहा जाता है।

महाराज ! बहुत ठीक, आपने जान लिया कि रथ क्या है। इसी तरह मेरे केश इत्यादि के आधार पर व्यवहार के लिए "नागसेन" ऐसा एक नाम कहा जाता है। किन्तु, परमार्थ में 'नागसेन' ऐसा कोई एक पुरुष विद्यमान नहीं है। भिक्षुणी वज्रा ने भगवान् के सामने कहा था—

"जैसे अवयवों के आधार पर 'रथ' संज्ञा होती है, उसी तरह स्कन्धों के होने से एक 'सत्व (जीव)' समझा जाता है।"[2]

भन्ते नागसेन ! आश्चर्य है ! अद्भुत है !! इस जटिल प्रश्न को आपने बड़ी खूबी के साथ सुलझा दिया। यदि इस समय भगवान् बुद्ध स्वयं होते

---

१. भारतवर्ष का प्राचीन नाम पालि-साहित्य में जम्बूदीप है। अभी तक लंका के लोग भारतवर्ष को 'दमदिव' के नाम से पुकारते हैं, जो जम्बूद्वीप का ही सिंहली रूप है।

२. देखो, संयुक्त-निकाय ५।१०।६

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वे भी अवश्य साधुवाद देते—साधु, साधु, नागसेन ! तुमने इस जटिल प्रश्न खूबी के साथ सुलझा दिया ।

'मिलिन्द प्रश्न' छः भागों में विभक्त है—१. पूर्वयोग २. मिलिन्द-प्रश्न लक्षण-प्रश्न ४. मेण्डक-प्रश्न ५. अनुमान-प्रश्न ६. उपमाकथा प्रश्न । इनमें मिलिन्द प्रश्न के दो भाग हैं—(क) लक्षण और (ख) विमति-छेदन । मेण्डक-प्रश्न के भी (क) महावर्ग और (ख) योगी कथा नामक भाग हैं ।

पूर्वयोग में मिलिन्द तथा नागसेन के पूर्वजन्म की कथा है । लक्षण प्रश्न अन्तर्गत विविध तत्त्वों के लक्षण दिए गए हैं और विमतिच्छेदन प्रश्न में र्वाण तथा भगवान् बुद्ध सम्बन्धी अनेक शंकाओं का निराकरण किया गया है । ण्डक-प्रश्न में दुविधाएँ, अनुमान प्रश्न में धर्मनगर की कल्पना तथा उपमा-था-प्रश्न में विविध जीवों के गुण का वर्णन मिलता है ।

बुद्धघोष के पूर्व ही 'दीपवंस' की रचना हुई थी । वस्तुतः यह महासेन के जत्व काल [३२५ ई० से ३५२ तक] का सीलोन का इतिहास है ! चूंकि द्धघोष को इसका नाम मालूम था, अतएव इसकी रचना ३५२ ई०—४५० ई० वीच हुई होगी । साहित्यिक-दृष्टि से दीपवंस का कुछ भी महत्त्व नहीं है । ोता का पालिभाषा का ज्ञान भी साधारण ही प्रतीत होता है, किन्तु इस थ का ऐतिहासिक महत्त्व अवश्य है । इसके निर्माता ने पुरानी अट्ठकथाओं सामग्री लेकर ही इसकी रचना की है । इसमें उपलब्ध तथ्यों की भारतीय म्परा से भी पुष्टि हो जाती है ।

द्वितीय युग : (५वीं शताब्दी से ११वीं तक)

पालि-साहित्य के द्वितीय युग का प्रारम्भ त्रिपिटक की अट्ठकथाओं से ता है । पालि-अट्ठकथाओं का आधार प्राचीन सिंहली में लिखित अट्ठ-थाएँ हैं । इस अट्ठकथा-साहित्य के प्रणेता आचार्य बुद्धघोष बतलाए जाते हैं नके जीवन के सम्बन्ध में अन्यत्र लिखा जा चुका है । सीलोन के राजा ानाम (४५८ ई० से ४८०) के शासनकाल में ये भारत से सिंहल आए । ुराधपुर के महाविहार में इन्होंने त्रिपिटक तथा उसकी अट्ठकथाओं का म्भीर अध्ययन किया और इसके पश्चात् वे पालि अट्ठकथाओं के प्रणयन में ृत्त हुए । बुद्धघोष ने निम्नलिखित अट्ठकथाएँ लिखीं—

१ विनयपिटक १. समन्तपासादिका—विनयपिटक की अट्ठकथा
२. कंखावितरणी—पातिमोक्ख की अट्ठकथा
२ सुत्तपिटक ३. सुमंगलविलासिनी—दीघनिकाय की अट्ठकथा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

४. पपञ्चसूदनी–मज्झिमनिकाय की अट्ठकथा
५. सारत्थपकासिनी–संयुक्तनिकाय की अट्ठकथा
६. मनोरथपूरणी–अंगुत्तरनिकाय की अट्ठकथा
७. परमत्थजोतिका–खुद्दकनिकाय के 'खुद्दकपाठ' सुत्तनिपात की अट्ठकथा

३ अभिधम्मपिटक ८. अट्ठसालिनी–धम्मसंगनी की अट्ठकथा
९. सम्मोहविनोदनी–विभंग की अट्ठकथा
१०. पञ्चप्पकरणट्ठकथा–अभिधम्म पिटक के 'धातुकथा', 'पुग्गलपञ्चत्ति' 'कथावस्तु' 'यमक' तथा 'पट्ठानप्पकरण' की अट्ठकथा

अभिधम्मपिटक की अट्ठकथा को सामान्य रूप से 'परमत्थकथा' के से अभिहित किया जाता है। इसके अतिरिक्त जातक, धम्मपद तथा अ की अट्ठकथाओं के प्रणेता भी बुद्धघोष ही बतलाए जाते हैं। कहा जा कि सोलोन जाने के पूर्व ही उन्होंने 'ज्ञाणोदय' तथा 'अट्ठसालिनी' का प्र भारत में ही किया था।

अट्ठकथाओं के अतिरिक्त बुद्धघोष की सर्वाधिक प्रसिद्ध कृति "वि मग्ग (विशुद्धि मार्ग)" है। इसमें बौद्धधर्म के सिद्धान्तों का स्पष्टीकरण गया है। यदि इसे बौद्धसिद्धान्तों का कोष कहा जाय तो इसमें तनि अत्युक्ति न होगी। इस ग्रन्थ का आरम्भ अत्यन्त रोचक ढंग से हुआ श्रावस्ती में विहार करते हुए भगवान् बुद्ध के समीप एक देवपुत्र ने रात में आकर अपने संशय को मिटाने के लिए—

अन्तो जटा बहि जटा जटाय जटिता पजा।
तं तं गोतम पुच्छामि को इमं विजटये जटन्ति ॥

यह प्रश्न पूछा। इसका संक्षेप में यह अर्थ है—

'जटा' से यहाँ जालरूपी तृष्णा से तात्पर्य है। यह तृष्णा रूपादि में ऊपर-नीचे (सर्वत्र) पुनः-पुनः उत्पन्न होने के कारण, सीने (बाँध जकड़ने) के अर्थ में वेणु गुल्मादि (बाँस, झाड़ी) की शाखाओं से घनीभूत के समान है। उस जटा के स्वकीय और परकीय पदार्थों में, स्वात्म भाव परात्म भाव में तथा आध्यात्मिकायतन और बहिरायतनों में उत्पन्न हो कारण उसे "अन्तो जटा, बहि जटा", कहा गया है। इस प्रकार उत्पन्न से "जटाय जटिता पजा", (=इस जटा से प्रजा जकड़ी हुई) है। 'तं तं'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

छामि,—हे गौतम ! हे बुद्ध ! इसीलिए मैं आपसे पूछता हूं कि 'को इमे जटये जटन्ति'—कौन इस जटा को विजटित करे (=सुलझावे)? भाव यह है संसार के समस्त जीव तृष्णारूपी जटा में आवद्ध हैं। उन्हें इस वन्धन से त करने में कौन समर्थ है ?

इस प्रश्न के पूछे जाने पर सर्वधर्मों में अप्रतिहत ज्ञानवाले, देवों के देव, द्रों के इन्द्र, ब्रह्मा के ब्रह्मा, चार वैशारद्यों में विशारद, दस वलों के धारण रनेवाले, सर्वज्ञ, सर्वद्रष्टा भगवान् बुद्ध ने निम्नलिखित गाथा कही—

सीले पतिट्ठाय नरो सपञ्जो,
चित्तं पञ्चञ्च भावयं,
आतापी निपको भिक्खु
सो इमे विजटये जटन्ति ।

अर्थात् शील में प्रतिष्ठित होकर समाधि तथा विदर्शना की भावना करते वीर्यवान् तथा प्रज्ञावान् भिक्षु इस जटा को विजटित करने (सुलझाने) समर्थ है ।

'सील' (शील), 'समाधि' एवं 'पञ्ञा' (प्रज्ञा) इन तीन भागों में 'विशुद्धि मग्ग' विभक्त है। यह ग्रन्थ संस्कृत की शास्त्रीय शैली में पालि लिखा गया है। इससे यह विदित होता है कि बौद्ध होने के पूर्व आचार्य द्घोष इस शैली में पूर्णरूप से अभ्यस्त हो चुके थे।

यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि 'जातकट्ठकथा' (जातक अट्ठकथा) के प्रणेता भी आचार्य बुद्धघोष ही हैं। यहाँ 'जातक' तथा तकट्ठकथा' में अन्तर जान लेना आवश्यक है। त्रिपिटक में जिस जातक ग्रंथ) का समावेश है, वह केवल गाथाओं का संग्रह मात्र है। जिस प्रकार म्मपद' एक वस्तु है और 'धम्मपद अट्ठकथा' दूसरी, इसी प्रकार जातक एक ज है और 'जातकट्ठकथा' दूसरी। अन्तर यह है कि धम्मपद का अर्थ म्मपद अट्ठकथा' के विना भी समझ में आ सकता है। जातक यद्यपि धम्मपद ही तरह गाथाएँ मात्र हैं, तो भी उन गाथाओं से, यदि पहले से कथा मालूम , तो पाठक को वह कथा याद आ सकती है, किन्तु यदि कथा मालूम न तो अकेली गाथाओं से उद्देश्य पूरा नहीं होता। विना जातकट्ठकथा के जातक पूरा है।

फिर जातक में केवल भगवान् बुद्ध के पूर्व जन्मों से सम्बन्ध रखनेवाली थाएँ भर हैं। 'जातकट्ठकथा' में अट्ठकथा सहित असल जातक कथाएँ आरम्भ े से पहले निदानकथा नाम का एक लम्बा उपोद्घात है। इस निदान

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कथा में सिद्धार्थ गौतम बुद्ध के जीवन चरित के साथ उनके पूर्व के २७
का भी जीवन-चरित है। यह बुद्धवंस से उद्धृत किया हुआ प्रतीत होता है।

जातकट्ठकथा तीन भागों में विभक्त हैं—

(१) दूरे निदान (२) अविदूरे निदान (३) सन्तिके निदान।

बोधिसत्त्व ने जब सुमेध तपस्वी का जन्म ग्रहण कर दीपङ्कर के चरणों
जीवन समर्पित किया, उस समय से लेकर वेस्सन्तर का शरीर छोड़, तु
स्वर्गलोक में उत्पन्न होने तक की कथा दूरेनिदान कही जाती है। तुषित
से च्युत होकर महामाया देवी के गर्भ से उत्पन्न हो बोधगया में बुद्धत्व
करने तक की कथा अविदूरे निदान कही जाती है। जहाँ जहाँ भगवान्
ने विहार करते समय कोई जातक-कथा कही, उन स्थानों का जो उल्लेख
वह सन्तिके निदान है।

जितनी जातक कथाएँ हैं, वे दूरे-निदान के ही अन्तर्गत आती हैं। प्र
जातक कथा चार भागों में विभक्त है—(१) पच्चुपन्नवत्थु (२) अतीत
(३) अट्ठवण्णना (४) समोधान। पच्चुपन्नवत्थु से वर्तमान कथा से तात्पर्य
इसमें भगवान् बुद्ध के समय की किसी घटना का उल्लेख रहता है। अतीत
से तात्पर्य है, किसी भी ऐसे अवसर पर बुद्ध द्वारा कही हुई पूर्वजन्म की क
प्रत्येक कथा में एक या अनेक गाथाएँ हैं। अट्ठवण्णना से इन गाथाओं
व्याख्या से तात्पर्य है। इसमें गाथाओं का शब्दार्थ तथा विस्तृत अर्थ रहता
समोधान सदैव अन्त में आता है। इसमें भगवान् बुद्ध बतलाते हैं कि ज
जो अतीतवत्थु सुनाई, उसके प्रधान पात्रों में कौन कौन था और वे स्वयं
समय किस योनि में उत्पन्न हुए थे।

इसमें सन्देह नहीं कि पालि अट्ठकथा का आधार सिंहली में लि
पुरानी अट्ठकथाएँ हैं। आरम्भ में गाथाओं तथा कथाओं की परम्परा
साथ चली होगी, किन्तु इन दोनों में थोड़ा अन्तर भी है। जहाँ तक गा
का सम्बन्ध है, ये बहुत कुछ अपरिवर्तित रही हैं, किन्तु कहानियों में
परिवर्तन होता रहा। यही कारण है कि गाथाओं तथा कथाओं में कहीं
विरोधाभास भी मिलता है। संक्षेप में, जातक आख्यान के समान है,
सभी जातक इस प्रकार के नहीं हैं। अत्यन्त प्राचीनकाल से ही, सीलों
उपदेश देते समय जातक कथाएँ कहने की परम्परा है, इससे इनकी सर्व
के सम्बन्ध में सहज में ही अनुमान किया जा सकता है।

जातक-कथाएँ वस्तुतः भारत की प्राचीनतम कथाओं में से हैं। निः
इनमें से अनेक की मौखिक परम्परा प्राचीनकाल से ही चली आ रही है,
अतएव इन पर बौद्धों तथा अबौद्धों का समान अधिकार है। भदन्त अ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कौसल्यायन ने ठीक ही कहा है[1]—"प्राचीनकाल का कथा-साहित्य तब आज की तरह स्पष्ट रूप से बौद्ध और अबौद्ध विभाग में विभक्त नहीं था। उस समय एक ही कथा ने बौद्धों के हाथों बौद्धरूप और अबौद्ध कलाकारों के हाथों में पड़कर अबौद्ध रूप धारण किया होगा।" सच बात तो यह है कि इन कथाओं का बौद्धीकरण 'पच्चुपन्नवत्थु' में ही हुआ होगा, क्योंकि यह 'अतीत-वत्थु' के बाद का है। इन कथाओं की घटनाओं के स्थानों पर भी विचार करने की आवश्यकता है। 'अतीतवत्थु' की कथाओं का क्षेत्र प्रायः पश्चिमी एवं उत्तरी भारत (गन्धाररट्ठ आदि) है, किन्तु 'पच्चुपन्नवत्थु' की कथाओं में पूर्वी भारत (कोसल तथा मगधरट्ठ) का ही उल्लेख मिलता है।

इस 'जातकट्ठकथा' का रचयिता अथवा संग्रहकर्त्ता कौन है? विल्हेम गाइगर[2] का अनुमान है कि इसका प्रणेता सीलोन का कोई स्थविर होगा। सम्भव है, यह बुद्धघोष ही हों अथवा उन्हीं का समकालीन कोई अन्य व्यक्ति हो। आनन्द कौसल्यायन जातकट्ठकथा के प्रणयन का श्रेय बुद्धघोष को नहीं देना चाहते। आप लिखते हैं[3] —

जातकट्ठकथा के रचयिता ग्रन्थ के आरम्भ में कहते हैं कि "बुद्धधर्म की चिरस्थिति चाहनेवाले अर्थदर्शी स्थविर सहवासी तथा एकान्त प्रेमी शान्त-चित्त पण्डित बुद्धमित्त, और महिंशासक वंश में उत्पन्न, शास्त्रज्ञ शुद्ध बुद्धि भिक्षु बुद्धदेव के कहने से महापुरुषों के चरित्र के अनन्त प्रभाव को प्रकट करनेवाली जातक अर्थवण्णना की महाविहारवालों के मत के अनुसार व्याख्या करूँगा। यहाँ इस आत्म-परिचयात्मक लेख में जो महिंशासक सम्प्रदाय के बुद्धदेव का नाम है, वह कुछ बहुत अनोखा है, खटकनेवाला है। महिंशासक सम्प्रदाय स्थविरवाद से बाहर निकला हुआ एक सम्प्रदाय था। महाविहार परम्परा शुद्ध स्थविरवाद को ही माननेवाली परम्परा रही है। आचार्य बुद्धघोष ने अपनी सब अट्ठकथाओं में इसी परम्परा को अपनाया है। यदि जातकट्ठकथा बुद्धघोष रचित मानी जाय, तो उसमें महिंशासक सम्प्रदायी बुद्धदेव की याचना का क्या अर्थ?"

धम्मपदट्ठकथा वस्तुतः जातककथा के बाद की चीज है। इसकी आर-म्भिक गाथाओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि मूल सिंहली अट्ठकथा से ही इसका पालि में अनुवाद हुआ है। कतिपय विद्वानों का मत है कि बुद्धघोष

---

१. आनन्द कौसल्यायन—जातक [प्रथम खण्ड] की भूमिका, पृ० २५-२६
२. विल्हेम गाइगर—'पालि लिट्रेचर एंड लैंग्वेज'
३. देखिए—जातक, (प्रथम खण्ड) की भूमिका, पृ० २२-२३

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इसके प्रणेता न थे, किन्तु वहुत सम्भव है कि किसी पुरानी अट्ठकथा के आधार पर इसकी रचना हुई थी। धम्मपदट्ठकथा में प्रत्येक गाथा अथवा गाथा समूह के रचना-स्थान तथा अवसर आदि का निर्देश मिलता है। पहले धर्मदेसना (धर्मोपदेश) के रूप में वुद्ध कहानी कहते हैं और अन्त में गाथा आती है। इन गाथाओं की भी शब्दशः व्याख्या इस अट्ठकथा में मिलती है।

धम्मपदट्ठकथा एक प्रकार से जातकट्ठकथा का पूरक है। जातक की भाँति ही इसकी कहानियाँ भी अत्यन्त प्राचीन हैं, किन्तु इन दोनों में अन्तर यह है कि जातक की कहानियों की अपेक्षा धम्मपदट्ठकथा की कहानियों में बौद्धधर्म सम्बन्धी भावना अधिक है। इसी में 'किसागोतमी' (कृशा गौतमी) की कथा भी है। गौतमी अपने मृतक पुत्र को गोद में लिए वुद्ध के पास पहुँच जाती है और उनसे उसे जिलाने की प्रार्थना करती है। वुद्ध उससे कहते हैं— गौतमी ! कहीं से सरसों माँग ला, किन्तु यह उस घर का होना चहिए जिसके घर कभी कोई मरा न हो। वह चारों ओर से भटककर अन्त में वुद्ध के पास लौट आती है; किन्तु इस व्यर्थ प्रयास में उसे संसार की अनित्यता का बोध हो जाता है और वह वुद्ध के शरणापन्न हो जाती है। इस अट्ठकथा में स्थान-स्थान पर जातकों, निकायों, 'विमानवत्यु, 'पेतवत्थु', 'सुत्तनिपात' तथा 'विनय-पिटक' के उद्धरण भी मिलते हैं।

वुद्धघोष के साथ-साथ वुद्धदत्त का उल्लेख भी आवश्यक है। परम्परा-नुसार आप वुद्धघोष के समकालीन थे। कहा जाता है कि आपने 'वुद्धवंस' पर 'मधुरत्थविलासिनी' अथवा 'मधुरत्थपकासिनी' नामक अट्ठकथा की रचना की थी। आपकी अन्य रचनाएँ 'विनयविनिच्चय' 'उत्तर विनिच्चय' 'अभिध-म्मावतार' तथा 'जिना-लंकार' वतलाई जाती हैं। इनमें से 'विनयविनिच्चय' तथा 'उत्तर विनिच्चय' तो विनयपिटक सम्बन्धी रचनाएँ हैं, किन्तु 'अभिधम्मा-वतार' का सम्बन्ध अभिधम्मपिटक से है। प्रथम कृति को छोड़कर अन्य के सम्बन्ध में यह निश्चयात्मक-रूप से नहीं कहा जा सकता कि इनके रचयिता वुद्धदत्त ही थे। यह भी सम्भव है कि वाद के किसी वुद्धदत्त की कृतियों को भी वुद्धघोष के समकालीन वुद्धदत्त की रचनाओं के साथ सम्मिलित कर दिया गया हो।

वुद्धदत्त के वाद आनन्द का नाम आता है। आप भारत के निवासी थे तथा आपने 'मूलटीका' अथवा 'अभिधम्म मूलटीका' की रचना की थी। यह अभिधम्म की अट्टकथा पर सवसे प्राचीन टीका है। कहा जाता है कि वुद्ध-मित्त की प्रेरणा से वुद्धदत्त ने इस टीका की रचना की थी। यह भी प्रसिद्ध है कि वुद्धमित्त के आग्रह से ही वुद्धघोष ने 'पपंचसूदनी' की रचना की थी। यदि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यह सत्य मान लिया जांय तो इससे यह निष्कर्ष निकला कि आनन्द भी बुद्धघोष के समकालीन थे।

खुद्दकनिकाय के कतिपय ग्रन्थों--उदान, इतिवुत्तक, विमान और पेत-वत्थु, थेर तथा थेरीगाथा एवं चरियापिटक--पर बुद्धघोष ने कोई अट्ठकथा अथवा टीका नहीं लिखी थी; अतएव इन पर धम्मपाल ने "परमत्थदीपनी" टीका लिखी। इसके अतिरिक्त धम्मपाल के नाम से निम्नलिखित रचनाएँ भी प्रसिद्ध हैं--

१. महाटीका अथवा परमत्थमंजूपा--यह विसुद्धिमग्ग की टीका है।

२. नेत्तिप्पकरणस्स अत्थवण्णना--यह नेत्ति की टीका है।

३. लीनात्थ वण्णना--अपनी ही रचना पर टीका है।

४. लीनात्थपकासिनी--यह चारों निकायों--दीघ, मज्झिम, संयुक्त अंगुत्तर की अट्ठकथा पर टीका है।

५. जातकट्ठकथा टीका।

६. वुद्धदत्त के मधुरत्थविलसिनी की टीका।

७. अभिधम्मत्थट्ठकथा की अनुटीका।

अन्त की चार टीकाएँ आज उपलब्ध नहीं हैं।

वुद्धघोष के वाद, धम्मपाल पालि-साहित्य के सर्वाधिक प्रसिद्ध टीकाकार हैं। वहुत सम्भव है कि धम्मपाल नाम के अन्य टीकाकार भी हुए हों और उनकी कृतियाँ विख्यात टीकाकार धम्मपाल के नाम से प्रचलित हो गई हों। इस धम्मपाल का समय भी विवादग्रस्त है। यदि यह नालन्द विहार के धम्मपाल हैं जो ह्वेनसांग के आचार्य के आचार्य थे तो इनका समय बुद्धघोष से एक शताब्दी वाद होगा, किन्तु निश्चित सामग्री न उपलब्ध होने से इस सम्वन्ध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

पालि-साहित्य के प्राचीन टीकाकारों की सूची नीचे दी जाती है--

१. चुल्लधम्मपाल--आप आनन्द के शिष्य थे तथा आपने "सच्च संखेप" की रचना की थी।

२. उपसेन--आपने 'निद्देस' पर 'सधम्मप्पजोतिका' अथवा 'सधम्मट्ठि-तिका' टीका लिखी थी।

३. महानाम--आप 'पटिसम्भिदामग्ग' की टीका 'सधम्मप्पकासिनी' के रचयिता थे।

४. कस्सप--आपने 'मोहविच्छेदनी' तथा 'विमतिच्छेदनी' की रचना की थी।

५. वजिर बुद्धि--आपने 'समन्तपासादिका' पर 'वजिरवुद्धि' टीका की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रचना की थी। 'गन्ध वंस' में महावजिर बुद्धि, तथा चुल्लवजिरवुद्धि का उल्लेख मिलता है। ये दोनों जम्बूद्वीप (भारतवर्ष) के निवासी थे। कहा जाता है कि महावजिरवुद्धि ने 'विनयगन्धि' की रचना की थी।

६. खेम—आप 'खेमपप्करण' के प्रणेता थे। आपके नाम का उल्लेख 'चुल्ल धम्मपाल' तथा अनुरुद्ध के नामों के साथ हुआ है।

७. अनुरुद्ध—ने 'अभिधम्मत्थ संग्रह' का प्रणयन किया था। अभिधम्म पर यह ग्रंथ अत्यधिक प्रसिद्ध एवं प्रचलित है और १२वीं शताब्दी के कई प्रसिद्ध स्थविरों ने इस पर टीकाएँ लिखी हैं। अनुरुद्ध ने अभिधम्म-सम्बन्धी दो अन्य ग्रन्थों—'परमत्थविनिच्चय' तथा 'नामरूप परिच्छेद'—की भी रचना की थी। इन दोनों ग्रंथों पर भी दो टीकाएँ लिखी गईं।

विनयपिटक सम्बन्धी दो अन्य ग्रंथों का उल्लेख भी आवश्यक है। ये हैं—धम्मसिरि कृत 'खुद्दसिक्खा' तथा महासामिन द्वारा रचित 'मूल सिक्खा'। ये भिक्षुओं के लिए संघ-सम्बन्धी नियमों के संग्रह हैं और कंठाग्र करने के लिए पद्य-बद्ध किए गए हैं। इनकी कई टीकाएँ उपलब्ध हैं तथा सिंहली में भी इनका अनुवाद हुआ है। इनकी भाषा तथा शैली से यह स्पष्ट हो जाता है कि ११वीं शताब्दी के पहले की ये रचनाएँ नहीं हैं। राजा परक्कम बाहु प्रथम के पोलोन्नरुअ के गल विहार के १२वीं शताब्दी के मध्यभाग के एक शिलालेख में इन ग्रंथों का उल्लेख मिलता है जिससे इतना तो प्रमाणित ही हो जाता है कि इस समय के पहले ही इनकी रचना हुई होगी।

पालि-साहित्य में 'दीपवंस' तथा 'महावंस' इतिहास-सम्बन्धी ग्रंथ हैं। ये दोनों वस्तुतः सिंहल के इतिहास हैं। इन दोनों के विषय भी एक ही हैं। दोनों में केवल विषय की ही समानता नहीं है, बल्कि दोनों का वर्णनक्रम भी एक ही है। 'महावंस', 'दीपवंस' के पीछे की रचना है। इससे या तो वह दीपवंस की नक़ल है या इन दोनों के रचयिताओं ने किसी तीसरी जगह से सामग्री और उसका क्रम ग्रहण किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि सिंहल भाषा में लिखित पुरानी अट्ठकथा ही इनका आधार है। महावंश की टीका में इसका उल्लेख इस प्रकार मिलता है :—"आचार्य ने पुरानी सिंहल अट्ठकथाओं में से अति विस्तार तथा पुनरुक्ति दोषों को छोड़कर सरलता से समझ में आने योग्य करके 'महावंश' को लिखा।"[1]

---

१. अयं हि आचरियो एत्थ पोराणकम्हि सीहल अट्ठकथा महावंसे अतिवित्थार पुनुरुत्त दोस भाद पहाय तं सुखगहणादि पयोजनं सहितं कत्वा कथेति (महावंस टीका, पृ० २५)।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दीपवंस तथा महावंस में एक अन्तर यह है कि काव्य की दृष्टि से दीप-वंस का कुछ भी महत्त्व नहीं है। वह नितान्त शुष्क तथा भर्ती की चीज प्रतीत होता है। उस में कहीं-कहीं पद्य के बीच में गद्य भी आ गया है; किन्तु इसके विपरीत महावंस तो एक सरस तथा श्रेष्ठ महाकाव्य है। महावंस का शब्दार्थ है, महान् लोगों का वंश।[1] महान लोगों के वंस का परिचय करानेवाला होने से तथा स्वयं भी महान् होने से इसका नाम पड़ा महावंश।[2]

'दीपवंश' के रचयिता के नाम का पता नहीं है; किन्तु महावंस के टीकाकार के अनुसार इसके प्रणेता का नाम महानाम स्थविर था। वे स्थविर दीघसन्द द्वारा निर्मित विहार में रहते थे। दीघसन्द सेनापति राजा देवानांप्रिय तिस्स (ई० पू० २४७-२०७ ई० पू० तक) के सेनापति थे। वस्तुतः तिस्स तथा दुट्ठगामणी (ई० पू० १०१-७७ ई० पू०) इन सिंहल के दो राजाओं का ही वर्णन महावंस में विशेष रूप से हुआ है। मूल महावंस सैंतीसवें परिच्छेद की पचासवीं गाथा तक में ही समाप्त हो जाता है। गाइगर के अनुसार इसकी रचना छठी शताब्दी के आरम्भ में राजा धातुसेन के राजत्व-काल में हुई होगी। इसके बाद भी महावंस को लिखने की परम्परा जारी रही और यह सन् १९३६ में समाप्त हुई।[3]

वैयाकरण कच्चायन बुद्धघोष के बाद हुए। उनके द्वारा रचित 'कच्चायन व्याकरण' अथवा 'कच्चायनगन्ध' पालि-भाषा का प्राचीनतम व्याकरण माना जाता है। आर० ओ० फ्रांके के अनुसार बुद्धघोष तथा धम्मपाल के पूर्व भी व्याकरण की कोई प्रणाली प्रचलित होगी। यह प्रणाली कच्चायान से भिन्न होगी और कदाचित् बोधिसत्त के व्याकरण पर आधारित होगी। कच्चायन व्याकरण की सबसे बड़ी त्रुटि यह है कि यह संस्कृत तथा पालि के ऐतिहासिक सम्बन्ध के विषय में मौन है। इस कच्चायन का न तो बुद्ध के शिष्य महा-कच्चायन से ही कोई संबंध है और न पाणिनीय व्याकरण के वार्तिककार कात्यायन से ही। 'नेत्ति' तथा 'पेटक' के प्रणेता कच्चायन से भी ये भिन्न हैं। निस्सन्देह कच्चायन बुद्धघोष के बाद के हैं, अन्यथा आचार्य ने उनके व्याकरण के पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया होता। कच्चायन ने अपने व्याकरण के प्रणयन में कातंत्र तथा पाणिनि के व्याकरणों के अतिरिक्त काशिका का भी उपयोग किया था। काशिका का रचनाकाल सातवीं शताब्दी है। इससे कच्चायन

---

१. महंतानं वंसो तन्ति पवेणि महावंसो (महावंस टीका, पृ० १९)

२. महंतानं वंस परिदीपकत्ता, सयमेव महंतत्तापि, महावंसो नाम (महा० वं० टीका, पृ० ७)

३. आनन्द कौसल्यायन—महावंश, पृ० २-३

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के समय पर भी प्रकाश पड़ता है। इस महाव्याकरण के अतिरिक्त कच्चायन 'महानिरुत्तिगन्ध' तथा 'चूल निरुत्तिगन्ध' के रचयिता भी बतलाए जाते हैं। कच्चायन के व्याकरण पर अनेक टीकाएँ लिखी गई हैं। इन में विमलबुद्धि-कृत 'न्यास' प्रसिद्ध है। इसका दूसरा नाम 'मुखमत्तदीपनी' भी है। बारहवीं शताब्दी के अन्त में इस पर छपद ने 'न्यास-प्रदीप' नामक टीका लिखी थी।

तृतीय युग : (१२वीं शताब्दी से आधुनिक युग तक)

सीलोन के राजा परक्कमबाहु प्रथम (११५३-११८६) का शासन-काल वस्तुतः पालि-साहित्य रचना का स्वर्ण-युग था। उसके तत्त्वावधान में महाकस्सप थेर ने बुद्धघोषकृत मागधी भाषा में लिखित अट्ठकथाओं की टीका प्रस्तुत करने के लिए एक संगीति (सभा) की आयोजना की। इन टीकाओं की सूची निम्नलिखित है—

१. सारत्थ दीपनी—विनयपिटक की अट्ठकथा, समन्त पासादिका की टीका।
२. पठम-सारत्थ मंजूसा—दीघनिकाय की अट्ठकथा, सुमंगल विलासिनी की टीका।
३. द्वितीय सारत्थ मंजूसा—मज्झिम निकाय की अट्ठकथा, पपञ्चसूदनी की टीका।
४. तृतीय सारत्थ मंजूसा—संयुक्त निकाय की अट्ठकथा, सारत्थप्पकासिनी की टीका।
५. चतुत्थ सारत्थ मंजूसा—अंगुत्तर निकाय की अट्ठकथा, मनोरथ-पूरणी की टीका।
६. पठम परमत्थप्पकासिनी—धम्मसंगनी की अट्ठकथा, अट्ठसालिनी की टीका।
७. दुतिय परमत्थप्पकासिनी—विभंग की अट्ठकथा, सम्मोहन विनोदनी की टीका।
८. ततिय परमत्थप्पकासिनी—धातुकथा आदि की अट्ठकथा, पञ्चप्प करणट्ठकथा की टीका।

इन टीकाओं में सारिपुत्तकृत 'सारत्थदीपनी' आज भी सुरक्षित है। पपञ्च-सूदनी की टीका 'लीनात्थ पकासना' भी वस्तुतः सारिपुत्त की ही कृति है।

महाकस्सप द्वारा आयोजित संगीति का विवरण भी प्राचीन संगीतियों के विवरण जैसा ही है। बहुत सम्भव है कि इस संगीति के द्वारा टीकाओं की रचना को विशेष रूप से प्रोत्साहन मिला हो। इस टीका-साहित्य की रचना में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सारिपुत्त तथा उनके शिष्यों का विशेष हाथ था। ऊपर लिखित दो ग्रंथों के अतिरिक्त 'विनय संग्रह' भी सारिपुत्त की रचना बतलाई जाती है। 'गन्ध वंस' के अनुसार तो 'मनोरथ पूरणी' की टीका 'सारत्थ मंजूसा' के रचयिता भी आप ही थे।

सारिपुत्त के कई शिष्य हुए। इनका विवरण नीचे दिया जाता है—

१. संघ रक्खित—आप 'खुद्दकसिक्खा टीका' के प्रणेता थे। 'नूतन टीका' का भी नाम दिया गया है और इसका रचना-काल महायस द्वारा प्रणीत पोराण (प्राचीन) टीका के बाद का है। इन दोनों टीकाओं की हस्तलिखित प्रतियाँ आज भी सुरक्षित हैं।

२. बुद्धनाग—आपने 'कंखावितरणी की टीका' 'विनयत्थ मंजूसा' की रचना की थी जो हस्तलिखित रूप में आज भी सुरक्षित है।

३. वाचिस्सर—'गन्धवंस' में आप द्वारा रचित अट्ठारह ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है। इनमें से निम्नलिखित ग्रन्थों की हस्तलिखित प्रतियाँ आज भी उपलब्ध हैं—

(क) मूलसिक्खा अभिनव टीका—यह विमलसारकृत पोराण टीका के बाद की रचना है।

(ख) सीमालंकार संग्रह—इसका सम्बन्ध 'विनय' से है। इसमें सीमा विशेष में रहनेवाले भिक्षुओं के उन धार्मिक कृत्यों का संग्रह है जिन्हें उन्हें संघरूप में करना चाहिए।

(ग) खेमप्पकरण टीका—यह खेम द्वारा रचित 'खेमप्पकरण' की टीका है।

(घ) नामरूप परिच्छेद टीका—यह अनुरुद्ध द्वारा रचित 'नामरूप परिच्छेद' की टीका है।

(ङ) सच्चसंखेप टीका—यह 'सच्चसंखेप' पर सुमंगल की टीका से पुरानी है।

(च) अभिधम्मावतार टीका—यह बुद्धदत्त की प्रसिद्ध कृति 'अभिधम्माव-तार' की टीका है।

(छ) रूपारूपविभाग—इसका सम्बन्ध 'अभिधम्म' से है।

इनके अतिरिक्त 'विनयविनिच्चय', 'उत्तरविनिच्चय' टीकाओं एवं 'खुद्दक सिक्खा' पर 'सुमंगलप्पसादनी' तथा 'योगविनिच्चय' और 'पच्चयसंग्रह' आदि ग्रन्थों का भी उल्लेख मिलता है। बहुत सम्भव है कि वाचिस्सर नाम के अन्य स्थविरों के ग्रन्थ भी इस सूची में सम्मिलित कर लिए गए हों।

४. सुमंगल—आपने अनुरुद्ध के 'अभिधम्मत्थ संग्रह' पर 'अभिधम्मत्थ'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विभावनी एवं 'अभिधम्मावतार' पर 'अभिधम्मत्थ विकासनी' नामक टीकाओं की रचना की थीं। इसी प्रकार आप 'सच्चसंखेप टीका' के भी प्रणेता थे। इसका दूसरा नाम 'अभिनव टीका' भी है। ये तीनों ग्रन्थ हस्तलिखित रूप में आज भी उपलब्ध हैं।

सवम्म जोतिपाल अथवा छपद भी सारिपुत्त की शिष्य मण्डली में से थे। आप बरमा-निवासी थे, किन्तु आपकी शिक्षा-दीक्षा सीलोन में हुई थी, जहाँ परम्परानुसार आप सन् ११७० से ११८० तक रहे थे। आप द्वारा रचित (क) 'विनयसमुट्ठान दीपनी' (ख) 'पातिमोक्ख विसोधनी' (ग) 'विनय-गूढ़त्थ दीपनी' का सम्बन्ध विनयपिटक से है। इनमें विनयपिटक के कठिन अंशों की मीमांसा की गई है। इनके अतिरिक्त आप (घ) 'सीमालंकार संगह टीका' के भी रचयिता हैं। आपने अभिधम्म से सम्बन्ध रखनेवाले (ङ) 'मातिकत्थ दीपनी' (च) 'पट्ठान गणनानय' (छ) 'नामचार दीप' ग्रन्थों की रचना की थी। आपकी (ज) 'अभिधम्मत्थ संगह संखेप टीका' सर्वाधिक प्रसिद्ध है। यह अनुरुद्ध द्वारा प्रणीत 'अभिधम्मत्थ संगह' पर लिखी गई है। एक और ग्रन्थ (झ) 'गन्धसार' के रचयिता भी छपद ही बतलाए जाते हैं। वस्तुतः यह त्रिपिटक के कुछ अंशों का संकलन है।

छपद के साथ ही साथ बरमा के एक अन्य भिक्षु सारिपुत्त अथवा धम्म-विलास का उल्लेख आवश्यक है। आपकी मृत्यु सन् १२४६ में हुई थी। आप की उपसम्पदा आनन्द के तत्त्वावधान में हुई थी। आनंद वस्तुतः उन चार स्थविरों में से थे जो छपद के साथ सीलोन से बरमा गए थे। धम्मविलास ही बरमा के प्राचीनतम धर्मशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थ 'धम्मविलास-धम्मसत्थ' के रचयिता हैं। बरमा के विधान (कानून)-सम्बन्धी ग्रन्थों का यह आधार है।

सारिपुत्त के शिष्यों ने बौद्धधर्म एवं कथा-साहित्य के क्षेत्र में भी पर्याप्त कार्य किया। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित ग्रन्थ एवं उनके प्रणेता उल्लेखनीय हैं—

१. धम्मकित्ति—आपने 'दाठावंस' की रचना की थी जिसके अन्त में आप ने अपने को सारितनुज का शिष्य बतलाया है। इस ग्रन्थ की प्रारम्भिक गाथाओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि १३वीं शताब्दी के आरम्भ में इसकी रचना हुई थी। इसमें बुद्ध के 'दन्त-धातु' की कथा है। महावंस में इस सम्बन्ध में जो सामग्री है, उसका आधार सम्भवतः सीलोन में परम्परा से प्रचलित दन्त-कथाएँ हैं। 'दाठावंस' में इस समस्त सामग्री का उपयोग किया गया है।

२. वाचिस्सर—आप भी कदाचित् सारिपुत्त के शिष्य थे। आपने 'थूप-वंस' की रचना की है। यह गद्यग्रंथ है। इसमें 'निदानकथा' 'समन्तपासादिका'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तथा टीका सहित 'महावंस' के कुछ अंश संगृहीत हैं। १३वीं शताब्दी के प्रथमार्ध में इसकी रचना हुई थी। इसके वाद १२५०-१२६० में सिंहली में भी इसका अनुवाद हुआ।

३. बुद्ध रक्खित—आपने 'जिनालंकार' की रचना की थी। पद्य में लिखित इस ग्रन्थ की शैली नितान्त कृत्रिम एवं अलंकारपूर्ण है। यह प्रारंभ से लेकर सम्मासम्बुद्ध होने तक का भगवान बुद्ध का जीवन है, ग्रन्थ के अन्त में लेखक ने अपना नाम तथा संवत् १७०० (बुद्धाब्द=११५६) दिया है। बुद्धदत्त द्वारा लिखित 'जिनालंकार' से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है।

४. मेधंकर—आपने 'जिन चरित' का प्रणयन किया था। इसका भी विषय वही है जो 'जिनालंकार' का। इसकी शैली भी अत्यधिक कृत्रिम है। गंधवंस के अनुसार आप भी सारिपुत्त के शिष्य थे तथा वाचिस्सर, सुमंगल एवं धम्मकित्ति के वाद हुए थे। मेधंकर ने अपने ग्रन्थ के अन्त में लिखा है कि राजा विजयवाहु द्वारा निर्मित परिवेण में आपने अपने ग्रन्थ की रचना की थी। यह उल्लेख प्रशस्ति रूप में हुआ है, जिससे प्रतीत होता है कि इस राजा के राजत्वकाल में लेखक ने अपना ग्रन्थ लिखा होगा। यदि इस वात को सत्य मान लिया जाय तो यह विजयवाहु तृतीय होगा, जिसका शासनकाल १२२५ से १२२९ तक था। और मेधंकर वाचिस्सर के समसामयिक होंगे।

सीलोन की परम्परागत उपलब्ध सामग्री की दृष्टि से 'महावंस' की टीका 'वंसत्थप्पकासिनी' अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसके लेखक का नाम अज्ञात है। संभवतः इसका रचना काल बारहवीं शताब्दी है। इसमें अट्ठकथाओं की सामग्री का भी समावेश किया गया है। यही कारण है कि यह और भी अधिक महत्त्वपूर्ण वन गई है।

वेदेह थेर का समय तेरहवीं शताब्दी है। उसका जन्म विप्पगाम के ब्राह्मण वंश में हुआ था। वह आनंदथेर का अन्तेवासी था। इसके दो अन्य ग्रन्थ (१) समन्तकूट वण्णना एवं (२) रसवाहिनी प्रसिद्ध हैं। इनमें से प्रथम ग्रन्थ पद्यवद्ध है, जिसमें बुद्ध के जीवन तथा उनके तीन वार लंका में पदार्पण करने का वर्णन है। अपनी तीसरी यात्रा में भगवान् बुद्ध ने समन्तकूट पर अपने वाम पद का चिह्न छोड़ा था, जो श्रीपद के नाम से अभिहित किया जाता है। द्वितीय ग्रन्थ रसवाहिनी गद्य में लिखित कहानियों का संकलन है। इन्हें मूल सिंहली से पालि में अनूदित किया गया है। मूलतः इसे महाविहार के रट्ठपाल ने पालि में अनूदित किया था। किन्तु इसे वाद में वेदेहथेर ने परिष्कृत रूप दिया था। रसवाहिनी में कुल १०३ कहानियों का संग्रह है, जिनमें से ४० का जम्बूदीप से तथा शेष ६३ का लंकाद्वीप से सम्बन्ध है। ऐसा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रतीत होता है कि मूल रूप में इसकी सामग्री अट्ठकथाओं से ली गई है। 'सहस्स वत्थुप्पकरण' में एक सहस्र कहानियाँ हैं। विषय की दृष्टि से इसका सम्बन्ध रसवाहिनी से है। कहा जाता है कि ये कहानियाँ वर्मा से सीलोन में आई हैं।

वैदेहथेर के ही समसामयिक बुद्धप्पिय हैं। आप 'पज्जमधु' काव्य के प्रणेता हैं। इस काव्य में १०४ पद हैं। इसमें भगवान् बुद्ध के सौन्दर्य एवं ज्ञान का वर्णन है। ग्रन्थ के अंतिम गाथा से पूर्व की एक गाथा में कवि ने अपना नाम दिया है तथा अपने को आनन्द का शिष्य वतलाया है। निस्सन्देह ये वही आनन्द हैं जो वैदेह रथ के गुरु थे। "अत्तनगलुविहारवंस" की रचना भी संभवतः तेरहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुई थी। इसमें गद्य और पद्य दोनों का सम्मिश्रण है। इसमें श्री संघवोधि एवं उनकी पत्नी की मृत्यु की कथा उपलव्ध है। इनकी जहाँ पर मृत्यु हुई थी, वहीं पर अत्तनगलुविहार का निर्माण हुआ था। इस ग्रन्थ के प्रणेता का नाम अज्ञात है।

महानाम कृत 'महावंस' विशेष रूप से 'चूलवंस' के नाम से विख्यात है। यह सीलोन का इतिहास है। परम्परानुसार इसका मूल लेखक धम्मकित्ति थेर था। महावंस के अनुसार यह परक्कमवाहु द्वितीय (तेरहवीं शताब्दि के पूर्वार्द्ध) के शासन-काल में वरमा से सीलोन आया था। परक्कमवाहु चतुर्थ के शासन-काल [आरम्भ सन् १२८४] में महावंस में नई सामग्री का समावेश किया गया। महावंश के द्वितीय खण्ड के ३७ से ९० अध्यायों में, प्रथम परक्कमवाहु [११५३ से ११८६] के सुशासन का वर्णन है। अठारहवीं शताब्दि के उत्तरार्द्ध में राजा कित्तिसिरि ने अपने युग का इतिहास महावंस में समाविष्ट कराया। इसके १०१ वें अध्याय में, सीलोन में अंग्रेजों के आगमन तक का वर्णन है।

तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दि के सन्धिकाल में पालि में जो ग्रंथ लिखे गए, उनका विवरण इस प्रकार है—

(१) सारसंगह—इसके प्रणेता सिद्धत्थ हैं। यह धर्म सम्वन्धी ग्रंथ है तथा इसमें गद्य एवं पद्य दोनों हैं। लेखक ने ग्रंथ के अन्तिम पदों में अपना नाम दिया है तथा अपने को वुद्धप्पिय का शिष्य वतलाया है। यदि यह वही वुद्धप्पिय हैं जिन्होंने "पज्जमधु" की रचना की थी तो 'सार संगह' का रचनाकाल स्पष्ट है। "मोग्गलान पञ्चिका पदीप" में 'सारसंगह' का उल्लेख मिलता है। पदीप की रचना सन् १४५७ में हुई थी अतएव सारसंगह की रचना इससे पूर्व अवश्य हो गई होगी। इसके विषय का ज्ञान इसके अध्यायों के शीर्षकों से स्पष्ट हो जाता है। उदाहरणार्थ १ से ३ अध्याय के शीर्षक हैं, 'वुद्धानं अभिनिहार', 'तथागतस्स अच्छरियानि' तथा 'पञ्चअन्तर्धानानि'। इसी प्रकार १३ से १५ अध्याय

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के शीर्षक, 'सीलानि', 'कम्मट्ठानानि' तथा 'निब्बान' और ३० से ३४ अध्याय के शीर्षक 'नागा', 'सुपण्णा', 'पेता', 'असुरा' तथा 'देवा' हैं। इसके अन्तिम अध्याय का विषय 'लोकसंठिति' है।

२. इस युग का दूसरा ग्रंथ 'सद्धम्म संगह' है जिसके प्रणेता धम्मकित्ति महासामिन हैं। पालि वाङ्मय के ये अन्तिम धम्मकित्ति हैं। इसके नवें अध्याय में अनेक ग्रंथों एवं उनके रचयिताओं के नाम मिलते हैं। इनमें से अन्तिम रचना तेरहवीं शताब्दी की है। सद्धम्मसंगह में चालीस अध्याय हैं। वास्तव में यह प्रथम संगीति से लेकर तेरहवीं शताब्दी तक का बौद्धधर्म का इतिहास है। इसमें बौद्ध धर्म-सम्बन्धी कुछ नवीन तथ्य नहीं मिलते।

चौहवीं शताब्दी में निम्नलिखित ग्रंथों का प्रणयन हुआ—

१. लोकप्पदीपसार—सासनवंस के अनुसार इसके प्रणेता, बर्मा के भिक्षु मेधंकर थे। आपने सीलोन में बौद्धधर्म तथा पालिभाषा एवं साहित्य का अध्ययन किया था। इस कृति के 'संखारलोक' में नरक, प्रेत, पशु एवं मानव योनियों तथा 'सत्तलोक' एवं 'ओकास लोक' में विविध योनियों का वर्णन है। इसके विभिन्न प्रकरणों को अनेक कथाओं द्वारा स्पष्ट किया गया है। उदाहरणार्थ इसके पाँचवें अध्याय में मनुष्य-योनि का वर्णन किया गया है, किन्तु स्पष्टीकरण के लिए यहाँ महावंस से अनेक कथाएँ दी गई हैं।

२. पञ्चगतिदीपन—ऊपर के विषय से ही सम्बन्धित यह दूसरा ग्रंथ है। इसमें ११४ गाथाएँ हैं। इन गाथाओं में पुनर्जन्म के रूप में पशु, प्रेत, मानव अथवा देव-योनियों का वर्णन है। इस ग्रंथ के प्रणेता एवं उसके समय के सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञात नहीं है।

३. बुद्धघोसुप्पत्ति—इसके प्रणेता 'महामंगल' हैं। यदि ये वही व्यक्ति हैं जो वैयाकरण मंगल के नाम से विख्यात हैं तो इनका समय चौदहवीं शताब्दी मानना पड़ेगा। जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है, यह ग्रंथ बुद्धघोष का जीवन-चरित है। पूर्वाचार्यों ने बुद्धघोष के जीवन-चरित के सम्बन्ध में जो सामग्री उपलब्ध की थीं, उसी के आधार पर इस ग्रन्थ का प्रणयन हुआ है।

यहाँ दो अन्य ग्रंथों का भी विवरण दिया जाता है, जिनके प्रणेता के नाम एवं समय का पता नहीं है।

१. सद्धम्मोपायन—यह ६२१ गाथाओं का संग्रह है, जो नौ अध्यायों में विभक्त है। इसमें बुद्धधर्म की प्रशंसा की गई है। इसके आरम्भ में आठ 'अक्खणा' एवं 'अकुसलानि' (दस अकुसल धर्मों) तथा प्रेतयोनि के दुःखों का वर्णन है। तदुपरान्त पुण्य-फल एवं दान-शील का वर्णन है और अन्त में अप्पमाद का उल्लेख किया गया है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

२. तेलकटाह गाथा—इनमें ९८ गाथाएँ हैं। इसके रचयिता एक स्थविर माने जाते हैं जिन्हें कटाह (कड़ाह) में खौलते हुए तेल में डालने का राजदण्ड मिला था। उन पर यह मिथ्या आरोप लगाया गया था कि उन्होंने कल्याणी के राजा तिस्स की पत्नी की, एक षडयंत्र में सहायता की थी। इस कथा का सम्बन्ध रोहण के कथाचक्र से है तथा महावंस में भी इसका उल्लेख मिलता है। खौलते हुए तेल से स्थविर की किसी प्रकार हानि नहीं हुई क्योंकि वे बराबर गाथाओं (तेल कटाह में संग्रहीत गाथाओं) का पाठ करते रहे। इन गाथाओं में बौद्धधर्म के सिद्धान्तों को प्रकाशित करनेवाले मृत्यु, जीवन की क्षणभंगुरता, दुःख एवं अनात्मवाद सम्बन्धी विचार मिलते हैं।

पन्द्रहवीं शताब्दी से, पालि वाङ्मय के क्षेत्र में, सर्वाधिक कार्य वर्मा के भिक्षुओं ने किया। इन्होंने 'अभिधम्म' का विशेषरूप से अध्ययन किया। इनके अध्ययन का विवरण यहाँ दिया जाता है।

१. अरियवंस—आप नरपति (१४४२-६८) के राजत्व-काल में आवा में रहते थे। आपने निम्नलिखित ग्रंथों का प्रणयन किया था—

(क) मणिसारमञ्जूसा—यह सुमंगल कृत अभिधम्मथविभावनी की टीका है। (ख) इनकी दूसरी कृति बुद्धघोस कृत अट्ठसालिनी की 'मणिदीप-टीका' है। (ग) इनकी तीसरी कृति का नाम 'जातक विसोधन' है। यह जातक-सम्बन्धी है।

२. सधम्मपाल सिरि—आप भी अरियवंस के समकालीन थे। आपने 'नेत्तिभावनी' का प्रणयन किया था। यह नेत्ति की टीका है।

३. सीलवंस—आप ऊपर के दोनों लेखकों के कुछ समय बाद हुए। आप ने 'बुद्धालंकार' काव्य-ग्रंथ की रचना की थी। यह निद्रानकथा के सुमेध के सम्बन्ध में है।

४. रट्ठसार—आपने जातकों को पद्यबद्ध किया।

इसी (पन्द्रहवीं) शताब्दी में 'कामविरतिगाथा' की रचना हुई थी। इसके लेखक का नाम अज्ञात है। इसमें शारीरिकता से विरत होने की प्रक्रियाओं का उल्लेख है।

५. सोलहवीं शताब्दी में सद्धम्मालंकार ने 'पट्ठानदीपनी' का प्रणयन किया। यह अभिधम्म सम्बन्धी ग्रंथ है।

इसी शताब्दी में बुद्धघोस ने वगरु-धम्मसत्थ द्वारा तलैंग भाषा में लिखित ग्रंथ का 'मनुसार' के नाम से पालि में अनुवाद किया। वास्तव में मूल ग्रंथ तेरहवीं शताब्दी में लिखा गया था। मनुसार वर्मा के सम्पूर्ण विधि-साहित्य का आधार है। इसकी सामग्री के आधार पर वर्मी एवं पालि, दोनों में विधि-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सम्बन्धी ग्रंथों का प्रणयन हुआ है। पालिग्रंथों में अठारहवीं शताब्दी के 'मनुवण्णना' एवं उन्नीसवीं शताब्दी के 'मोहविच्छेदनी' के नाम उल्लेखनीय हैं।

सत्रहवीं शताब्दी के पालि-ग्रंथों का विवरण इस प्रकार है—

१. तिपिटकालंकार——आप द्वारा प्रणीत निम्नलिखित ग्रंथ उल्लेखनीय हैं——

(क) 'विसतिवण्णना' ——यह अट्ठसालिनी के आरम्भिक बीस पदों की टीका है। (ख) यसवड्ढनवत्थु तथा (ग) विनयालंकार, ये दोनों सारिपुत्र-कृत 'विनयसंग्रह' की टीकाएँ हैं।

२. तिलोकगुरु——आपने निम्नलिखित ग्रंथों का प्रणयन किया था——

(क) 'धातु कथा——टीका वण्णना' तथा

(ख) 'धातुकथा अनुटीका वण्णना', ये दोनों धातुकथा की टीकाएँ हैं। इसीप्रकार (क) 'यमकवण्णना' तथा (घ) 'पट्ठान वण्णना', अभिधम्म के पट्ठान की टीकाएँ हैं।

३. सारदस्सिन——आपने 'धातुकथा योजना' का प्रणयन किया था।

४. महाकस्सप——ने 'अभिधम्मत्थगण्ठिपद' की रचना की थी। इसमें अभिधम्म के गूढ़ शब्दों की व्याख्या की गई है।

५. ञाणाभिवंस——आप वर्मा के संघराज थे तथा आप ने निम्नलिखित ग्रंथों का प्रणयन किया था——

(क) पेटकालंकार——यह नेत्ति की टीका है। (ख) 'साधुविलासिनी——यह 'दीघनिकाय' के एक भाग की टीका है। (ग) आपने धर्म सम्बन्धी कई कथाओं का भी प्रणयन किया था जिनमें 'चतुसामणेर वत्थु' एवं 'राजवादवत्थु' के नाम उल्लेखनीय हैं। (घ) आप द्वारा रचित 'राजाधिराज विलासिनी' एक विशिष्ट कृति है। यह राजा बोडोपया की प्रशंसा में लिखी गई है। यह श्रेष्ठ साहित्यिक कृति है और इसके बीच-बीच में बौद्धकथाओं, विशेषतया जातकों के उद्धरण मिलते हैं।

ऊपर के ग्रंथों से पुरानी एक अन्य कृति 'मालालंकार' है। इसके प्रणेता का नाम अज्ञात है।

अब यहाँ कतिपय उन ग्रंथों का विवरण दिया जाता है जो उन्नीसवीं शताब्दी में लिखे गये थे। इनमें से कई ऐसे हैं जिनकी ठीक-ठीक रचना-तिथि देना कठिन है——

१. 'नलाट धातुवंस'——इसके लेखक का नाम एवं उसका समय अज्ञात है। इसमें भगवान् बुद्ध के ललाट की पवित्र धातु का वर्णन है। यह सिंहली में प्राप्त धातुवंस का पालिरूप है। इसमें उतने ही अध्याय हैं जितने सिंहली धातुवंस में। सम्भवतः सिंहली धातुवंस का यह मूल रूप है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

२. 'छकेस धातुवंस'—यह भी भगवान् बुद्ध की पवित्र धातु के सम्बन्ध में है, इसके लेखक भी कोई आधुनिककाल के वर्मी भिक्षु हैं। यह गद्यग्रंथ है और इसमें भगवान् बुद्ध के उन छह केशों का वर्णन है, जिनको उन्होंने स्मृति-शेष के रूप में अपने छह शिष्यों में वितरित किया था तथा जिनके लिए कई स्थानों में स्तूपों का निर्माण किया गया था।

३. 'संदेस कथा' तथा ४. 'सीमा विवाद विनिच्छय कथा'—ये दोनों ग्रंथ भी आधुनिक काल की ही रचना हैं। इनसे बर्मा एवं सीलोन के पारस्परिक संबंध पर यत्किंचित् प्रकाश पड़ता है। इनकी रचना १८०० तथा १८०१ ईस्वी में हुई थी।

४. 'गंधवंस'—यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। इसका प्रणयन बर्मा में हुआ था। इसमें पुस्तकालय-सूची की भाँति विभिन्न ग्रंथकारों के नामों एवं उनके ग्रंथों की सूची दी गई है। मंगलाचरण के पश्चात् सर्वप्रथम इसमें त्रिपिटक का विश्लेषण किया गया है। तदुपरान्त इसमें 'पोराणाचरिया' एवं उन तीन संगीतियों के स्थविरों का वर्णन है जिन्होंने 'बुद्ध-वचन' का संग्रह किया था। यही स्थविर 'अट्ठकथाचरिया' (अट्ठकथाओं के आचार्य अथवा प्रणेता) भी थे। गंधवंस में महाकच्चायन को प्रसिद्ध 'कच्चान व्याकरण', 'महा एवं चुल्लनिरुत्ति' एवं 'नेत्ति', 'पेटकोपदेस' तथा 'वण्णनीति' का प्रणेता बताया गया है। उन्हें अत्यन्त आदर से 'तिविध नामका चरिया' कहा गया है। इसके उपरान्त 'गंधकाचरिया' (गंधकाचार्यों) की सूची दी गई है। इसमें 'कुरुन्दी' तथा 'महापच्चरी' के रचयिताओं के नाम आरम्भ में तथा इनके बाद बुद्धघोस, बुद्धदत्त, आनन्द एवं धम्मपाल आदि के नामों का उल्लेख मिलता है। अन्त में 'अरियवंस' एवं 'उदुम्बर' के नाम दिये गये हैं। इसके बाद अज्ञात ग्रंथकारों के ग्रंथों की सूची है। तदुपरान्त लंका एवं जम्बूदीप के लेखकों का उल्लेख है। सबसे अन्त में उन लेखकों की चर्चा है जिन्होंने आत्मप्रेरणा अथवा अन्य लोगों की प्रेरणा से ग्रंथों का प्रणयन किया है।

५. सासनवंस—इसके प्रणेता पञ्ञसामिन हैं। इसकी रचना सन् १८६१ ईस्वी में हुई थी। यद्यपि यह ग्रंथ बहुत बाद में लिखा गया था किन्तु कई दृष्टियों से यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यह प्राचीन साहित्य के आधार पर तैयार किया गया है। इसके दस अध्यायों में अशोक के समय तक की तीन बौद्धसंगीतियों तथा सिंहल (सीलोन) एवं अन्य देशों में बौद्धधर्म के प्रचारार्थ भेजे गए प्रचारकों का पूर्ण विवरण है। इसके छठें अध्याय में 'अपरन्त रट्ठ' अर्थात् बर्मा में बौद्धधर्म के इतिहास के विषय में विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। दीपवंस तथा महावंस के अनुसार बौद्धधर्म के प्रचार के लिए नौ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

देशों में प्रचारक भेजे गए थे। वर्मा की परम्परा के अनुसार इनमें से पाँच देश वृहत्तर भारत के थे। ये देश सुवण्ण भूमि, वनवासी, अपरन्त, योनक एवं महारट्ठ थे। सासन वंस के मुख्य स्रोत, समन्तपसादिका, दीपवंस, महावंस तथा वर्मा के इतिहास हैं। इनके साथ अट्ठकथाओं का भी उल्लेख मिलता है, किन्तु अप्रत्यक्ष रूप में ही इनका उपयोग हुआ है।

सिंहल तथा वर्मा, दोनों देशों में भाषा-विज्ञान के क्षेत्र में भी पर्याप्त मात्रा में कार्य हुआ, जिसके परिणामस्वरूप व्याकरण एवं कोश-सम्वन्धी अन्य ग्रंथों की रचना हुई।

अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से व्याकरण-विषयक ग्रंथों को तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है। इनमें से प्रथम वर्ग में कच्चायन शाखा के व्याकरण आते हैं। 'वालावतार' एवं 'रूपसिद्धि' दोनों, कच्चायन शाखा के ही व्याकरण हैं। दूसरे वर्ग में मोग्गल्लान शाखा के व्याकरण-ग्रंथों को लिया जा सकता है। इसके अन्तर्गत 'पयोगसिद्धि' एवं 'पदसाधना' की गणना की जाती है। तीसरा वर्ग 'सद्धनीति' का है जिसके अन्तर्गत 'चुल्लसद्दनीति' आती है।

इन तीनों वर्गों के तीन धातु पाठ भी हैं 'जो 'धातुमंजूसा', 'धातुपाठ' एवं 'धात्वत्थदीपनी' के नाम से प्रसिद्ध हैं। कोष-ग्रंथों में 'अभिधानप्पदीपिका' का नाम उल्लेखनीय है। इनके अतिरिक्त छन्दशास्त्र-सम्वन्धी भी कतिपय ग्रंथ उपलब्ध हैं।

पालि-अध्ययन के सहायक-रूप में इन ग्रंथों का सही मूल्यांकन फ्रांके ने अपने 'पालि ग्रामर' में किया है। सच वात तो यह है कि ये ग्रंथ जीवन्त एवं वोलचाल की पालि के आधार पर निर्मित नहीं हुए हैं। जैसे आज लोग अपने ग्रंथों के निर्माण के लिए साहित्य से सामग्री का संकलन करते हैं, उसी प्रकार इन ग्रंथों के प्रणेताओं ने भी किया है। परम्परा से भी ये ग्रंथ उस युग के नहीं हैं, जब पालि वोलचाल की भाषा थी। इसके अतिरिक्त ये ग्रंथ संस्कृत व्याकरण एवं कोश-ग्रंथों की शैली एवं उनके अनुकरण पर तैयार किए गए हैं। इस वात को दृष्टि में रखते हुए हमें पालि के व्याकरणीय-रूपों एवं शब्दों के सम्वन्ध में सावधानी से विचार करने की आवश्यकता है तथा साहित्य में इनके प्रयोग उपलब्ध होने पर ही इन्हें स्वीकार करना है। यह इसलिए आवश्यक है कि संस्कृत एवं पालि में अतिसान्निध्य होने के कारण संस्कृत-व्याकरण के रूपों एवं शब्दों को सहज भाव से कृत्रिम पालि के रूपों में परिणत किया जा सकता है।

कच्चायन शाखा के व्याकरण पर जो टीका लिखी गई, वह 'न्यास' के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नाम से प्रसिद्ध है। इसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। इस शाखा का दूसरा प्राचीन ग्रंथ—१. छपद कृत सुत्तनिद्देस है। इसका समय ११८१ ई० है। यह भी कच्चायन की टीका है। इसी युग की कृति २. संघरक्खितकृत 'सम्बन्ध चिन्ता' है। इसमें पालि वाक्य-रचना के विषय में विचार किया गया है। इस पर भी एक टीका है, जिसके लेखक का नाम अज्ञात है। इसी शाखा का एक अन्य ग्रंथ ३. सद्धम्मसिरिकृत 'सद्दत्थभेद चिन्ता' है। सद्धम्मसिरि वर्मा के अरिमद्दन के निवासी थे। इस पर भी एक टीका उपलब्ध है जिसके लेखक का नाम अज्ञात है। ४. 'रूपसिद्धि' अथवा 'पदरूपसिद्धि' कच्चायन व्याकरण का ही परिवर्तित रूप है। ग्रंथ के अन्त में लेखक ने अपना नाम बुद्धप्पिय तथा उपनाम दीपंकर दिया है और अपने को आनन्द थेर का शिष्य बतलाया है। यह सम्भवतः वही व्यक्ति हैं जिन्होंने 'पज्जमधु' का प्रणयन किया था। इस प्रकार 'रूपसिद्धि' का रचनाकाल तेरहवीं शताब्दी का द्वितीयार्द्ध है। यह ग्रंथ सात अध्यायों में विभक्त है तथा इसकी सामग्री का विन्यास भी कच्चायन की भाँति है। इसमें तथा कच्चायन में केवल इतना ही अन्तर है कि इसमें 'कितक' एवं 'उणादि' दोनों सातवें अध्याय में हैं। रूपसिद्धि की टीका एवं इसका सिंहली रूप भी है। सिंहली रूप का नाम 'सन्नय' है। इस ग्रंथ का उल्लेख राहुलकृत 'मोग्गल्लायन पञ्चिकापदीप' में मिलता है, जो सन् १४५६ ई० में लिखा गया था। ५. 'बालावतार' व्याकरण संस्कृत लघुकौमुदी की भांति है। इसका सर्वाधिक प्रचलन वर्मा तथा स्याम में है। यह कच्चायन व्याकरण का लघुरूप है किन्तु इसका विन्यास उससे किंचित् भिन्न है। परम्परानुसार 'सद्धम्मसंगह' के कर्ता धम्मकित्ति इसके प्रणेता हैं। यदि यह सही है तो बालावतार का प्रणयन चौदहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में हुआ होगा। गंधवंस के अनुसार इसके प्रणेता वाचिस्सर थे जिनका समय तेरहवीं शताब्दी है। बालावतार की एक टीका भी है जिसके लेखक का नाम अज्ञात है। ६. 'सद्दसारत्थजालिनी'—इसके लेखक वर्मा के भिक्षु कण्टक खिप नागित हैं, जो नागित के नाम से ही अधिक प्रसिद्ध हैं। इसका रचनाकाल सन् १३५६ ई० है। इसी काल में अभिधानप्पदीपिका की भी रचना हुई थी। इसका विन्यास भी बहुत कुछ कच्चायन व्याकरण की भाँति ही है। इसके ३ से ९ अध्याय ठीक कच्चायन के १ से ७ अध्याय के समान हैं।

कच्चायन शाखा के अन्य व्याकरण इस प्रकार हैं—

७. कच्चायन भेद—यह महायस थेर कृत टीका है, जिसका रचनाकाल चौदहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध बतलाया जाता है। फॉसबोल के अनुसार इसके रचयिता रस्सथेर हैं। इस ग्रंथ की दो टीकाएँ हैं जिनमें सात अध्याय हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इनमें से एक टीका 'सारत्थ विकासिनी' है जिसके प्रणेता बर्मा के भिक्षु अरिया-लंकार हैं। इसका रचनाकाल बुद्ध संवत् २१५२ (ईस्वी सन् १६०८) है। दूसरी टीका का नाम 'कच्चायनभेदमहाटीका' है और इसके रचयिता उत्तम-सिक्ख हैं। महायस ने एक अन्य ग्रंथ 'कच्चायनसार' का भी प्रणयन किया है। आपने इसकी टीका भी लिखी है। सम्भवतः यह टीका 'कच्चायनसार पुराण टीका' ही है जिसके लेखक का नाम अज्ञात बतलाया जाता है। इसी प्रकार 'कच्चायनसार अभिनव टीका' के लेखक बर्मा के भिक्षु सद्धम्म विलास हैं। इस टीका का अन्य नाम 'संमोहविनासिनी' भी है।

८. सद्दविन्दु— सम्भवतः इसका रचनाकाल पन्द्रहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध है। सासनवंस के अनुसार अरिमद्दन (वर्मा) के राजा, क्यच्चा इसके प्रणेता हैं।

सद्दविन्दु की टीका 'लिनत्थसूदनी' का रचनाकाल सोलहवीं शताब्दी का अन्तिम चरण है। इसके लेखक ञाणविलास हैं।

९. वालप्पवोधन— इसके लेखक का नाम एवं इसका रचनाकाल अज्ञात है। इसके सम्पादक, सुवम्मालंकार के अनुसार, इस ग्रन्थ की रचना सन् १५५६ ईस्वी में हुई थी। यह निश्चित है कि 'कच्चायन भेद' एवं 'सद्दत्थभेदचिन्ता' के बाद इसकी रचना हुई है। वालप्पवोधन की एक टीका भी उपलब्ध है। इसके लेखक का नाम अज्ञात है।

१०. अभिनव-चुल्लनिरुत्ति— इसके लेखक सिरिसधम्मालंकार हैं। इसमें कच्चायन व्याकरण के अपवादों पर विचार किया गया है। इसके रचना-काल के सम्बन्ध में निश्चयात्मक रूप से कुछ कहना कठिन है।

११. कच्चायन वण्णना— इसके प्रणेता बर्मा के थेर महाविजिताविन हैं जो सन् १६०० ई० में जीवित थे। यह कच्चायन के 'सन्धिकप्प' की टीका है। इसके मंगलाचरण में न्यास, रूपसिद्धि तथा सद्दनीति जैसे प्रसिद्ध एवं पूर्ण व्याकरण-ग्रंथों के रचयिताओं के नामों का उल्लेख मिलता है। यह कच्चायन वण्णना, उस कच्चायनवण्णना, से भिन्न ग्रंथ है, जिसका उल्लेख 'रूपसिद्धि' के मंगलाचरण में मिलता है तथा जो बहुत पहले लिखा गया था। महाविजिता-विन ने एक अन्य ग्रंथ 'वाचकोपदेस' की भी रचना की थी, जिसमें तार्किक दृष्टि से व्याकरण की कोटियों के सम्बन्ध में विचार किया गया है।

कच्चायन के अतिरिक्त मोग्गल्लान अथवा मोग्गल्लायन अभिनव व्याकरण शाखा के प्रतिष्ठापक थे। इनकी कृतियों का विवरण यहाँ दिया जाता है—

१. मोग्गलायन व्याकरण— इसका दूसरा नाम 'सद्दलक्खण' भी है और यह वृत्ति-सहित है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

२. मोग्गलायन पञ्चिका—यह लेखक की अपनी कृति पर टीका थी। अब यह टीका नहीं मिलती है। विद्वानों के अनुसार कच्चायन की अपेक्षा मोग्गलान की कृति श्रेष्ठ है। यह सच है कि मोग्गलायन व्याकरण भी अन्य पालि-व्याकरणों की त्रुटियों से सर्वथा मुक्त नहीं है, किन्तु इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि सापेक्षिक दृष्टि से यह अधिक पूर्ण है और पालि भाषा के मूल तत्त्व को हृदयंगम करने में इससे सर्वाधिक सहायता मिलती है। इसके सूत्रों का विन्यास एवं वर्गीकरण कच्चायन की अपेक्षा भिन्न है। इसमें कच्चायन से भिन्न पारिभाषिक शब्दों का भी प्रयोग किया गया है। प्राचीन पालि व्याकरणों, कातंत्र एवं पाणिनि के अतिरिक्त मोग्गल्लान ने अपनी इस कृति के प्रणयन में चन्द्रगोमिन- व्याकरण से अधिक सहायता ली है। मोग्गलान ने अपनी वृत्ति के अन्त में ग्रंथ-रचना का समय परक्कमभुज का राजत्वकाल दिया है। यह परक्कमभुज, परक्कमबाहु प्रथम के अतिरिक्त कोई अन्य व्यक्ति न था। इसका शासन काल ११५३ से ११८६ ई० था। मोग्गल्लान अनुराधपुर का निवासी था तथा वह 'थुपाराम' विहार का सदस्य था। गंधवंस के अनुसार मोग्गल्लान व्याकरण के एक टीकाकार का नाम वाचिस्सर था, किन्तु वह सारिपुत्त का शिष्य नहीं, अपितु कोई अन्य व्यक्ति था। मोग्गल्लायनपञ्चिकापदीप के प्रणेता राहुल का उपनाम भी वाचिस्सर था। सम्भवतः इसी कारण से वाचिस्सर के सम्बन्ध में भ्रम हो गया।

कच्चायन-व्याकरण की भाँति ही मोग्गल्लायन शाखा में भी अनेक व्याकरण-ग्रंथों की रचना हुई। इसका विवरण यहाँ प्रस्तुत किया जाता है—

१. पदसाधन— इसके लेखक पियदस्सिन हैं। ये मोग्गल्लान के शिष्य थे तथा सम्भवतः इनका समय बारहवीं शताब्दी का अन्तिम चरण था। पदसाधन वास्तव में मोग्गल्लान का संक्षिप्त रूप है। डी० जोयसा के अनुसार पियदस्सिन तथा मोग्गलान में वही सम्बन्ध है, जो बालावतार एवं कच्चायन में है। पदसाधन की एक टीका का नाम 'पदसाधन-टीका' अथवा बुद्धिप्पसादनी है। इसकी रचना सन् १४७२ ई० में हुई थी। इसके रचयिता तित्थगाम-निवासी राहुल थे जिनका उपनाम वाचिस्सर था। राहुल सिंहली-साहित्य के प्रख्यात व्यक्ति हैं।

२. पयोगसिद्धि— इसके प्रणेता वनरतन मेधंकर हैं। यह मोग्गल्लान शाखा का सर्वोत्कृष्ट व्याकरण है। डी० जोयसा के अनुसार मोग्गल्लान शाखा में इसका वही स्थान है, जो कच्चायन शाखा में रूपसिद्धि का स्थान है। लेखक ने इसकी रचना परक्कमबाहु के पुत्र भुवनेकबाहु के राजत्व-काल में की थी। सम्भवतः यहाँ भुवनेकबाहु का तृतीय भुवनेकबाहु से तात्पर्य है। तब मेधंकर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

का समय १३०० ई० के आसपास होगा। यहाँ यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि यह मेघंकर उन दो मेघंकरों से भिन्न व्यक्ति हैं जिनका ऊपर उल्लेख हो चुका है।

३. मोग्गल्लायनपञ्चिकापदीप—यह मोग्गल्लायनकृत अप्राप्य पञ्चिका की टीका है। इसके भी रचयिता पदसाधन के टीकाकार राहुल हैं। इस टीका के कुछ अंश पालि तथा कुछ अंश सिंहली में हैं। डी जोयसा के अनुसार पालि-व्याकरण के सम्बन्ध में यह उत्कृष्ट एवं विद्वत्तापूर्ण कृति है। इसकी रचना के लिए पालिभाषा विषयक वहुमूल्य सामग्री का संकलन किया गया है। इसके प्रणयन में पचास अन्य व्याकरणों से सहायता ली गई है, जिनमें चन्द्र-कृत संस्कृत व्याकरण भी सम्मिलित है। इसका रचनाकाल १४५७ ई० है।

४. सद्दनीति—इसके प्रणेता अग्गवंस हैं। प्राचीन परम्परा के मूल्यांकन के लिए यह ग्रंथ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। अग्गवंस वर्मा के अरिमद्दन स्थान के रहने वाले थे। सीलोन से पृथक् रहकर, वर्मा में, स्वतंत्ररूप से व्याकरण-सम्बन्धी जो अध्ययन हुआ था, वह इस ग्रंथ द्वारा स्पष्टतया परिलक्षित होता है। यह प्रसिद्ध है कि व्याकरण के क्षेत्र में वर्मा के भिक्षुओं ने जो गम्भीर अध्ययन किया था, उसकी सूचना उत्तराजीव मिशन द्वारा सीलोन पहुँची। इस सूचना की सत्यता की परीक्षा के लिए सीलोन के कतिपय भिक्षु वर्मा पहुँचे। उनके सम्मुख 'सद्दनीति' प्रस्तुत की गई और उन्हें यह स्वीकार करना पड़ा कि इसके टक्कर का व्याकरण का कोई ग्रंथ सीलोन में नहीं है। इसकी रचना का समय सन् ११५४ ई० है। अग्गवंस के लेखक अग्गपण्डित तृतीय थे। आप अग्गपण्डित द्वितीय के भतीजे थे, जो स्वयं अग्गपण्डित प्रथम के शिष्य थे। वाद में अग्गवंस, राजा नरपति सिथु (११६७-१२०२) के शिक्षक वन गए। आर० ओ० फ्रांके के अनुसार सद्दनीति का आधार कच्चायन व्याकरण ही है। विषय-वस्तु की दृष्टि से सद्दनीति को कच्चायन शाखा से पृथक् करना उचित नहीं है। किन्तु अपने व्याकरण की रचना में अग्गवंस ने पाणिनि तथा अन्य संस्कृत व्याकरणों से भी सहायता ली थी। मोग्गल्लान व्याकरण का उन्हें पता नहीं था, क्योंकि सम्भवतः उसकी रचना वाद में हुई थी। सद्दनीति में कुल २७ अध्याय हैं। आरम्भ के अठारह अध्यायों को 'महासद्दनीति' तथा शेष नौ अध्यायों को 'चुल्ल सद्दनीति' के नाम से अभिहित किया जाता है। ग्रंथ के अन्त में इस वात का स्पष्ट उल्लेख है कि इसका आधार पूर्वाचार्यों की कृतियाँ एवं वुद्धवचन हैं।

जहाँ तक कोश-साहित्य से सम्बन्ध है, पालि में प्राचीनकाल से केवल एक ही कोश उपलब्ध है और यह मोग्गल्लान कृत 'अभिधानप्पदीपिका' है। सामान्यतया यह वात मान्य एवं स्वीकृत है कि कोशकार तथा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वैयाकरण मोग्गल्लान दो भिन्न व्यक्ति हैं। जैसा कि इस कोश के अन्त में दिया हुआ है, इसके प्रणेता पुलत्थिपुर (पोलोन्नरुवा) स्थित जेतवन विहार के सदस्य थे, किन्तु वैयाकरण मोग्गल्लान अनुराधपुर के थूपाराम विहार के सदस्य थे। गंधवंस में भी, दोनों में पार्थक्य प्रदर्शन के लिए, कोशकार मोग्गलान को 'नव-मोग्गल्लान' के नाम से अभिहित किया गया है। इन दोनों के समय में बहुत अन्तर नहीं है। अभिधानप्पदीपिका के अन्त में परक्कमभुज (परक्कमबाहु, प्रथम) के सम्बन्ध में जो प्रशस्ति है, उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि इसकी रचना उनके शासनकाल (११५३-११८६) के तत्काल ही बाद हुई होगी। इस प्रकार इसका रचनाकाल बारहवीं शताब्दी का अन्तिम चरण निर्धारित किया जा सकता है। अभिधानप्पदीपिका के तीन भाग—पर्यायवाची, समानवाची एवं निपात हैं। इसमें १२०३ पद हैं तथा यह अमरकोश के आदर्श पर निर्मित हुआ है। जहाँ तक पर्यायवाची शब्दों का सम्बन्ध है, इनमें से अधिकांश अमरकोश से सीधे ले लिए गए हैं। इसके अनेक शब्दों को तो कोशकार ने स्वयं संस्कृत से पालि में परिवर्तित किया है। आर० ओ० फ्रांके के अनुसार इसकी रचना में संस्कृत के अन्य कोश से भी सहायता ली गई होगी। अभिधानप्पदीपिका के पूर्व किसी अन्य पर्यायवाची पालिकोश का पता नहीं चलता। अभिधानप्पदीपिका पर चौदहवीं शताब्दी के मध्य में एक टीका लिखी गई थी। यहाँ पर वर्मा के भिक्षु सद्धम्मकित्ति द्वारा रचित 'एकक्खर कोश' का उल्लेख भी आवश्यक है। यह इसी के समान संस्कृत कोश के आधार पर लिखा गया है। इसका रचनाकाल सन् १४६५ई० है।

जहाँ तक धातुपाठ-विषयक ग्रंथों का प्रश्न है, १. 'धातुमंजूसा' का सम्बन्ध कच्चायन शाखा से है। इसीलिए इसका दूसरा नाम 'कच्चायन-धातु मंजूसा' भी है। इसके अन्त में रचयिता का नाम सीलवंस दिया हुआ है। ये अक्खद्दिलेन विहार के सदस्य थे। इस विहार को सम्प्रति यक्कद्देसागल के नाम से अभिहित किया जाता है तथा यह कुरुनगल के समीप है। यह पद्यबद्ध है तथा इसमें १५० पद हैं। सुभूति के अनुसार इसकी रचना वोपदेवकृत कविकल्पद्रुम के आदर्श पर हुई है। इसकी धातुएँ कच्चायन के गण-पाठ के क्रम में सजाई गई हैं जिससे यह स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि यह कच्चायन शाखा का ग्रंथ है। २. 'धातुपाठ'—इसका आधार मोग्गल्लान-कृत गणपाठ है। इसके लेखक का नाम एवं समय अज्ञात है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह धातुमंजूसा से पूर्व का ग्रंथ है। ३. 'धात्वत्थदीपनी'—फ्रांके के अनुसार यह सद्दनीति के एक अध्याय के धातु-पदों की पद्य-बद्ध सूची है। यह सूची सद्दनीति के गणपाठ के अनुसार है। इसके लेखक ने पाणिनि के धातुपाठ का भी उपयोग किया है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पालि में अलंकारों के सम्बन्ध में संघरक्खित कृत 'सुबोधालंकार' प्रसिद्ध ग्रंथ है। इसकी एक टीका भी उपलब्ध है। इसी स्थविर द्वारा छन्दशास्त्र पर 'वुत्तोदय' का प्रणयन हुआ है। इसकी टीका का नाम 'वचनत्थ ज्योतिका' है। नीचे व्याकरण-विषयक कतिपय ऐसे ग्रंथों का उल्लेख किया जाता है जिनके सम्बन्ध में सुभूति ने विवरण प्रस्तुत किया है, किन्तु जो ऊपर के वर्गीकरण में नहीं आ सके हैं—

(क) वच्चवाचक—इसके लेखक बर्मा के अरिमद्दन स्थान के निवासी सामणेर धम्मदस्सिन हैं। इसमें १०० पद हैं। इसका रचनाकाल चौदहवीं शताब्दी का अन्तिम चरण। बर्मा स्थित खेमावतार विहार के भिक्षु सधम्म-नन्दिन की इस पर एक टीका भी उपलब्ध है। (ख) गन्धट्ठि—इसके लेखक मंगल हैं तथा यह निपात-विषयक ग्रंथ है। यह भी चौदहवीं शताब्दी का ग्रंथ है। (ग) गन्धाभरण—इसके लेखक अरियवंस हैं। यह भी निपात-विषयक व्याकरण-ग्रंथ है तथा इसका रचनाकाल सन् १४३६ ई० है। इस पर बर्मा के सुवण्णरासि की एक टीका भी है, जो १५८४ ई० में लिखी गई थी (घ) 'विभत्त्यत्थप्पकरण'—यह ग्रंथ कारकों के विषय में है। इसमें ३७ श्लोक हैं। इसकी रचयिता बर्मा के राजा क्यच्वा की कन्या बतलाई जाती है। सुभूति के अनुसार इसकी रचना-तिथि सन् १४८१ई० है। इस पर 'विभत्त्यत्थ-टीका' भी है। एक अन्य टीका 'विभत्त्यत्थदीपनी' का उल्लेख डॉ ज़ोयसा एवं फॉसबेल ने की है। सम्भवतः ऊपर की दोनों टीकाएँ एक ही हैं। इसके मंगलाचरण में ऊपर का ही नाम मिलता है। इस कारण भी दोनों ग्रन्थों के एक होने का प्रमाण मिलता है। इनके अतिरिक्त डॉ ज़ोयसा ने एक अन्य कृति विभत्ति-कथावण्णना का भी उल्लेख किया है। (ङ) 'संवण्णनानयदीपनी'—इसकी रचना जम्बुधज ने सन् १६५१ ई० में की थी। इसी लेखक की दो अन्य कृतियाँ 'निरुत्तिसंघ' एवं 'सर्वज्ञन्यायदीपनी' भी मिलती हैं। (च) 'सद्दउत्ति'—इसके प्रणेता सद्धम्मगुरु हैं तथा इसका रचनाकाल सन् १६५६ है। इस पर बर्मा के भिक्षु सारिपुत्र की एक टीका भी मिलती है। (छ) 'कारक पुप्फ मंजरी'—इसके लेखक कैंडी के अत्तरगम वण्डार राजगुरु हैं। यह वाक्य-विचार-सम्बन्धी ग्रंथ है तथा इसकी रचना कीर्ति श्री राजसिंह के राजत्वकाल (सन् १७४७-१७८०) में हुई थी। इसी लेखक की एक अन्य कृति 'सुधीर मुखमण्डन' है जिसमें पालि-समास के विषय में विचार किया गया है। (ज) 'नयलक्खण विभावनी'—इसके प्रणेता बर्मा के भिक्षु विचित्ताचार हैं। इनका समय अठारहवीं शताब्दी का द्वितीयार्द्ध है।

●

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

व्युत्पत्ति-विज्ञान

व्युत्पत्ति विज्ञान यथार्थतः ऐतिहासिक विज्ञान है। अँग्रेजी में व्युत्पत्ति-विज्ञान के लिए 'एटिमालोजी' शब्द उपलब्ध है, जो फ्रेंच के 'एटिमालोगिए' शब्द से अव्याहृत है। फ्रेंच का यह शब्द भी लैटिन के 'एटिमोलोगिया' शब्द से निष्पन्न है। लैटिन का यह भी शब्द ग्रीक के एटुमोलोगिया से व्युत्पन्न है, जिसमें दो शब्द एटुमोस = सत्य, लोगोस = शब्द है। निष्कर्षतः जो शास्त्र शब्द के यथार्थ रूप का निरीक्षण करे, वह व्युत्पत्तिशास्त्र या विज्ञान है।

यदि कोई प्राश्निक यह परिपृच्छा करे कि व्युत्पत्ति-विज्ञान का उद्देश्य क्या है, तो यह कहना यौक्तिक होगा कि शब्दों के यथार्थ स्वरूप का अवधारण ही व्युत्पत्ति-विज्ञान का परम उद्देश्य है।

प्रसिद्ध व्यंग्य लेखक वाल्टेयर ने एक बार विनोद में कहा था कि व्युत्पत्ति में स्वरों का कोई महत्व नहीं है, व्यञ्जनों का तो यत्किञ्चित् हो भी सकता है।

उपर्युक्त कथन अठारहवीं शताब्दी के आनुमानिक तथा अर्द्धसत्य व्युत्पत्ति के लिए सत्य हो सकता है, किन्तु अद्यतन व्युत्पत्ति-विज्ञान, जो स्वरों तथा व्यञ्जनों की ध्वन्यात्मक परिवर्तन की गहनता एवं तन्नियमों से अवगत है, कथमपि सत्य नहीं हो सकता है।

भारतीय मेधा शब्दों की व्युत्पत्ति एवं निर्वचन की ओर प्राक्काल से ही केन्द्रित रही है। श्री युधिष्ठिर मीमांसक ने तो अपने संस्कृत-व्याकरण-शास्त्र के इतिहास में कतिपय ऐसे वैदिक मंत्रों को उद्धृत किया है, जिनमें व्युत्पत्ति एवं निरुक्ति का निर्देश उपलब्ध होता है। इनमें से कतिपय मंत्र इस प्रकार हैं :

१. यज्ञेन यज्ञमजयन्त देवाः

(ऋ० १।१६४।५०)

यज्ञ की निरुक्ति 'यज्' धातु से।

२. ये सहांसि सहसासहन्ते

(ऋ० ६।६६।९)

सहस् की निरुक्ति 'सह' धातु से।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

३. पूर्वीरश्नन्तावश्विना
ऋ० २।५।३१

अश्विन् की निरुक्ति 'अश्' धातु से ।

वैदिक मंत्रों के शुद्ध उच्चारण के लिए एक ओर जहाँ शिक्षा-ग्रन्थों की आवश्यकता थी, वहाँ दूसरी ओर उनके अर्थ-बोध के लिए शब्दों की निरुक्ति भी अपरिहार्य थी। निरुक्त का अर्थ है निर्वचन, अर्थात् शब्द के अर्थ पर विचार करना। इस आवश्यकता की परिपूर्ति के लिए ही सर्वप्रथम वैदिक कोष 'निघण्टु' का प्रणयन हुआ। इस ग्रंथ में संगृहीत शब्दों का निर्वचन ही निरुक्त नाम से अभिहित किया जाता है। वस्तुतः यह निरुक्त व्युत्पत्ति-विज्ञान के क्षेत्र में विश्व का प्रथम प्रयास है। महर्षि यास्क ने इस महान् ग्रन्थ में शब्दों की जो निरुक्ति दी है, उनमें सर्वांशतः तो सभी यथार्थ एवं यौक्तिक नहीं ही हैं। इसका कारण यह है कि महर्षि यास्क ने परम्परा-प्राप्त तथा आनुमानिक अर्थ बोध का आश्रय ग्रहण कर निरुक्ति देने का प्रयास किया है। उस समय समस्त विश्व की भाषाओं में प्रचलित शब्दों के अभिज्ञान का कोई साधन नहीं था, जिसके बल पर वे वैदिक संस्कृत के शब्दों तथा अन्य भारतीय भाषाओं के शब्दों के सादृश्य तथा तदर्थ का विनिश्चय कर वैज्ञानिक व्युत्पत्ति देने का प्रयास करते।

अद्यतन व्युत्पत्ति-विज्ञानी, शब्दों की व्युत्पत्ति के लिए, ध्वन्यात्मक परिवर्तनों एवं प्रक्रियाओं की ओर से सापेक्षिक दृष्टि रखते हैं। किन्तु यह कहने में कोई विचिकित्सा नहीं कि इन ध्वनि-परिवर्तनों के नियमों का निर्देश ई० सन् के पूर्व ही यास्क ने निम्न श्लोक में किया है—

वर्णागमो वर्ण विपर्ययश्च
द्वौ चापरौ वर्णविकारनाशौ ।
धातोस्तदर्थातिशयेन योगः
तदुच्यते पञ्चविधं निरुक्तम् ॥

अर्थात् वर्णागम, वर्णविपर्यय, वर्णविकार, वर्णनाश तथा अर्थातिशययोग— ये ही पाँच निरुक्त के क्षेत्र हैं।

संप्रति व्युत्पत्ति-विज्ञान आधुनिक भाषाविज्ञान का एक गहन किन्तु महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है। प्रथमतः भाषाविदों ने अर्थ-विज्ञान तथा व्युत्पत्ति-विज्ञान दोनों को एक ही में अनुबद्ध कर दिया था। किन्तु यह अवधेय है कि इन दोनों में तात्त्विक भिन्नता है। व्युत्पत्ति-विज्ञान वस्तुतः शब्द-समूहों के विवेचन का विषय है। शब्दकोश में प्राप्त सम्पूर्ण शब्दों के परीक्षणोपरान्त वे शब्द कैसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आए, कब निर्मित हुए तथा किन परिस्थितियों में विवर्तित हुए—इत्यादि का यथार्थ निर्देश करना तथा तत्सदृश शब्दों का विश्व की अन्य प्राक् भाषाओं के साथ सामञ्जस्य स्थापित कर यथार्थ रूप का निर्धारण करना ही व्युत्पत्ति-विज्ञान के परिवेश का विषय है।

व्युत्पत्ति-विज्ञान के परीक्षण के समय ध्वनिविज्ञान की भी परमापेक्षा है। शब्दों के रूप-विवर्तन का निरूपण ध्वनि-वैज्ञानिक प्रक्रिया के आधार पर ही सम्भव है। ध्वनिविज्ञान के साथ ही व्युत्पत्ति-विज्ञान के लिए रूप-संरचना (Morphological Construction) भी आवश्यक है।

जीव-विज्ञान जिस प्रकार जीवन्त प्राणी की वर्तमान अवस्था तथा उसके पूर्ववर्ती वैकासिक प्रक्रिया के निरूपण में अत्यवहित होता है, उसी प्रकार व्युत्पत्तिविज्ञानी भी शब्दों की वर्तमान अवस्था के अभिज्ञान के पश्चात् उनके पूर्ववर्ती रूपों के निर्वचन या निरूपण में तत्पर होता है। साथ ही वह किसी भी काल में प्राप्त शब्दों के ऐतिहासिक निर्वचन तक ही सीमित नहीं रहता अपितु तत्काल में उसके ये रूप कैसे आये—इसके लिए वह पूर्ववर्ती ऐतिहासिक विवेचना की ओर अग्रसर होता है, तथा यथासंभव अन्य मानवीय भाषाओं के शब्दों के साथ उसके सम्बन्ध का निर्धारण करता है।

इस संदर्भ में यह ध्यातव्य है कि व्युत्पत्ति-वैज्ञानिक जब ध्वनि तथा उसके व्याकरणिक रूप के सम्बन्ध-ज्ञापक सूत्रों से अवगत हो जाता है, तब उसे शब्दों की व्युत्पत्ति में क्षमता प्राप्त होती है।

अधुना व्युत्पत्ति-विज्ञानी शब्दों की वैज्ञानिक व्युत्पत्ति की ओर ही अवहित है। शब्दों की व्युत्पत्ति दो रूपों में दी जाती रही है, जिसमें प्रथम लोक-व्युत्पत्ति (Popular etymology) तथा दूसरा वैज्ञानिक व्युत्पत्ति (Scientific etymology) है। लोकव्युत्पत्ति से शब्दों के यथार्थरूप का अवधारण नहीं हो पाता है क्योंकि उसका आधार अनुमान-सिद्ध रहता है।

लोक-व्युत्पत्ति के कुछ उदाहरण ध्यातव्य हैं। यथा—मौसी की व्युत्पत्ति कुछ विद्वानों ने 'मा-सी' '(अर्थात् माता के समान) शब्द से दिया है, किन्तु यह यौक्तिक नहीं है। वस्तुतः यह शब्द मातृष्वसा शब्द से निष्पन्न है तथा प्रायः अधिकांश भारतीय आर्यभाषाओं तथा पालि, प्राकृत एवं अपभ्रंश में इसके रूप उपलब्ध हैं। इसी प्रकार वकील शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के पण्डितों ने वाचं कीलयति यः सः वाक्कील, जो अपने वाक्य से न्यायाधीश की बुद्धि को कीलित कर देता है, उसको वाक्कील या वकील कहते हैं।

वैज्ञानिक-व्युत्पत्ति (scientific etymology) में द्विविध अध्ययन की अपेक्षा है। प्रथमतः हम किसी शब्द की व्युत्पत्ति के लिए नव्य भाषा से प्रा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कालिक भाषा के शब्दों के साथ ध्वन्यात्मक सम्बन्ध स्थापित कर तथा द्वितीयतः प्राक्-भाषा से नव्य भाषा के शब्दों से सादृश्यात्मक निरूपण के पश्चात् अग्रसर हो सकते हैं। यथा हिन्दी, भोजपुरी, मगही, अवधी तथा बंगला भाषीय नागा शब्द संस्कृत के नग्नः या नग्नकः शब्द से व्युत्पन्न है। इसका पालि तथा प्राकृत रूप नग्ग-णग्ग उपलब्ध होता है। इस प्रकार समीकरण के पश्चात् नग्न, नग्नकः > नग्ग > णग्ग > नाग > नागा शब्द व्युत्पन्न हुआ है।

डॉ० टर्नर ने सिंहली भाषा के दो शब्दों, यथा, इहिल तथा लिहिल की वैज्ञानिक व्युत्पत्ति इस प्रकार दी है। इसका अर्थ शिथिल है। यह शब्द संस्कृत के शिथिल एवं श्लथिर से सम्बद्ध है। अर्द्धमागधी प्राकृत में इसका रूप सढिल, पश्चिमी प्राकृत में सिथिल तथा पूर्वी प्राकृत में सठिल रूप उपलब्ध होता है। अर्द्धमागधी से सम्बद्ध सिंहली में र > ल तथा स > ह में परिणत हो जाता है। इस प्रकार श्रीथिर > सठिल > सढिल > हलिल > हिलिल होना चाहिए। पुनः वर्णव्यत्यय के कारण हिलिल > लिहिल, इहिल हो गया।

उपर्युक्त निर्वचन से यह स्पष्ट है कि व्युत्पत्तिविज्ञान के लिए एक भाषा के साथ अन्य भाषा के शब्दों का तुलनात्मक निरूपण आवश्यक है। इसके अभाव में व्युत्पत्ति के अवैज्ञानिक हो जाने की संभावना है।

व्युत्पत्ति-विज्ञान के इस सैद्धान्तिक एवं वैज्ञानिक विवेचन के क्षेत्र में भाषा-विज्ञान के निष्णात मनीषी डॉ० टर्नर का नाम उल्लेखनीय है। उन्होंने अपने तुलनात्मक एवं व्युत्पत्यात्मक नेपाली शब्दकोश तथा 'आर्यभाषाओं के तुलनात्मककोश' में वैज्ञानिक व्युत्पत्ति का प्रातिमानिक रूप प्रस्तुत किया है, जो अधुनातन अनुसंधित्सुओं के लिए प्रकाश-स्तम्भ के रूप में अवस्थित हैं। उन्हीं के प्रथित वैज्ञानिक सिद्धान्तों से अनुस्यूत होकर यहाँ हिन्दी के कतिपय वितर्कित शब्दों की व्युत्पत्ति दी गई है, जो जिज्ञासु एवं भाषाविज्ञान में अवहित छात्रों के लिए परम उपादेय सिद्ध हो सकेगी, ऐसी मेरी आशा है :

अँगूठी—(भो० पु०, अव० अँगुठी) पं० अंगूठी, नें० अउँठि, कु० अंगुठी, बं० आंगुटि, आङ्टि, अ० आंगठि, गु० आङ्गुठी, म० अँगठी < *सं० अङ्गुष्ठीय <सं० अङ्गुष्ठ—

अँधेरा—(भो० पु०, अन्हार् अव० अँधेरा, अँधेर), पं० अन्हारा, अन्हेरा, सिं० अन्धारु, नें० अँध्यारो, अँधेरो, कु० अँधेरो, बं० अँधार्, आँधार्, ओ० अन्धार, प्रा० अन्धारा < पा० अन्धकारो < सं० अन्धकारः।

अखाड़ा—(भो० पु०, अव० अखाड़ा) पं० अखाड़ा, लं० खाड़ा, नें० अखाड़ा, बं० आखड़ा, ओ० आखड़ा, अ० आखरा, गु० अखाडो, म० अखाडा < पा० अक्खवाटो < सं० अक्षवाट।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अगुआ—नेता, आगे चलनेवाला, (भो० पु०, अव० अगुआ, नेता, विवाह तै करानेवाला), ने० अगुवा, कु० अगुवा, बं० आगु (सामने), गु० अगुवो, अगवो < सम्भवतः सं० अग्रेगूः।

आँख—(भो० पु० आँखि, अव० आँखी) ने० आँखो, कु० आँखो, बं० आँखि, ओ० आखि, अ० आखि < प्रा० अक्खि < सं० अक्षि। हिं०, भो० पु०, ने० एवं बं० में स्वतःअनुनासिकता है, किन्तु अ० एवं ओ० में इसका अभाव है।

आँगन्—(भो० पु०, अव० आँगन्), ने० आङन्, कु० आँगण, बं० अगणा < प्रा० पा० अङ्गणं, < सं० अङ्गनम्।

आँवला—(भो० पु०, अव० अँवरा), पं० आँउला, सिं० आँउरो, गु० आँमळु, म० आवळा < प्रा० आमलय—< पा० आमलको < सं० आमलकः।

आटा—(भो० पु० आटा) ने० आटो, बं०, अ० आटा, ओ० अटा गु० आटो, म० आटा < सं० को० अट्टम् < *अर्त—?

आधा—(भो० पु०, अव० आधा), पं०, लं० ने० अद्धा, आधा, कु० आधे, बं० आधा, ओ० अधे, अ० आधा, म० आधा < प्रा० पा० अद्ध < सं० अर्द्ध

ईंट—(भो० पु० ईंटि, ईंटा अव० ईंट्, ईंटा) पं० इट्ट, ने० ईंट्, बं० इट, ओ० इटा अ० इटा, गु० ईंट, म० ईंट < प्रा० इट्टका < सं० इष्ठका।

ईख—(भो० पु०, अव० ऊख) पं० इक्ख, ने० उखु, ब० उख, आख ओ० आखु, गु०, म० ऊस < प्रा० इक्खु, उच्छु < पा० उच्छु < सं० इक्षुः* उक्षुः

ऊँट—(भो० पु०, अव० ऊँट) पं, लँ० उट्ठ, ने० ऊँट्, कु० ऊँट व०, ओ०, अ० उट < प्रा० उट्ट < सं० उष्ट्रः।

उपज्—(भो० पु०, अव० उपज्) ने० उपज्, गु० उपज्, म० उपज सं० उत्पाद्यः।

उल्लू—(भो० पु० उरुआ, अव० उल्लू) पं० उल्लू, ने० उल्लु, कु० उ गु०, म०, उल्लू < प्रा० उलूअ < पा० उलूको < सं० उलूकः।

ऊखल, ओखली—(भो० पु०, ओखरि) पं० उक्खल, , लं० उखली, नि उखिरी, कु० ओखल्, गु० उखळ, म० उखळ < प्रा० उक्खल < पा० ओक्खल संभवतः < सं० उदुक्खल—*औदुक्खल—।

ऊधम्—(भो० पु० ऊधम्, अव० ऊधुम) ने० उधुम, सम्भवतः < सं० उद्धम

ऊसर—(भो० पु०, अव० ऊसर) ने० उसठ्, गु० ऊस्, < पा० प्रा ऊख < सं० उषः, रेह अथवा नमकवाली भूमि।

ओझा—(भो० पु०, अव० ओझा) लं० ओझा, सिं० ओझो, ने० ओझ कु० ओझो, बं०, ओ०, ओझा, गु० ओझो < प्रा० उवज्झाय—< पा० उपज्झा < सं० उपाध्यायः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ओस्—(भो० पु०, अव० ओसु); पं० ओस्, ने० ओस्, कु० ओस्, बं० ओष्, गु० ओस् < प्रा० ओस्सा < सं० अवश्यायः ।

काँवर्—(भो० पु०, काँवरि), बाँस का डंडा जिसके दोनों छोरों पर पानी अथवा सामान ढोने के लिए दो रस्सियाँ बँधी होती हैं।

सिं० काओ, कायो, गु० कावड़, म० कावड्, < प्रा० कावड –।

कचहरी—(भो० पु० कचहरी), पं० कचहिरी, सिं० कचहरी, ने० कचहरि, बं० काचारि, ओ० कचेरि, गु० म० कचेरी < * कृत्य या कृत्याघर (सं० कृत्या=कार्य, कृत्यम्=व्यापार)

कपड़ा—(भो० प्रा०, अव० कपड़ा), पं० कप्पड़, लं० कपड़ा, सिं० कपड़ ने० कपड़ा, बं० कापड़, ओ० कापुड़िया (कपड़ा बेंचनेवाला), गु० म० कापड < प्रा० कप्पड < पा० कप्पट < सं० कर्पट –।

कपास्—(भो० पु० कपासि), अव० कपास्, पं०, लं० कपाट्ट, सि० कपाट्ट, कपट्ट ने० कपास, ,कु० कपास, बं० कापास्, अ० कपाट्ट, गु० कपास, म० कापुस् < प्रा० कप्पास < पा० कप्पसी < सं० कर्पासिः ।

कटहल—(भो० पु०, अव० कँटहर्), ने० कटहर, बं० काँठाल्, ओ० कठल, अ० कँठाल < सं० कंटफलम् ।

करेला—(भो० पु०, अव० करइला), पं० करेला, सिं० करेलो, ने० करेलो, बं० करला, ओ० करबरा < प्रा० कारवल्ला, कारवेल्ली, गु० करेली < सं० कारवल्ऴीं, करवेल्लः।

कहार्—(भो० पु०, अव० कहार्, कहाँर), पं० कहार्, सिं० कहारु, ने० कहार् बं० काहार, ओ० काहाळ, म० कहार् < प्रा० काहार– < पा० काजहारक < *सं० काचहार– < नव्य सं० काहारकः ।

खजूर—(भो० पु०, अव० खजूर), लं० खजूर, सिं० खजूरी, ने० खजुर, बं० खाजुर, ओ० खजुरि, अ० खाजुर, < प्रा० खज्जूर < पा० खज्जूरी < सं० खर्जूरः

खुर—(भो० पु०, अव० खुर), पं० खुर, लं० खुरा, सिं० खुरु, कु० खुर, बं०, ओ० खुर, गु०, म० खुर, प्रा०, पा० खुर < सं० खुरः ।

खीर्—(भो० पु०, अव० खीर), पं० खीर, लं० खीर, सिं० खिरु, ने० खिर, कु० खीर, बं० खिर्, गु०, म० खीर् < प्रा०, पा० खीर– < सं० क्षीरं।

गगरा—(भो० पु०, अव० गगरा), पं० गागर, लं० गागिरा, ने० गाग्रो, बं० गाग्रि, ओ० गगरा, अ० गागरि, गु० गागर, < प्रा० गग्गरी पा० गग्गरो, सं० गर्गरः ।

गड़ुवा—(भो० पु० गड़ुआ), कु० गड़ुवा, बं० गाड़ु, ओ० गड़ु गु० गड्वो, म० गडुवा < सं० को० गड्डुकः ।

५

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गाय्—(भो० पु० गाइ), अव० गाय्, पं० गाई, नें० गाइ, बं०, ओ०, अ० गाइ, गु०, म०, गाय्, <प्रा०, पा०, गावी, <सं० गावी ।

गेहूँ—(भो० पु० गोहूँ, गहुँ), अव० गोहूँ, नें० गहुँ, कु० ग्यूँ, बं० गम, ओ० गहम, गु० गहुँ, म० गहूं, <प्रा० गोहूम, <पा० गोधूमो <सं० गोधूमः ।

गोइँठा—(भो० पु० गोइँठा), नें० गुँइठो <सं० गोविष्ठा ।

गोबर्—(भो० पु०, अव० गोवर्), पं० गोवर्, बं० गोवर्, ओ० गोबर, म० गोवर <प्रा० गोवर,-गोव्वर <सं० गोर्वरः ।

गोरू—(भो० पु० गोरू), पं० गोरू, बं० गरु, ओ० गोरु <पा० गोरूप- <सं० गोरूपः ।

घड़ी—(भो० पु०, अव० घड़ी), सिं० घड़ी, नें० घड़ि, कु० घड़ी, बं, ओ०, घड़ि, गु०, म० घड़ी, <प्रा० घडिआ <पा० घटिका <सं० घटिका ।

घास्—(भो० पु० घासि, घाँसि), अव० घास् पं०, लं०, गाह्, सिं० गाहु, नें० घाँस्, कु० घास्, बं० घास्, ओ० घास, अ० गाँह, गु०, म० घास् <प्रा०, पा० घास <सं० घासः ।

घोड़ा—(भो० पु०, अव० घोड़ा), पं० लं०, घोड़ा, सिं० घोड़ो, नें० घोड़ा, कु० घोड़ो, बं० घोड़ा, ओ० घोडा, अ० घोरा, गु० घोडो, म० घोडा <प्रा० घोडअ <पा० घोटको <सं० घोटकः ।

चोरी—(भो० पु०, अव० चोरी), पं०, लं०, सिं० चोरी, नें० चोरि, बं० चुरि, अ० चोरी, गु० म०, चोरी <प्रा० चोरिआ <पा० चोरिका, सं० <चौरिका ।

चौका—(भो० पु०, अव० चउका), पं० चौक्का, लं० चौका, सिं० चौको, नें० चौको, बं०, ओ० चौका, अ० सौका, गु० चोकों, म० चौका, <सं० चतुष्क— ।

छटाँक्—(भो० पुं०, अव० छटाँक्), पं० छटाँक, ने० छटाँक्, बं० छटाक्, ओ० छटांकि अ० सटाक् <*सं० षट्-टंक — ।

छाता—(भो० पु०, अव० छाता), पं० छात्ता, लं० धत्तर, सिं० छट्ठु, बं० छाता, ओ० छत्ता, अ० साति <पा० छत्तकं <सं छत्रकम् ।

छूरी—(भो० पु०, अव० छूरी), पं० छुरी, लं०, सिं० छुरी, ने० छुरि, कु० छुरि, बं, ओ० छुरि, गु० छुरी, म० सुरी <प्रा० छुरिआ <छुरिका सं० क्षुरिका ।

छैला—(भो० पु०, अव० छइला), पं० छैला, छैल,, ने० छयल्ल, गु० छेल् <प्रा० छइल्ल <सं० छविल्ल, (सं० छविः, छवी, प्रा० पा० छवि से व्युत्पन्न) ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जंगल—(भो० पु०, अव० जंगल), पं० जंगल < प्रा०, पा० जंगल—< सं० जांगल: ।

जड़—(भो० पु०, जरि); अव० जर्, पं० जड़, ने० जरो, कु० जड़ो, बं० जड़, ओ० जड़, गु० जड्, म० जड् < प्रा० जडा, जड – < जटा < सं० जटा ।

जाड़ा—(भो० पु०, अव० जाड़), सिं० जाड, ने० जाड़ो, कु० जाड़ो, बं० जाड़ा, ओ० जाड़, अ० जार्, गु० जाड्, म० जाडा < जाळो < सं० जाड्यम् ।

जूता—(भो० पु०, अव० जूता), पं० जुत्तणा (जुतना), लं० जुत्ता, सि० जुतो, ने० जुत, कु० जुतो, बं०, ओ० जुता, गु० जुत् < प्रा० जुत्त – < पा० युत्तो (जुड़ा हुआ) < सं० युत्त – ।

जोखिम्—(भो० पु०, अव० जोखिम्), पं० जोखों, लं० जोखिओं, सिं० जोखो, जोखिमु, ने० जोखिम्, कु० जोखण्, गु० जोखम्, < पा० योगक्खेम्—< सं० योगक्षेम: ।

झा—प्रा० अज्झाव— < पा० अज्झायको < सं० अध्यापक:, सं० अध्यायी = वेदपाठी ।

ठाट्—(भो० पु० अव० ठाट्), पं० ठठ्, लं० ठठ्ठ, सिं० ठाठु, ने० ठाँट्, बं० ठाट्, ओ० ठाट्, गु० ठाठ्डी, म० ठाट् < सं० तष्ट: ।

डाह्—(भो० पु०, अव० डाह्), पं०, बं०, अ०, दाह् गु० डाह्, म० दाहा < प्रा० दाह—, डाह— < पा० डाहो < सं० दाह: ।

डोम्—(भो० पु०, अव० डोम्), पं० डूम्, डोम्ड़ा, लं० डूम्, ने० डुम्, बं० डोम्, अ० डोम, म० डोव्, < प्रा० डोम्व—, डुम्व— < सं० डोम्व: ।

डोरा—(भो० पु०, अव० डोरा), पं०, लं० डोर्, ने० डोरो, बं० डोर्, डोरा, ओ० डोरा, अ० डोल्, गु० दोर, दोरो, म० डोर्, डोरा, < प्रा० दवर – < सं० दोरक:, दवर: ।

डोला—पुं०, डोली (स्त्री० लिं०), (भो० पु० अव० डोला, डोली), पं० डोला, डोली, ने० डोलि, बं० डोल्, डोला, डोली, ओ० डोलि, अ० डोला < प्रा० डोला, पा० दोला < सं० दोला, दोलिका ।

ढाढ़स्—(भो० पु०, अव० ढाढ़स्), पं० ढाडस्, ने० ढाड़स्, कु० ढाड़स् < सं० दाढ्र्यम् ।

ढाल्—(भो० पु०, अव० ढाल्), पं०, लं०, ने० ढाल्, कु०, बं०, अ० ढाल्, ओ० ढाल गु० म० ढाल् < सं० ढालम् ।

तकुआ—(भो० पु०, अव० टेकुआ), सि० टूकु, ने० तकुवा, कु० ताकू उ० ताकुड़ि, < प्रा० तक्कु < सं० तर्कु: ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तमोली—ने० तमोलि, बं० ताम्बुलि, ओ० तामड़ि, अ० तामुलि, गु० तँबोड़ी, म० ताँबोडी <प्रा० तम्बोलिअ—<सं० ताम्बूलिकः।

तलाव्—(भो० पु०, अव० तलाव्), पं०, ने० तलाउ, कु० तलउ, बं० तलाउ, गु०, म० तळाव्, <प्रा० तडाग, तळाअ, तलाअ <पा० तळाक <सं० तडागः।

ताड़—(भो० पु०, अव० ताड़्), पं०, ने० ताड़्, बं० ताड़्, ओ० ताळ, गु०, म० ताड् <प्रा०, पा० ताल-सं० तालः।

ताला—(भो० पु०, अव० ताला), बं० ताला, ताड़ा, ओ० ताला, गु० ताळुं, <प्रा० ताल—<पा० ताळो <सं० तालकः।

तावा—(भो० पु०, अव० तावा), सं० तापकः।

तीखा—(भो० पु० तीख्), पं० तीखा, तिक्खा, लं० त्रिक्खा, सिं० तिखो, कु० तिखो, अ० तिखा, गु० तीखुं, म० तीख, तिक्खें < प्रा०, पा० तिक्ख—<सं० तीक्ष्णः।

तीवन्—(भो० पु० तीअन), पं० टमणा, सिं० तीवणु, ने० तिउन्, कु० त्यून्, त्यूनार, बं० तेमन्, ओ० तिउण, तिअण, म० तेवणें < प्रा० तीमण—<पा० तेमनं < सं० को० तेमनम्।

तेल्—(भो० पु०, अव० तेल्), पं०, लं० तेल, सिं० तेलु, कु० बं०, अ० तेल्, ओ० तेल < प्रा० तेल्ल— तिल्ल— < पा० तेलं < सं० तैलम्।

तोंद्—(भो० पु० तोन्), अव० तोंद् पं० तोंद, म० तुंद, देशी तुंद <प्रा० तुन्दिल्ल—<सं० तुन्दम्।

तोला—(भो० पु० तोला), अव० तोला, पं०, लं० तोला, सिं० तोरो, बं०, अ० तोला, गु० तोलो, म० तोला < प्रा० तोल—<सं० तोलकः।

त्यौहार—(भो० पु० तेव्हार), अव० तेउहार पं० तिहार, सिं० तिहाड़ु, गु० तेहेवार— <*तिथिवार।

थाली—(भो० पु०, अव० थारी), पं० थाली, सिं० थारी, ने० थालि, कु० थाली, बं०, अ० थालि, गु०, म० थाली <प्रा० थल्लिआ, <प्रा० पा० थाली <सं० स्थाली।

थूक—(भो० पु०, थुक्, थूक्), अव० थूँक् पं०, लं० थुक्क, सिं० थुक, कु० थुक् बं० थुक्, ओ० थुक, गु० थुंक्, म० थुक्, प्रा० थुक्क <मिलाओ सं० थूत्कारः।

थैला—(भो० पु०, अव० थइला), पं० थैला, सि० थेलो, ने० थैलो, कु० थैलो, बं० थैला, ओ० थैली, अ० थैला, गु० थेलो, म० थैला <प्रा०थइआ< पा० थविका <स० को० स्थविः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

थोड़ा—(मो० पु०, अव० थोर्), पं० थोड़ा, कु०थ्वाड़ा, वं०, ओ० थोड़ा, गु० थोडुं, म० थोड़ा <प्रा० थोअ <पा० थोकं <सं० स्तोकम्।

दाढ़ी—(मो० पु०, अव० डाढ़ी), पं० दाढ़ी, लं०डाढ़ी, सिं० डाढ़ी, ने० दारि, कु० दाड़ी, वं०, ओ० दाड़ी, गु०, म० दाढी < प्रा० दाढिआ < पा० दाठिका < सं० दाढ़िका।

दातुन—(मो० पु० दतुअन् अव० दतुइन्), पं०, दातण, ने० दतिउण्, कु० दातून, वं० दाँतन, गु० दातण, म० दाँत्-वण् < प्रा० दन्तघावण— < सं० दन्तघावनम्।

दाल्—(मो० पु० दालि), अव० दाल्, पं० दाल्, डाल, लं० डाल्, कु० दाल्, वं० डाल्, ओ० डालि, गु०, म० दाल् <प्रा० दालि < सं० को० दालः।

दूल्हा—(मो० पु०, अव० दुल्हा), सि० दूलहु, गु० दुल्हुं <प्रा० दुल्लह— < सं० दुर्लभः।

धाय्—वं०, ओ०, अ० धाइ, गु० धाव् < धाई, धावी < पा० धाती < सं० को० धातृका।

धूआँ—(मो० पु०, अव० धुआँ), पं० धूआँ, लं० धूँ, कु० धुवाँ, वं० धुँया, ओ० धुआँ, अ० धुँवा, गु० धूम, धुमडो, म० धुई (कुहरा) < प्रा०, पा० धूम < सं० धूमः।

धोबी—(मो० पु०, अव० धोबी), पं० धोबा, धोबी, सिं० धोबी, कु० धोबी, ओ०, अ० धोबा, गु०, म० धोबी <प्रा० धुव्वइ (धोता है) < पा० धोवं < सं० <धोव्व—।

ननद्—(मो० पु० ननदि, ननदिया), पं० नणानू, ने० नन्द, कु० नन्द, वं० नन्दा, ओ० नणन्द, गु० म० नणँद् < प्रा० णणन्दा < पा० ननन्दा < सं० ननान्दा।

नाती—(मो० पु०, अव० नाती), पं० नात्ता, कु० नाती, वं०, ओ०, अ० नाति, म० नात् < प्रा० णत्तिअ— < पा० नत्ता < सं० नप्तृ।

नींबू—(मो० पु०, अव० नीमू), पं० निम्बू, वं० नेवु, ओ० नेम्बु, अ० नेमु, गु० लीवु, म० निंबु < सं० को० निम्बूकः।

पंसारी—(मो० पु० पसारी, अव० पंसारी), पं० पसारी, पनसारी, सिं० पसारु, वं०, ओ० पसारी, अ० पोहारी, म० पसारी < प्रा० पसारेइ, (पसारना, फैलाना) < पा० पसारेति (बेचने के लिए पसारना) < सं० प्रसारः (पसारना, बाद का अर्थ दूकान)। 'पंसारी' में अनुनासिकता का प्रवेश सम्भवतः 'पान'— की 'न'—ध्वनि के कारण है। इसकी उत्पत्ति 'पण्यशालिक' से भी सम्भव है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पगहा—(मो॰ पु॰, अव॰ पगहा), सि॰ पगहु, ने॰ पगाहा, ओ॰, अ॰ पघा, गु॰, म॰ पाग्, < प्रा॰ पग्गह—< पा॰ पग्गहो, पग्गाहो < सं॰ प्रग्रहः, प्रगाहः।

पत्थर—(मो॰ पु॰ पत्थल्), अव॰ पाथर् पं॰ पत्थर्, सि॰ पथरु, वं॰, अ॰ पाथर्, ओ॰ पथर, गु॰ पाथ्रो, म॰ पाथर्, < प्रा॰ पत्थर, < पा॰ पत्थरो < सं॰ प्रस्तरः।

पड़ोसी—(मो॰ पु॰, अव॰ परोसीं), वं॰ पड़्सी, ओ॰ पड़िसा, पड़ोसि, गु॰, म॰ पडोसी < प्रा॰ पडिवेसिअ—सं॰ प्रतिवेशीं।

पाहुन्—(मो॰ पु॰ पाहुन, अव॰ पहुना), पं॰ पराहुणः, पाहुणा, लं॰ पराहूणा, कु॰ पौणो, गु॰ परोणो, पराणो, म॰ पाहुणा < प्रा॰ पाहुण < पा॰ पाहुन—< सं॰ प्राहुणः, नव्य संस्कृत प्राघुणः।

पाड़ा—(मो॰ पु॰ पाड़ा, अव॰ पँड़वा), सि॰ पाडो, ने॰ पाड़ो, कु॰ पाड़ो, गु॰ पाडो, म॰ पाडा, < प्रा॰ पड्डअ < *पाडु मिलाओ, देशीं पड्डीं (स्त्री॰ लिं॰)=प्रथमप्रसूता।

पुतली—(मो॰ पु॰, अव॰ पुतरीं), ने॰ पुतलि, कु॰ पुतलीं, वं॰ पुतलि, ओ॰ पुत्तलि, अ॰ पुतलि, गु॰, म॰ पुतळी < प्रा॰ पुत्तलिआ < सं॰ पुत्तलिका।

पूँजी—(मो॰ पु॰, अव॰ पूँजी), ने॰ पुँजि, कु॰ पूँजीं, वं॰ पुँजि, ओ॰ पुँजि, गु॰ पुँजो, म॰ पुँजा, पुँजी < प्रा॰ पुंज—< पा॰ पुंजो < सं॰ पुंजः।

पूआ—(मो॰ पु॰, अव॰ पुआ), ने॰ पुवा, कु॰ पुवा, म॰ पुवा < प्रा॰ पूअ, < पा॰ पूपो, पूवो < सं॰ अपूपः।

पूत—(मो॰ पु॰ पूत, पुता), पं॰ पुत्त्, पुत्तर्, लं॰ पुत्तुर्, सि॰ पुट्रु, ने॰ पुत्, कु॰ पूत्, वं॰ पुत्, ओ॰ पुत अ॰ पुत्, गु॰ पुत्र, पूत्, म॰ पूत् < प्रा॰, पा॰ पुत्त, < सं॰ पुत्रः।

पोथी—(मो॰ पु॰, अव॰ पोथीं), पं॰, सि॰ पोथो, ने॰ पोथि, कु॰ पोथीं, व॰ पुथि, ओ॰ पोथा, अ॰ पुथि, गु॰, म॰ पोथी < प्रा॰ पोत्थिआ, पा॰ पोत्थकं < पुस्तकं, वास्तव में सं॰ "पुस्तकं" पहलवी "पोस्तक" "चमड़ा" से निर्मित रूप है।

प्याऊ—पं॰ पउ, कु॰ पउ, प्रा॰ पवा < पा॰ पपा < सं॰ प्रपा।

प्यार—(मो॰ पु॰, अव॰ पियार), पं॰ पिआर्, सिं॰ पिआरु, ने॰ पियार् या प्यार्, गु॰, म॰ प्यार् < अप॰ पिआर—< प्रा॰ पिअआरिण < प्रियकारः।

फक्कड़—(मो॰ पु॰ अव॰ फक्कड़), पं॰ फक्कड़्, सिं॰ फकिड़ीं, ने॰

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

फक्कड़्, कु० फकड़्, वं० फक्कड़्, अ० फकरा, गु० फक्कड्, म० फक्कड्, सं० को० फक्किका, छल ।

फूल—(भो० पु०, अव० फुल्, फूल्), पं०, लं, फुल्ल, सिं० फुलु, ने० फुल्, कु० फूल्, वं०, अ० फुल्, ओ० फुल, गु०, म० फूल् < प्रा०, पा० फुल्ल—पूर्ण खिला हुआ < सं० फुल्ल—।

फोड़ा—(भो० पु०, अव० फोरा), पं०, वं०, फोड़ा, ने० फोरो, ओ० फोड़ि, 'छोटी सुराख', गु० फोड्लो, म० फोड् < प्रा० फोडअ— < पा० फोटको, फोटो < सं० स्फोटक, स्फोटः ।

बखेड़ा—(भो० पु०, अव० बखेड़ा), पं० वखेड़ा, ने० वखेड़ा, गु० वखोडवुँ < प्रा० वक्खेव—< सं० व्याक्षेपः ।

बछेड़ा—(भो० पु०, अव० बछेड़ा), पं० वछेरा, सिं० गु० बछेरो, ने० वछेड़ो < सं० वत्सतरः ।

बटलोही—(भो० पु० वटुआ, वट्लोइ, वट्लोही), अव० वटुई, पं० वट्लोहा, वट्लोहीं, ने० वट्लोइ, वं० बाट्लहि < पा० वट्टलोहं < सं० को० वर्तलोहम् ।

बढ़ई—(भो० प्र०, अव० बढ़ई), पं० वढ्ढणा, काटना, लं० वढ्ढण्, सिं० वढणु, ने० वड़इ, वं० वाड़इ, ओ० वढ़ाइ, गु० वाढ्वुँ, म० वाढ़ाया < प्र० वड्डइअ— < पा०, वड्ढकि < सं० वर्द्धकिः ।

बरात्—(भो० पु० वरात्, वरियाँत्), पं० वरात्, ने० वरियाँत्, कु० वरात्, गु०, म० वरात् < सं० वरयात्रा ।

बहुत्—(भो० पु०, अव० बहुत्), पं० वहुत्, लं० वहुँ, ने०, कुं०, वहुत्, वं० वहुत्, ओ० वहुत, गु० म०, वहुत्, < प्रा० वहुत्त < पा० बहुत्तं < सं० वहुत्वम् ।

बहेड़ा—(भो० पु०, अव० वहेरा), पं०, वं०, वहेड़ा, ने० बर्रो, ओ० वाहाड़ा < पा० विभितको, विभिटको < सं० विभीतकः ।

बिछी—(भो० पु०, अव० बीछी), पं० विच्छु, लं०, विछू, ने० विच्छि, कु० विछी, वं०, ओ० विछा, गु० विंछी, म० विंछी, विछु < प्रा० विच्छिअ— विच्छुअ —< सं० वृश्चिकः ।

बिहान्—(भो० पु०, अव० विहान्), सिं० विहाणि, ने० बियान, कुं० व्यान्, वं० विहान्, गु० वहाणुँ < पा० विभायनं सं० < विभानः ।

बूढ़ा—(भो० पु० बूढ़), पं०, लं० बुढ्ढा, ने० बुड़ो, कु० बुड़ो, वं० बुड़ा, ओ० बुढ़ा, गु० बूढ़ < पा०, प्रा० वुढ्ढ—< सं० *वृढ—(मि० सं० परिवृढः) वस्तुतः सं० वृद्ध— > वृढ्ढ । आगे पा० प्रा० में यह वृढ्ढ > वुढ्ढ ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बेठन—(मो० पु० बेठन्), सिं० वेठणु, म० वेठण् (बाँधना) < प्रा० वेट्ठण < सं० वेष्टनम्।

बैंगन—बैगन् (मो० पु० बैंगन, बइगन), पं० वइँगण, ने० वैगुन्, कुं० वाँगुन्, गु० वेंगण् < प्रा० वाइंगण < पा० वार्तिगनो < सं० को० वंगनः।

भँडार्—(मो० पु० भँड़ार्), पं० भँडार्, सिं० भँडारु, ने० भँड़ार्, कु० भनार, बं० भाँड़ार्, ओ० भंडार, गु० भँडार्, म० भाँडार < प्रा० भण्डाआर—भण्डार— < सं० भाण्डागारम्।

भतीजा—(मो० पु० भतीज्), पं० भतीजा, ने० भतिजो, गु० भत्रिजो < प्रा० भत्तिज्ज— < सं० भ्रात्रीयः।

भावज्—(मो० पु० भउजी), पं०, लं०, भर्जाई, सिं० भाजाई, ने० भाउज्, कु० भौज्, बं, भाउज्, भाइज्, गु० भोजाई, म० भाव्जइ < देशी भाउज्जा < सं० को० भ्रातुर्जाया।

भालू—(मो० पु० भालु), ने० भालु, कु० भालु, वं० भालुक्, ओ० भालु, म० भालु, भालूक, < देशी भल्लु < प्रा० भल्ल— < सं० को० भल्लुकः, भल्लूकः।

भिखारी—(मो० पु० भिखारि), पं० भिखारी, ने० भिखारि, कु० वं० भिकारि, ओ० भिखारि < प्रा० भिच्छअरअ—, भिक्खायर— < पा० भिक्खाचरिया < सं० भिक्षाचरः।

भैंस—(मो० पु० भइँसि), ने० भैंसि, कु० भैंसो, गु० भेंस् म० म्हैंस, < प्रा० महिस्— < पा० महिसो महिंसो < सं० महिषः (पुं०) महिषी (स्त्री०लिं०)।

मदारी—(मो० पु० मदाड़ी, मदारी), पं० मदारी, गु० म० मडारी < सं० मंत्रकारः।

मसान्—(मो० पु० मसान्), पं० मसाण्, सिं० मसाणु, ने० मसान्, वं० मसान्, ओ० मसाणि < प्रा० मसाण—, सुसाण— < पा० सुसानं < सं० श्मशानम्।

महुआ—(मो० पु० महुआ), पं० महुआ, ने० मौवा, गु० महुडो, मौडो, म० मोह्, मोहा < प्रा० महुअ < पा० मधुकं < सं० मधूकः।

मैना—(मो० पु० मैना), पं०, ओ० मैना, गु० मेना, म० मैना < सं० को० मदनः।

मौसी—(मो० पु० मउसी), पं० मास्सी, लं०, सिं० गु० मासी, म० माव्सी < प्रा० माउस्सी, माउस्सिआ < पा० मातुच्छा < सं० मातृष्वसा।

रसोई—(मो० पु० रसोई), पं० गुं० रसोई, वं० रसुइ < प्रा० रसवई < सं० रसवती।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रूख्—(भो० पु० रूख्), पं० ल० रुक्ख्, गु० म० रुख् < प्रा० पा० रुक्ख— < सं० रुक्षः, < सं० वृक्षः ।

लसुन्—(भो० लहसुन्), पं०, गु०, म० लसण्, वं० रसुन्, ओ० रसुण < प्रा० लसुण, < पा० लसुणं, लसुनं < सं० लशुनम्, सं० को० रसुनम्, रसोनम् ।

लाठी—(भो० पु० लाठी), सिं० लाठि, ने० लाठो, गु० लाठी < *लष्टि < लकुटः+यष्टिः ।

लौका—(भो० पु० लउका), पं० लौका, वं० ओ० लाउ < प्रा० अलाउ, लाउ < पा० अलाबु, लाबु, अलापु, लापु < सं० अलाबुः, को० आलाबुः ।

सिंघाड़ा, सिंगाड़ा—(भो० पु० सिंगारा), पं० सँघाड़ा, वं० सिंगाड़ा, सिंगारा, ओ० सिंगाड़ा गु० सिंगोडो, म० सिंगाडा < प्रा० सिंघाडग— < पा० सिंघाटको < सं० शृंगाटः, शृंघाटकः ।

सूई—(भो० पु० सूई, सुइ), पं० सूई < प्रा० सूई < पा० सूचि < सं० < सूची ।

हाँड़ी—(भो० पु० हाड़ी), पं० हाँडी, लं० हाण्डी, सिं० हण्डी, ने० हाँड़ि, गु० म० हाँडी < नव्य सं० हण्डिका ।

---

*भो० पु०=भोजपुरी, अव०=अवधी, पं०=पंजाबी, लँ=लँहदा, ने०=नेपाली, वं० = बंगला, ओ० = ओड़िया, अ० = असमिया, गु० = गुजराती, म० = मराठी, कु०=कुमायूनी, प्रा० = प्राकृत, पा० = पालि, सं० को० = संस्कृत कोश।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भारतीय लिपियों की उत्पत्ति तथा विकास

भारत तथा उसके पड़ोसी देशों में प्रचलित लिपियों की उत्पत्ति तथा विकास के सम्बन्ध में विचार करने के पूर्व, लिपि के उद्भव एवं उसके विभिन्न रूपों का सामान्य परिचय आवश्यक है। मनुष्य ने लिखना कैसे सीखा, इसकी कहानी अत्यन्त मनोरंजक है। वस्तुतः लिखने की कला का आविष्कार मनुष्य की अन्यतम खोजों में से है। सहस्राब्दियों तक मनुष्य भाषा के माध्यम से अपने विचारों की अभिव्यक्ति करता रहा, किन्तु उसके संरक्षण का उसके पास कोई साधन न था। इसका एक परिणाम यह हुआ कि अनेक जातियाँ अपनी भाषाओं के साथ विश्व के रंगमंच पर आईं और लुप्त हो गईं। जब भाषा को लिखने की कला का माध्यम प्राप्त हुआ, तब एक अभिनव सृष्टि का आरम्भ हुआ। तब से मनुष्य अपने ज्ञान-विज्ञान के संचय और संरक्षण में प्रवृत्त हुआ, जिससे सभ्यता एवं संस्कृति का उत्तरोत्तर विकास हुआ। वास्तव में भाषा एवं उसके लिखने की कला, ये दो, ऐसी वस्तुएँ हैं, जो मनुष्य को पशु से पृथक् करती हैं तथा जिनके सहारे वह निरन्तर उन्नति के पथ पर अग्रसर होता जा रहा है।

लिपि के सम्बन्ध में अनुसन्धान करनेवाले विद्वानों का अनुमान है कि भाषा की भाँति ही लेखन कला की उत्पत्ति भी विचारों की अभिव्यक्ति के लिए ही हुई होगी। ऐसा प्रतीत होता है कि घटनाओं अथवा तथ्यों के संरक्षण की अपेक्षा अपने निकट की वस्तुओं से सहानुभूति प्रकट करने के लिए ही गुहा-मानव ने सर्वप्रथम चित्रों का अंकन किया था। उत्तर पाषाण-काल में ऐसे अनेक चित्र विभिन्न देशों की कन्दराओं की भित्तियों पर मिले हैं।

प्रतीकों द्वारा सन्देश

प्रतीकों द्वारा सन्देश भेजने की प्रथा भी अति प्राचीनकाल से विभिन्न देशों में प्रचलित है। तिब्बती-चीनी सीमा पर जब किसी के पास मुर्गी का कलेजा, उसकी चर्बी के तीन टुकड़ों एवं एक मिर्च के साथ लाल कागज में लपेट कर भेजा जाता है तो उसका अर्थ होता है कि युद्ध के लिए तैयार हो जाओ। यह प्रसिद्ध है कि महाराज शिवाजी के गुरु समर्थ रामदास ने उनके पास घोड़े की थोड़ी लीद तथा कतिपय पत्थर के टुकड़े भेजे थे, जिसका आशय

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यह था कि तुम्हारे घोड़े एवं दुर्ग सुरक्षित रहें ताकि तुम युद्ध में निरन्तर विजय प्राप्त करते रहो।

चित्र-लिपि

लिपि-विशारदों के अनुसार लिखने की कला का आद्य रूप चित्रलिपि है। इसके द्वारा किसी वस्तु का बोध कराने के लिए उसका चित्र बनाया जाता है। उदाहरणार्थ चित्रलिपि में सूर्य को वृत्त-रूप में तथा मनुष्य को उसके रेखाचित्र के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। यहाँ किसी आख्यान या कहानी को भी अनेक चित्रों के रूप में अंकित किया जाता है। इन चित्रों को देखकर ही लोग उस आख्यान अथवा कहानी को समझ जाते हैं। इस प्रक्रिया से विचारों की अभिव्यक्ति तो चित्रलिपि द्वारा हो जाती है, किन्तु यहाँ जो प्रतीक अथवा चित्र-प्रयुक्त होते हैं वे ध्वनि का प्रतिनिधित्व नहीं करते। संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि चित्रलिपि के द्वारा अर्थबोध तो हो जाता है किन्तु ध्वनि-बोध नहीं होता।

यहाँ चित्र तथा चित्रलिपि के अन्तर को भी स्पष्टतया हृदयंगम कर लेना चाहिएं। जहाँ चित्र में मनुष्य का वास्तविक उद्देश्य किसी का अंकन मात्र होता है, वहाँ चित्रलिपि में उसका मुख्य उद्देश्य विचारों की अभिव्यक्ति तथा उसका संरक्षण होता है। वास्तव में गुहा-मानव के चित्रों के बाद, उन्नति के पथ पर अग्रसर होकर ही मनुष्य ने चित्रलिपि का आविष्कार किया होगा।

चित्रलिपि का प्रयोग प्रायः विश्व के अनेक देशों में पाया जाता है। प्राचीन युग के मानव ने ही इसका सर्वप्रथम प्रयोग किया था और यह लिपि मिस्र, मैसोपोटेमिया, फोनेशिया, क्रीट, स्पेन, दक्षिणी फ्रांस तथा अन्य देशों में उपलब्ध हुई है। मध्य-अफ्रीका, उत्तरी अमेरिका तथा आॅस्ट्रेलिया के प्राचीन मानव ने भी इस लिपि का उपयोग किया था। कई देशों में भोजपत्र, काष्ठ-पट्टिका, मृग तथा अन्य पशुओं के चर्म, अस्थि, हाथीदाँत एवं समतल चट्टानों पर चित्रलिपि के नमूने उपलब्ध हुए हैं।

भाव-लिपि

यह एक प्रकार की अत्यधिक समुन्नत चित्रलिपि है। यह वास्तव में मनुष्य के हृदय के भावों का चित्रात्मक अंकन है। इस लिपि में चित्र, वस्तुओं के प्रतिनिधि नहीं होते अपितु इन वस्तुओं से सम्बन्धित भावों के द्योतक होते हैं। उदाहरणस्वरूप भावलिपि में एक वृत्त केवल सूर्य का ही प्रतिनिधित्व नहीं करता, वल्कि वह 'उष्णता', 'प्रकाश' अथवा सूर्य से सम्बन्धित 'देवत्व' या 'दिन'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

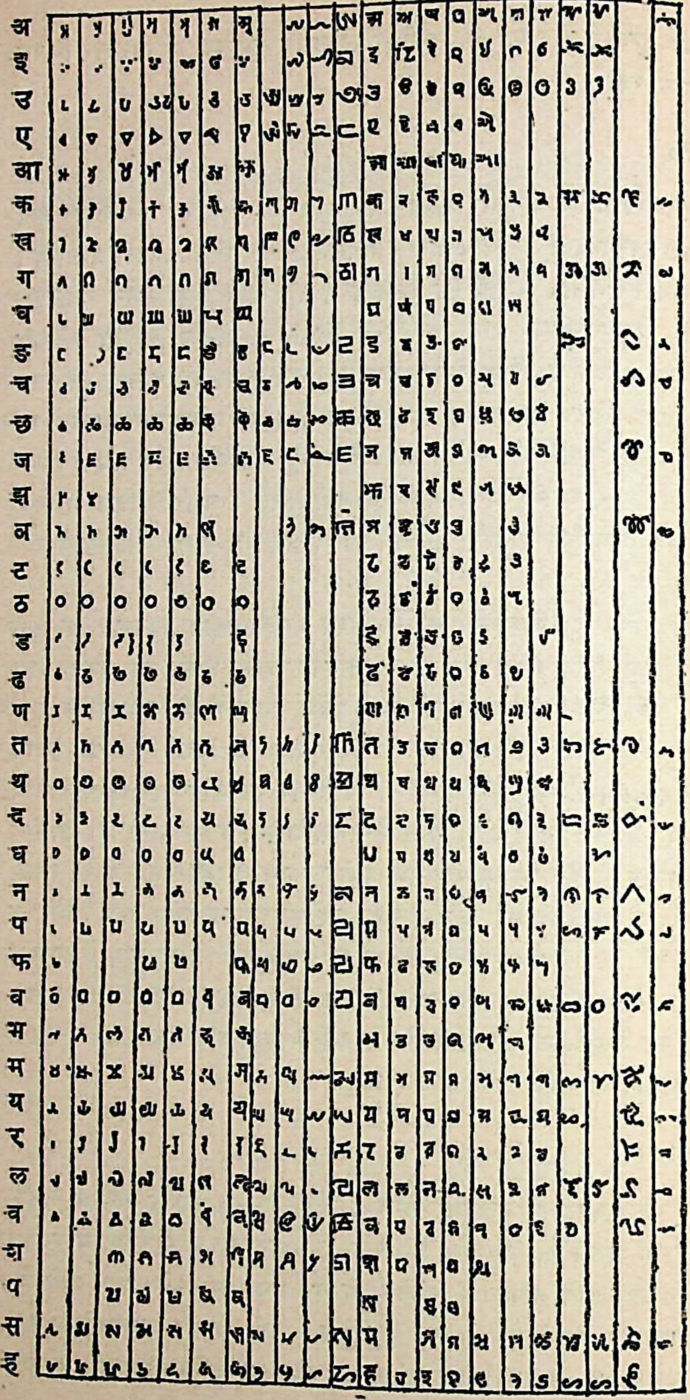

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

in Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

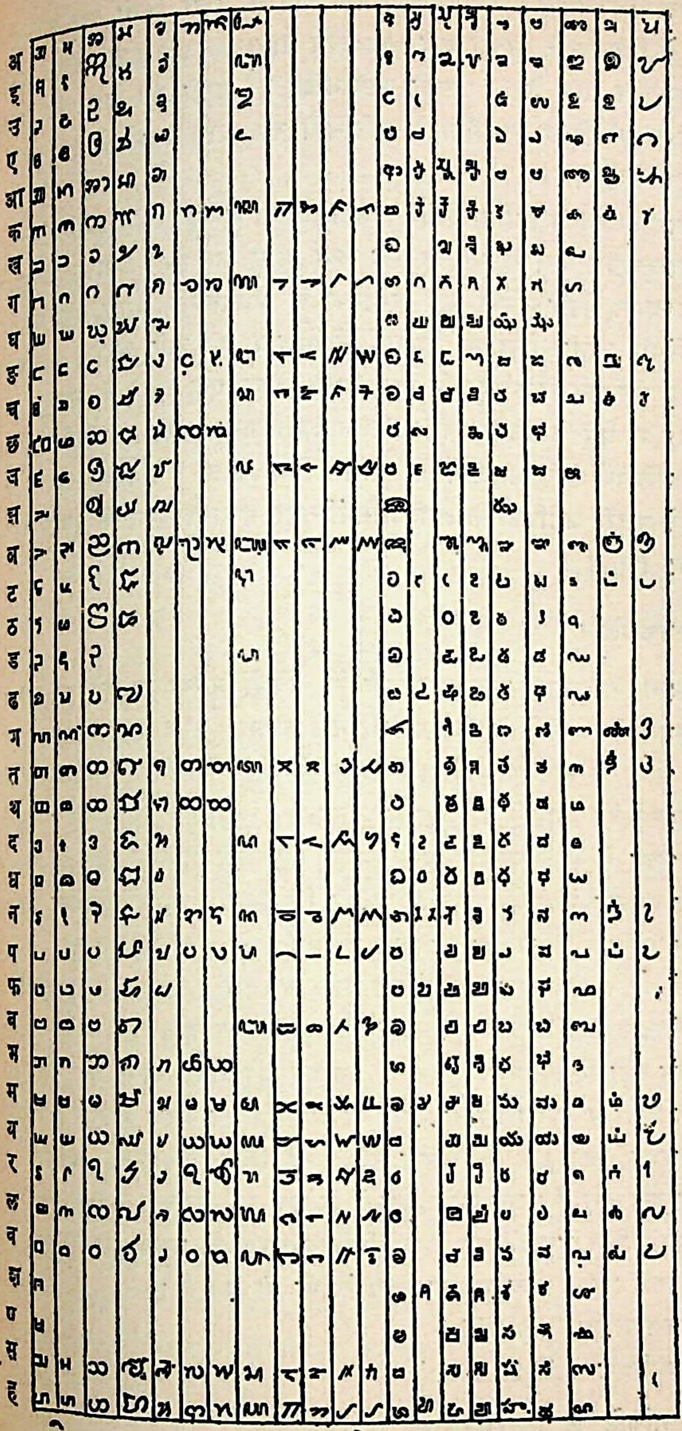

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

को द्योतित करता है। इसी प्रकार भावलिपि के द्वारा किसी पशु का बोध कराने के लिए उसके सम्पूर्ण शरीर का चित्र आवश्यक नहीं होता, केवल उसके सिर के चित्र मात्र से ही उसकी अभिव्यक्ति हो जाती है। 'जाने की क्रिया' को भी भावलिपि में, दो पैरों के प्रतिनिधि रूप, दो रेखाओं से ही द्योतित किया जाता है।

सामान्य रूप से विभिन्न देशों की भावलिपियों में बहुत कम अन्तर मिलता है। उदाहरणार्थ दुःख के भावबोध के लिए आँख का चित्र बनाकर अश्रुपात कराना प्रायः केलिफोर्निया एवं अमेरिका के आदिवासी, माया तथा एजटेक जातियों एवं चीनी लोगों की लिपियों में मिलता है। इसी प्रकार अस्वीकृति के लिए 'पीठ फेर लेना' युद्ध के लिए 'शस्त्र लेकर एक दूसरे के सम्मुख डट जाना' तथा प्रेम के लिए 'एक दूसरे का आलिंगन करना' भी विभिन्न देशों की भावलिपियों द्वारा सहज में ही प्रदर्शित किया जाता है। विशुद्ध भावलिपि के नमूने उत्तरी अमेरिका के आदिवासियों तथा मध्य-अफ्रीका के हब्शी लोगों से प्राप्त हुए हैं।

ध्वन्यात्मक लिपि

चित्रलिपि तथा विशुद्ध भावलिपि में चित्रों अथवा प्रतीकों का उनके लिए उच्चरित ध्वनियों से कोई सम्बन्ध नहीं होता। चित्र अथवा प्रतीक किसी विशेष भाषा के होते भी नहीं। विभिन्न भाषाओं में उनका समान रूप से प्रयोग होता है। लिपि के इतिहास में ध्वन्यात्मक लिपि का स्थान सब से ऊँचा है। वास्तव में आज ध्वन्यात्मक लिपि ही भाषा की प्रतिरूपा है और लेखन की इस प्रणाली में प्रत्येक तत्त्व भाषा की विशेषध्वनि का प्रतिनिधित्व करता है। इस लिपि में प्रतीक, वस्तुतः, वस्तु अथवा भाव को नहीं द्योतित करते, अपितु ये ध्वनि अथवा ध्वनि-समूहों को प्रकट करते हैं। संक्षेप में, इस प्रणाली में, लिखित रूप बोलनेवाली भाषा का ही दूसरा रूप होता है। इस प्रणाली की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें लिपि तथा भाषा एक दूसरे का अंग बन जाती है और लिपि ही भाषा का प्रतिनिधित्व करने लगती है। यहाँ प्रतीक अथवा चिह्न एक अर्थ द्योतन नहीं करते, अपितु वे विभिन्न भाषाओं के प्रतिरूप बन जाते हैं। अब पृथक प्रतीकों के रूप का भी कुछ महत्त्व नहीं रह जाता तथा जिन वस्तुओं का वे प्रतिनिधित्व करते हैं, उनसे भी इनका कुछ सम्बन्ध नहीं रहता। ध्वन्यात्मक लिपि के भी दो भेद हैं :—

(१) अक्षरात्मक (Syllabic)

(२) वर्णात्मक (Alphabetic)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अक्षरात्मक लिपि

इस लिपि में स्वर-चिह्नों को व्यंजनों के साथ जोड़ने की रीति के कारण लिखावट के मूल उपादान अक्षर (Syllable) हो गए हैं। उदाहरणार्थ संस्कृत के 'विराट' शब्द में 'व, र तथा ट' इन तीनों वर्णों के साथ 'इ' 'आ', तथा 'अ' स्वर जुड़े हुए हैं। अक्षरात्मक लिपि का दोष यह है कि इसके द्वारा ध्वनि का विश्लेषण तनिक कठिनाई से होता है। नागरी लिपि वस्तुतः अर्द्ध-अक्षरात्मक लिपि है। इसके द्वारा ध्वनि का विश्लेषण तो हो जाता है, किन्तु स्वरों के यथास्थान न होने से यह विश्लेषण उतनी सुन्दरता से नहीं हो पाता जितना रोमन की वर्णात्मक लिपि के द्वारा। उदाहरणस्वरूप 'विराट' की ध्वनियों का विश्लेषण नागरी लिपि के द्वारा व् + इ + र् + आ + ट् + अ होगा। यही विश्लेषण रोमन लिपि के द्वारा v+i+r+a+t+a होगा।

वर्णात्मक लिपि

लिपि-विज्ञानियों के अनुसार लिपि के विकास में सबसे ऊँचा स्थान वर्णों का है। वास्तव में प्रत्येक वर्ण ध्वनि का प्रतीक होता है। वैदिक भाषा में कुल ५२ प्रतीक अथवा वर्ण हैं। इसी प्रकार रोमन में कुल २६ वर्ण हैं। इन वर्णों को बच्चे अल्प प्रयास से ही सीख लेते हैं। इसकी तुलना में चीनी भाषा को सीखने के लिए कई सहस्र प्रतीकों को सीखना पड़ता है, जिसमें अत्यधिक समय लगता है। वर्णात्मक लिपि की सब से बड़ी विशेषता यह है कि किसी प्रकार की कठिनाई के बिना ही इसकी सहायता से अनेक भाषाएँ लिखी जा सकती हैं। उदाहरणार्थ आज नागरी लिपि में ही हिन्दी, मराठी, नेपाली, मैथिली तथा भोजपुरी आदि भाषाएँ एवं बोलियाँ लिखी जा रही हैं। इधर स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद निरन्तर इस बात का उद्योग किया जा रहा है कि भारत की अन्य भाषाएँ—बंगला, उड़िया, असमिया, गुजराती, तमिल, तेलगु, मलयालम, कन्नड़ आदि—भी नागरी लिपि में लिखी जायँ। इससे एक लाभ यह होगा कि लोग विविध लिपियों को सीखने की कठिनाई से मुक्त हो जायँगे।

यूरोप में तो, आज रोमन लिपि प्रायः सर्वमान्य हो रही है तथा अँग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन, इतालीय, स्पेनिश, तुर्की आदि भाषाएँ इसी में लिखी जाती हैं।

वर्णात्मक लिपि के आविष्कार से शिक्षा के प्रचार एवं प्रसार में अत्यधिक सहायता मिली है। इसकी सरलता का एक परिणाम यह हुआ है कि आज मुद्रण के अनेक यंत्र बन गए हैं, जिनसे तीव्रगति से साहित्य का उत्पादन एवं प्रकाशन हो रहा है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्राचीन भारत में प्रचलित लिपियाँ

प्राचीनकाल में, भारत में, ब्राह्मी, खरोष्ठी तथा सिन्धु घाटी की लिपियाँ प्रचलित थीं। इनमें से सिन्धु घाटी लिपि का पता तो मोहन-जो-दड़ो तथा हड़प्पा की खुदाई के बाद (सन् १९२२-२७) में लगा किन्तु ब्राह्मी तथा खरोष्ठी का पता विद्वानों को पहले से ही था। भारतीय एवं चीनी परम्पराओं के अनुसार तो इन दोनों लिपियों की उत्पत्ति भारत में ही हुई थी। चूँकि ब्राह्मी के प्राचीनतम लेख ५०० ई० पू० के पहले के नहीं मिलते अतएव इसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक अनुमान किए गए। कई विद्वानों के अनुसार ब्राह्मी की उत्पत्ति भारत में ही हुई थी किन्तु अनेक पश्चिमी विद्वान् इस मत से सहमत नहीं हैं। इन विद्वानों के मतानुसार ब्राह्मी की उत्पत्ति में किसी-न-किसी विदेशी लिपि का अवश्य हाथ था। खरोष्ठी के सम्बन्ध में तो प्रायः अधिक विद्वानों का यह निश्चित मत है कि यह विदेशी लिपि थी तथा व्यापारिक सम्बन्ध के कारण पश्चिमी एशिया से भारत में इसका आगमन हुआ था। सिन्धु घाटी की लिपि अभी तक पढ़ी नहीं जा सकी है तथा इसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। नीचे इन तीनों लिपियों—सिन्धु घाटी की लिपि, खरोष्ठी तथा ब्राह्मी लिपि—के सम्बन्ध में क्रमशः विचार किया जायेगा।

सिन्धु-घाटी की सभ्यता तथा लिपि

आज से कुछ वर्ष पूर्व इतिहास के पंडितों का विचार था कि भारतीय सभ्यता का आरम्भ, यहाँ आर्यों के आगमन के बाद, ऋग्वेद के रचना-काल से हुआ किन्तु जब सिन्धु-घाटी की सभ्यता का पता चला तो विद्वानों को अपने विचार बदलने पड़े। अब इतिहास के विद्वानों का यह मत है कि आर्यों के भारत-प्रवेश के पहले लगभग ई० पू० ३५०० में, सिन्धु घाटी के निवासी सभ्यता के उच्च शिखर पर पहुँच चुके थे। इसका प्रमाण मोहन-जो-दड़ो तथा हड़प्पा की खुदाई में उपलब्ध सामग्री से सहज ही में मिल जाता है। हड़प्पा पंजाब के मांटगोमरी जिले में है तथा मोहन-जो-दड़ो, सिन्धु के निचले भाग के किनारे, सिन्ध प्रदेश के लरकाना जिले में है। विभाजन के पश्चात् अब ये स्थान पाकिस्तान में चले गए हैं। हड़प्पा की सर्वप्रथम खोज, मैसन ने सन् १८२० में की थी। सन् १८५३ में कनिंघम ने इस स्थान का अध्ययन किया और सन् १८७५ में यहाँ से उपलब्ध कतिपय सीलों का प्रकाशन हुआ। बाद में, यहाँ सर जॉन मार्शल के तत्त्वावधान में, सन् १९२१ की जनवरी में, रायबहादुर दयाराम साहनी ने खुदाई प्रारम्भ की तथा सन् १९२६ से सन् १९३४ तक श्री मधुस्वरूप वत्स के तत्त्वावधान में महत्त्वपूर्ण खुदाई हुई।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मार्शल ने श्री एस० लैंग्डन, एस० स्मिथ तथा सी० जे० गैड की सहायता से सन् १९३१ में, मोहन-जो-दड़ो तथा सिन्धुघाटी सभ्यता के सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित किया। उधर सन् १९३७-३८ में श्री ई० जे० एच० मैकी ने सन् १९२७ से १९३१ के बीच की खुदाई का परिणाम प्रकाशित किया। इसी प्रकार यहाँ की विचित्र लिपि के सम्बन्ध में श्री जी० आर० हंटर ने अपना विचार व्यक्त किया।

सिन्धु-घाटी की लिपि

सिन्धु-घाटी की महत्त्वपूर्ण सामग्री में चित्रलिपि से संयुक्त अनेक मुद्राएँ मिली हैं, जो प्रागैतिहासिक एलामीय एवं सुमेरीय मुद्राओं के अनुरूप हैं। इन पर अंकित वृषभ, महिष तथा बारहसिंघा जैसे जानवरों के सुन्दर चित्रों से इन लोगों की चित्रांकन की कला में दक्षता का परिचय मिलता है। इन मुद्राओं पर अंकित लिपि अभी तक विद्वानों के लिए एक पहेली है। सुमेरीय सभ्यता तथा लिपि के विशेषज्ञ लैंग्डन, स्मिथ तथा गैड आदि विद्वानों ने इसके पढ़ने में पर्याप्त समय लगाया है, किन्तु अभी तक उन्हें सफलता नहीं मिल सकी है। गैड तथा स्मिथ के अनुसार यहाँ की लिपि के प्रतीकों की संख्या ३९६ है, किन्तु लैंग्डन तथा हंटर के अनुसार यह संख्या २८८ तथा २५३ है। स्मिथ ने इन प्रतीकों को तीन वर्गों में विभाजित किया है। ये हैं आदि के प्रतीक, अंत के प्रतीक तथा संख्या-सम्बन्धी प्रतीक।

लगभग ३०० प्रतीकों-सहित सिन्धु-घाटी की लिपि न तो वर्णात्मक प्रतीत होती है और न अक्षरात्मक ही; यह विशुद्ध भावात्मक लिपि भी नहीं है क्योंकि इसमें प्रतीकों की संख्या अत्यल्प है। ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ अंशों में यह भावात्मक तथा कुछ अंशों में यह ध्वन्यात्मक (सम्भवतः अक्षरात्मक) है और इसमें निर्णायक चिह्न भी हैं। चूँकि इस लिपि में लिखित सभी प्रत्न लेख सीलों पर ही उपलब्ध हुए हैं, अतएव बहुत सम्भव है कि ये व्यक्तियों के नाम हों।

हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी के डॉ० प्राणनाथ विद्यालंकार ने आज से कतिपय वर्ष पूर्व, एलामीय, क्रीटीय तथा सिन्धु-घाटी लिपियों का तुलनात्मक अध्ययन प्रारम्भ किया था। आप ने इस लिपि के सम्बन्ध में अत्यन्त निपुणता से अपनी निर्देशिका (Syllabury) भी तैयार की थी। डॉ० प्राणनाथ के अनुसार सिन्धु-घाटी की लिपि का सम्बन्ध प्राचीन वैदिक संस्कृत से है। किन्तु यह मत अन्य विद्वानों को मान्य नहीं है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सिन्धु-घाटी-लिपि की उत्पत्ति

श्री हेरॉस के अनुसार सिन्धु-घाटी सभ्यता के जनक द्रविड़ थे। हेरॉस ने मोहन-जो-दड़ो के लेखों को बाएँ से दाहिनी ओर पढ़ा है तथा तमिल भाषा में उनका लिप्यन्तर किया है। इस सम्बन्ध में सब से बड़ी कठिनाई यह है कि चार सहस्र वर्ष ईसा पूर्व तमिल का स्वरूप क्या था, इसकी आज कल्पना भी कठिन है। यही कारण है कि इस सम्बन्ध में हेरॉस का सिद्धान्त मान्य नहीं हो सकता। कुछ विद्वानों के अनुसार सिन्धुघाटी-लिपि की उत्पत्ति उस प्राचीन लिपि से हुई है जिससे वाणमुख तथा एलामीय लिपियाँ उत्पन्न हुई थीं। जो हो, इस सम्बन्ध में निश्चयात्मक रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

खरोष्ठी-लिपि

यह अन्यत्र कहा जा चुका है कि ब्राह्मी के साथ ही साथ भारत में एक अन्य लिपि भी प्रचलित थी, जो खरोष्ठी कहलाती थी। प्रसार की दृष्टि से ब्राह्मी तथा खरोष्ठी में मुख्य अन्तर यह था कि ब्राह्मी जहाँ निखिल भारतीय लिपि थी, वहाँ खरोष्ठी का प्रचार केवल पश्चिमोत्तर भारत में ही था। यद्यपि १७५ ई० पू० से १०० ई० के बीच के सिक्कों पर खरोष्ठी के बहुत नमूने मिले हैं तथापि जब से शाहबाज गढ़ी के पड़ोस में प्रस्तर पर लिखित अशोक के शिला-लेख का अनुवाद खरोष्ठी में उपलब्ध हुआ, तब से इस लिपि का महत्व बढ़ गया। इसके बाद सर आरेल स्टाइन के प्रयत्नों के परिणाम-स्वरूप 'निय' तथा चीनी तुर्किस्तान में खरोष्ठी में लिखित महत्वपूर्ण प्रभूत सामग्री प्राप्त हुई।

सामी लिपि की भाँति ही खरोष्ठी लिपि भी दोषपूर्ण है। इसमें स्वरों की अव्यवस्था तथा दीर्घस्वरों का अभाव है। इसमें स्वर व्यंजनों ही पर आश्रित रहते हैं तथा ये स्वर भी ह्रस्व ही हैं।

खरोष्ठी के बैक्ट्रीय, इण्डो-बैक्ट्रीय, आर्य, बैक्ट्रो-पालि, उत्तरी पश्चिमी भारतीय, काबुलीय आदि कई अन्य नाम भी मिलते हैं, किन्तु इनमें सर्वाधिक प्रसिद्ध खरोष्ठी ही है।

खरोष्ठी नामकरण के कारण

इसके नामकरण के कारणों के सम्बन्ध में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। नीचे इस सम्बन्ध में संक्षेप में विचार किया जाता है —

१. इस लिपि का आविष्कर्ता खरोष्ठ नामक कोई व्यक्ति था। खरोष्ठ शब्द का अर्थ गधे का होंठ है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

२. 'यवन' तथा 'तुखार' शब्दों की भाँति खरोष्ठ भी जातिवाचक शब्द है। खरोष्ठ जाति के लोग असभ्य तथा बर्बर थे और उत्तरी-पश्चिमी भारत के निवासी थे।

३. खरोष्ठी शब्द मध्य-एशिया स्थित काशगर का ही संस्कृत प्रतिरूप है।

४. खरोष्ठी शब्द ईरानीय खर-पोस्त शब्द का भारतीय रूप है। सम्भवतः गर्दभ चर्म पर लिखने में इस लिपि का अधिक प्रयोग होता था।

५. हिब्रू में 'खरोशेथ' शब्द का अर्थ लिखावट है। ऐसा प्रतीत होता है कि इसी से प्राकृत में पहले 'खरोट्ट' एवं 'खरोट्ठी' शब्द बने और बाद में इसे संस्कृत रूप देकर 'खरोष्ठी" बनाया गया।

चीनी-परम्परा के अनुसार इस लिपि का नामकरण इसके प्रणेता खरोष्ठ नामक व्यक्ति के नाम पर ही हुआ। इस परम्परा के अतिरिक्त इस सम्बन्ध में अन्य तथ्यों का अभाव है। डॉ० राजबली पाण्डेय के अनुसार गधे के चलते मुँह के समान अनियमित एवं अव्यवस्थित होने के कारण इस लिपि का नाम खरोष्ठी पड़ा होगा। किन्तु 'खरोशेथ' से इसकी व्युत्पत्ति अधिक सम्भव जान पड़ती है।

उत्पत्ति

खरोष्ठी की उत्पत्ति विवादास्पद है। बूलर के अनुसार इसकी उत्पत्ति आर्माइक लिपि से हुई है। डेविड डिरिंगर इस मत का समर्थन करते हुए अपनी पुस्तक 'अल्फाबेट' (पृ० ३०२) में लिखते हैं—"यह बात प्रायः मान ली गई है कि खरोष्ठी की उत्पत्ति आर्माइक लिपि से हुई है। इस बात के दो महत्त्वपूर्ण आधार हैं —(१) इन दोनों के कई चिह्नों एवं ध्वनियों में समानता है। (२) दोनों लिपियाँ दाहिने से बाएँ लिखी जाती हैं। तक्षशिला में तीसरी शती ईस्वी पूर्व का जो शिलालेख आर्माइक में उपलब्ध हुआ है, उससे भारत के साथ आर्माइक लोगों का सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है। उत्तरी-पश्चिमी भारत में खरोष्ठी लिपि का उद्भव ५०० ई० पू० में हुआ होगा। इस समय यहाँ फारस के लोगों का राज्य था और आर्माइक भाषा तथा लिपि के प्रचार के लिए अनुकूल समय था। ऐसा प्रतीत होता है कि खरोष्ठी के उद्भव में ब्राह्मी का भी कुछ प्रभाव था। यह प्रभाव निम्नलिखित बातों में विशेष रूप से दृष्टिगोचर होता है—

१. इसमें व्यञ्जन के साथ-साथ स्वरवर्ण भी वृत्त अथवा पड़ी रेखा के रूप में आते हैं जिससे यह लिपि अक्षरात्मक बन गई है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

२. आर्माइक लिपि में घ्, ध् तथा भ् वर्णों का अभाव है, किन्तु खरोष्ठी में ये उपलब्ध हैं।

३. खरोष्ठी के दाएँ से बाएँ लिखने की प्रणाली पर भी ब्राह्मी लिखावट का प्रभाव है।

आलोचना

इसमें सन्देह नहीं कि लिखावट तथा ऊपरी रूपरेखा आदि के सम्बन्ध में खरोष्ठी तथा ब्राह्मी में कुछ सादृश्य अवश्य है, किन्तु यह सादृश्य एक प्रकार से सीमित ही है। बूलर ने खरोष्ठी के लिपि-चिह्नों की आर्माइक से उत्पत्ति दिखलाते हुए अत्यधिक कष्टकल्पना से काम लिया है। सच बात तो यह है कि संसार की लिपियों के सभी वर्ण रेखाओं, अर्द्धवृत्तों एवं वृत्तों आदि से ही सम्पन्न होते हैं और इनमें आवश्यक परिवर्तन करके किसी भी लिपि के वर्णों का उद्भव अन्य लिपि से सिद्ध किया जा सकता है। बूलर के सिद्धान्त की निस्सारता उस समय और भी स्पष्ट हो जाती है, जब वे ब्राह्मी की उत्पत्ति आठवीं-दसवीं शती ईसा पूर्व की आर्माइक लिपि से और खरोष्ठी का उद्भव पाँचवीं शती ईसा पूर्व की आर्माइक लिपि से सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं। लिखावट की समानता के आधार पर भी खरोष्ठी की उत्पत्ति आर्माइक से बतलाना ठीक न होगा। भारत-जैसे विशाल देश में दो विभिन्न प्रकार की—एक बाएँ से दाएँ तथा दूसरी दाएँ से बाएँ लिखी जानेवाली—लिपियों का होना असम्भव नहीं है। खरोष्ठी में दीर्घ स्वरों के अभाव का यह भी कारण हो सकता है कि प्राकृत के लिखने के लिए ही इसका प्रयोग हुआ है।

जहाँ तक ५०० ई० पू० में उत्तरी-पश्चिमी भारत में फारसवालों के शासन का प्रश्न है, इस सम्बन्ध का न तो खरोष्ठी में कोई शिलालेख उपलब्ध हुआ है और न आर्माइक में ही। इससे तो यही प्रतीत होता है कि प्रत्यक्षरूप से इस प्रदेश पर फारसवालों का कभी शासन था ही नहीं।

ऊपर की आलोचना से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि आर्माइक से खरोष्ठी लिपि की उत्पत्ति सिद्ध करना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। जैसा कि डिरिंगर का मत है, इस लिपि पर ब्राह्मी का प्रभाव प्रत्यक्ष है। तब प्रश्न उठता है कि खरोष्ठी का उद्भव कैसे हुआ ?

भारतीय उत्पत्ति-सम्बन्धी सिद्धान्त

पश्चिमी पण्डितों के तर्क में अधिक तत्त्व न देखकर इधर भारतीय विद्वान् खरोष्ठी का उद्भव भारत में ही मानने लगे हैं। इस सम्बन्ध में सब से पहली

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विचारणीय बात खरोष्ठी के उद्भव और प्रसार का क्षेत्र है। खरोष्ठी में लिखित अशोक का प्राचीनतम शिलालेख ३०० ई० पूर्व का है। बाद के अन्य शिलालेख बलूचिस्तान, अफगानिस्तान तथा मध्य-एशिया से प्राप्त हुए हैं। ये शिलालेख उन भारतीयों के द्वारा लिखे गए हैं, जो धर्म-प्रचारार्थ अथवा अन्य कार्यों के सम्बन्ध में इधर गए थे। दूसरी बात इस सम्बन्ध में यह भी विचारणीय है कि भारत के बाहर भी इस लिपि का प्रयोग केवल भारतीय भाषाओं के लिखने के लिए ही किया गया है। दाएँ से बाएँ लिखे जाने पर भी इसकी रूपरेखा भारतीय ही है। इसमें अनुस्वार का भी प्रयोग मिलता है तथा ब्राह्मी की भाँति ही बहुत अंशों में यह अक्षरात्मक लिपि है।

ऊपर की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए ऐसा लगता है कि इस लिपि का उद्भव उत्तरी-पश्चिमी भारत में ही हुआ था। चीनी परम्परा के अनुसार तो इसका प्रणेता खरोष्ठ नामक भारतीय था। जब उत्तरी-पश्चिमी भारत पर मौर्यों का आधिपत्य हुआ तो उस प्रदेश के शासन के लिए उन्होंने खरोष्ठी लिपि अपनाई। इसके बाद बैक्ट्रीय, पार्थीय शकों तथा कुषाणों ने भी भारतीय भाषाओं के लिए ग्रीक के साथ खरोष्ठी लिपि का व्यवहार किया। बौद्धधर्म के प्रसार के साथ-साथ यह लिपि भारत के बाहर के उपनिवेशों में भी जा पहुँची। जब गुप्त-साम्राज्य के अभ्युदय के साथ भारत राष्ट्रीय एकता के सूत्र में आबद्ध होने लगा तो धीरे-धीरे खरोष्ठी का स्थान ब्राह्मी लिपि ने ले लिया। इस प्रकार खरोष्ठी का उद्भव एवं पराभव भारत में ही हुआ।

ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति

ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में लिपि-विशेषज्ञों में बड़ा मतभेद है। मोटे तौर पर विद्वानों की विचारधारा को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। इनमें से पहली श्रेणी के अन्तर्गत वे विद्वान् हैं, जो ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति भारत में ही मानते हैं। दूसरी श्रेणी में उन विद्वानों की गणना है, जो इस लिपि का सम्बन्ध किसी न किसी विदेशी लिपि से जोड़ते हैं। नीचे इन विद्वानों का मत संक्षेप में दिया जाता है।

ब्राह्मी स्वदेशी लिपि है

(१) द्राविड़ीय उत्पत्ति—एडवर्ड टॉमस तथा अन्य विद्वानों के अनुसार ब्राह्मी लिपि के मूल आविष्कर्ता द्रविड़ थे। आर्यों ने इन्हीं से यह लिपि सीखी। इस मान्यता की पृष्ठभूमि यह है कि आर्यों के आगमन के पूर्व इस

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

देश में सर्वत्र द्रविड़ निवास करते थे । द्रविड़-सभ्यता आर्य-सभ्यता की अपेक्षा उच्चस्तर पर थी, अतएव सर्वप्रथम उन्होंने ही लिपि का आविष्कार किया। इस मान्यता के विरुद्ध सब से बड़ी बात यह है कि लिपि के प्राचीनतम नमूने उत्तरी भारत से प्राप्त हुए हैं, जो आर्यों का निवासस्थान था। इस सम्बन्ध में दूसरी बात यह भी उल्लेखनीय है कि द्रविड़ भाषाओं में, सब से प्राचीन तमिल में वर्णों के विभिन्न वर्गों के केवल प्रथम और पंचम वर्ग ही उच्चरित होते हैं। इसके विपरीत ब्राह्मी में प्रत्येक वर्ग के पाँचों वर्ण मिलते हैं। इस प्रकार तमिल जैसी अपूर्ण लिपि से ब्राह्मी जैसी पूर्ण लिपि का आविर्भाव सम्भव नहीं प्रतीत होता ।

(२) आर्य अथवा वैदिक उत्पत्ति

कनिंघम, डाउसन, लैसेन, ओझा तथा कई भारतीय विद्वानों के मतानुसार आदि वैदिक पुरोहितों ने ब्राह्मी लिपि को विकसित किया था। योरोपीय विद्वानों के अनुसार तो प्राचीन भारतीय चित्रलिपि से ही यह विकास सम्पन्न हुआ था। वास्तव में यह मत समीचीन है । आगे इस सम्बन्ध में पूर्ण रूप से विचार किया जाएगा ।

बूलर ने ऊपर के मत की आलोचना करते हुए लिखा है—"इन विद्वानों ने ब्राह्मी लिपि के पूर्व जो चित्रलिपि की कल्पना की है, वह निराधार है, क्योंकि अब तक इस प्रकार की चित्रलिपि कहीं नहीं मिली।" इधर जब से सिन्धु-घाटी लिपि का पता चला है, तब से बूलर की आलोचना का महत्व बहुत कुछ कम हो गया है, क्योंकि सिन्धु-घाटी की लिपि चित्रात्मक है। यह सच है कि सिन्धु-घाटी लिपि जब तक पढ़ी नहीं जाती तब तक ब्राह्मी के साथ उसका सम्बन्ध जोड़ना उचित नहीं है; किन्तु ब्राह्मी के कतिपय वर्णों की समता सिन्धु-घाटी लिपि से स्पष्ट है ।

जो लोग ब्राह्मी की उत्पत्ति भारत में ही मानते हैं, उन्हें चेतावनी देते हुए डेविड डिरिंगर ने निम्नलिखित तथ्यों की ओर उनका ध्यान आकर्षित किया है—

(१) किसी देश में एक के बाद दूसरी लिपि का अस्तित्व इस बात को नहीं सिद्ध करता कि बादवाली लिपि की उत्पत्ति पहलेवाली लिपि से ही हुई है। उदाहरणस्वरूप क्रीट में प्रचलित प्राचीन ग्रीक लिपि की उत्पत्ति प्राचीन क्रिटीय अथवा मिनोनीय लिपि से नहीं हुई थी ।

(२) सिन्धु-घाटी-लिपि तथा ब्राह्मी में समता होने पर भी जब तक यह सिद्ध न हो जाय कि दोनों के ध्वनि-चिह्नों में समानता है, तब तक यह कहना उचित न होगा कि ब्राह्मी की उत्पत्ति सिन्धु-घाटी-लिपि से हुई है ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(३) सिन्धु-घाटी लिपि सम्भवतः अक्षरात्मक-भावात्मक अथवा दोनों के बीच की अनुवर्ती लिपि है, किन्तु ब्राह्मी अर्द्धवर्णात्मक लिपि है। अभी तक लिपियों के सम्बन्ध में जो अनुसन्धान हुए हैं, उनमें कहीं भी ऐसा उदाहरण नहीं मिला है, जहाँ अन्य किसी लिपि के प्रभाव के बिना अक्षरात्मक-भावात्मक लिपि वर्णात्मक में परिवर्तित हो गई हो। इसके अतिरिक्त कोई भी लिपि-विशेषज्ञ यह स्पष्ट न कर सका कि सिन्धु-घाटी-लिपि से किस प्रकार अर्द्ध-वर्णात्मक ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति हुई।

(४) विशाल वैदिक साहित्य के अध्ययन से इस बात का पता नहीं चलता कि उस युग के आर्य लिखना भी जानते थे।

(५) प्राचीन काल में लिखने की कला के सम्बन्ध में, स्पष्ट रूप से बौद्ध-साहित्य में उल्लेख मिलता है।

(६) ब्राह्मी के जो अभिलेख प्राप्त हुए हैं, उनके आधार पर यही कहा जा सकता है कि ६०० ई० पू० में यह वर्तमान थी।

(७) इतिहास के पण्डितों के मतानुसार ई० पू० ८०० से ६०० तक का युग, भारत में व्यावसायिक उन्नति के लिए प्रसिद्ध है। इस युग में, दक्षिणी पश्चिमी सामुद्रिक मार्ग से, भारत तथा बेबिलोन के बीच व्यापार होता था। विद्वानों का विचार है कि इस व्यावसायिक अभिवृद्धि ने ही लिखने की कला को जन्म दिया होगा।

(८) आर्यों के प्राचीन इतिहास के सम्बन्ध में बहुत कम सामग्री उपलब्ध है। पं० बाल गंगाधर तिलक की यह धारणा कि वेद के कतिपय मंत्रों की रचना ७००० ई० पू० हुई थी तथा श्री शंकर बालकृष्ण दीक्षित का यह विचार कि कतिपय ब्राह्मण ग्रंथों की रचना ३८०० ई० पू० हुई थी, पुष्ट प्रमाणों पर आधारित न होने के कारण कल्पना मात्र हैं।

(९) ६०० ई० पू० उत्तरी भारत में ऐसी अद्‌भुत धार्मिक क्रान्ति हुई कि इसने भारतीय इतिहास को अत्यधिक प्रभावित किया। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि अक्षर-ज्ञान ने जैन तथा बौद्ध धर्मों के प्रचार एवं प्रसार में विशेष सहायता दी होगी। जहाँ तक बौद्धधर्म का सम्बन्ध है, यह निर्विवाद है कि इस युग में लिखने की कला का विशेषरूप से प्रचार हुआ।

(१०) मोटे ढंग से सभी प्रमाणों पर विचार करने से ऐसा प्रतीत होता है कि भारत में लिखने की कला का उद्‌भव ८०० ई० पू० से ६०० ई० पू० के बीच कभी हुआ होगा।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आलोचना

डॉ० डेविड डिरिंगर के ऊपर के तर्कों का खण्डन कई विद्वानों ने किया है। डॉ० राजबली पाण्डेय ने अपनी पुस्तक 'इंडियन पैलिओग्राफी' के पृ० ३८-३९ में इस सम्बन्ध में जो आलोचना की है, उसका सार यहाँ दिया जाता है।

डॉ० डिरिंगर के प्रथम तथा द्वितीय तर्कों की आलोचना में यह कहा जा सकता है कि जब तक स्पष्ट रूप से विरुद्ध प्रमाण न मिलें, तब तक एक देश में दो लिपियों के अस्तित्व से यह परिणाम निकालना अनुचित न होगा कि बाद की लिपि का उद्भव पहलेवाली लिपि से हुआ है। तीसरे तर्क के सम्बन्ध में निवेदन यह है कि जब तक सिन्धु-घाटी-लिपि पढ़ ली नहीं जाती, तब तक उसके सम्बन्ध में अन्तिम रूप में कुछ भी कहना उपयुक्त न होगा। चौथा तर्क पुष्ट प्रमाणों पर आधारित नहीं है। ज्ञानदात्री सरस्वती तथा उनके पति ब्रह्मा के रूपों की जो कल्पना की गई है, उनमें दोनों के हाथों में पुस्तक धारण करने की परम्परा है। पाँचवें तर्क के खण्डन में प्राचीन वैदिक तथा बौद्ध साहित्य में पर्याप्त सामग्री मिलती है। छठे तर्क के खंडन में कहा जा सकता है कि प्रस्तर आदि के जो शिलालेख प्राप्त हुए हैं, उनके अतिरिक्त भी प्रभूत सामग्री अन्य रूपों में होगी, जो अब विनष्ट हो चुकी है। जहाँ तक सातवें तर्क का सम्बन्ध है, केवल व्यावसायिक सम्बन्ध के आधार पर यह कथन युक्तियुक्त न होगा कि भारत ने किसी अन्य देश से ही लिखने की कला सीखी, इसके विपरीत भी हो सकता है। डॉ० डिरिंगर के आठवें तर्क का सार यह है कि भारतीय सभ्यता पश्चिमी एशिया की सभ्यता की अपेक्षा बाद की है। श्री तिलक तथा दीक्षित के सिद्धान्त, वैदिक सभ्यता की प्राचीनता के सम्बन्ध में काल्पनिक हो सकते हैं, किन्तु बूलर तथा विण्टरनिट्ज जैसे पश्चिमी विद्वानों तक ने वैदिक सभ्यता का प्रारम्भ ४००० ईसा पूर्व माना है। जहाँ तक नवें तर्क का सम्बन्ध है, इसमें सन्देह नहीं कि जैन तथा बौद्धों ने प्राकृत भाषा का प्रचार किया और इसके साथ ही साथ लिखने की कला का भी प्रसार हुआ, किन्तु दोनों धर्मों ने इस बात को स्वीकार किया है कि इनके पूर्व वैदिक युग में भी लिखने की प्रणाली प्रचलित थी। बुद्ध ने तो स्पष्टरूप से अपने दो शिष्यों को बुद्धवचन को 'छन्दस्' (वेद की भाषा) में न लिखने का आदेश दिया। दसवें तर्क के लिए पुष्ट प्रमाणों का अभाव है। इसमें इस बात की कल्पना कर ली गई है कि लिपि के अन्वेषक आर्य न थे।

ऊपर की आलोचना से यह स्पष्ट हो जाता है कि डॉ० डिरिंगर के तर्कों में कोई ऐसी बात नहीं है, जिसके आधार पर यह न कहा जा सके कि ब्राह्मी की उत्पत्ति भारत में ही किसी प्राचीन लिपि से नहीं हुई थी।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ब्राह्मी की उत्पत्ति किसी न किसी विदेशी लिपि से हुई है

जो लोग ब्राह्मी की उत्पत्ति किसी न किसी विदेशी लिपि से मानते हैं, उनके विचारों को दो समूहों में रखा जा सकता है। प्रथम समूह में वे लोग हैं जो ब्राह्मी की उत्पत्ति ग्रीक लिपि से मानते हैं, किन्तु दूसरे वे लोग हैं जो इसकी उत्पत्ति सामी (सेमेटिक लिपि) से मानते हैं।

ग्रीक से ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति का सिद्धान्त

प्राचीन योरोपीय विद्वानों की यह एक विशेषता रही है कि किसी भी भारतीय श्रेष्ठ वस्तु का उद्‌भव वे ग्रीक से मानते रहे हैं। ओ० मूलर, जेम्स प्रिंसेप, सेनार्ट, जोसेफ हाल्वे तथा विल्सन आदि विद्वानों के अनुसार ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति ग्रीक से हुई। बूलर ने इस सिद्धान्त को सर्वथा अमान्य ठहराया। बात यह है कि ब्राह्मी के सम्वन्ध में जो प्रमाण उपलब्ध हैं, उनसे यह स्पष्ट है कि मौर्ययुग के कई शताब्दी-पूर्व से ब्राह्मी लिपि प्रचलित थी, अतएव ग्रीक लिपि से इसका सम्वन्ध जोड़ना युक्तियुक्त नहीं है।

सामी से ब्राह्मी की उत्पत्ति का सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के माननेवाले अनेक विद्वान् हैं, किन्तु सामी लिपि की किस शाखा से ब्राह्मी की उत्पत्ति हुई है, इस सम्वन्ध में पर्याप्त मतभेद है। सुविधा की दृष्टि से इन विद्वानों के विचार निम्नलिखित वर्गों के अन्तर्गत संक्षेप में दिये जाते हैं —

(क) फोनेशीय उत्पत्ति—वेवर, वेन्फे, जेन्सेन तथा बूलर आदि विद्वानों ने ब्राह्मी की उत्पत्ति फोनेशीय लिपि से मानी है। इस सिद्धान्त के समर्थन में मुख्य तत्त्व यह है कि लगभग एक तिहाई फोनेशीय वर्णों की समानता उसी ध्वनि के प्राचीनतम ब्राह्मी प्रतीकों से मिलती है। इसके अतिरिक्त एक तिहाई ब्राह्मी और फोनेशीय वर्णों में वहुत कुछ समानता है और अवशिष्ट वर्णों की समानता भी जैसे-तैसे सिद्ध हो जाती है। इस सिद्धान्त के स्वीकार करने में सबसे बड़ी कठिनाई यह मानी जाती थी कि जिस युग में ब्राह्मी लिपि उद्‌भूत हुई थी, उस युग में फोनेशिया तथा भारत का यातायात सम्बन्ध न था। इस सम्वन्ध में अपना विचार प्रकट करते हुए डॉ० राजवली पाण्डेय इंडियन पैलिओ-ग्राफी के पृष्ठ ४०-४१ में लिखते हैं—"मैं यह नहीं मानता कि १५०० ई० पू० से ४०० ई० पू० में भारत तथा भूमध्यसागर के पूर्वी किनारे के वीच यातायात का सम्वन्ध नहीं था। इसमें भी सन्देह नहीं कि फोनेशीय तथा ब्राह्मी लिपि में समानता है। अव प्रश्न यह रह जाता है कि किस लिपि से कौन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लिपि उद्भूत हुई है। इस प्रश्न का सम्बन्ध फोनेशीय जाति की उत्पत्ति से भी है। ग्रीस के प्राचीन इतिहास के पंडितों के अनुसार फोनेशीय लोग पूरब की ओर से, समुद्र के मार्ग से, भूमध्य सागर के पूर्वी किनारे पर गए थे। ऋग्वेद के प्रमाण से प्रतीत होता है कि फोनेशीय लोग भारत के निवासी थे। फोनेशीय तथा पश्चिमी एशिया की सामी लिपियों में साम्य का अभाव भी यह इंगित करता है कि फोनेशीय लोग कहीं बाहर से आए थे। इससे इसी बात की सम्भावना अधिक प्रतीत होती है कि भारत से ही फोनेशीय लिपि भूमध्य सागर के तट पर गई थी।

(ख) दक्षिणी सामी लिपि से ब्राह्मी की उत्पत्ति का सिद्धान्त

टेलर, डिके तथा कैनन के अनुसार ब्राह्मी लिपि दक्षिणी सामी लिपि से उद्भूत हुई थी। इस मत को स्वीकार करना कठिन है। यद्यपि प्राचीन काल में भारत और अरब के सम्पर्क की सम्भावना है, किन्तु इस्लाम के अभ्युदय के पूर्व भारतीय संस्कृति पर अरबी संस्कृति का तनिक भी प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं होता। इसके अतिरिक्त ब्राह्मी तथा दक्षिणी सामी लिपि में किसी प्रकार का साम्य नहीं मिलता। इस प्रकार इन दोनों लिपियों में पारस्परिक सम्बन्ध की चर्चा ही हास्यास्पद है।

(ग) उत्तरी सामी लिपि से ब्राह्मी की उत्पत्ति का सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के सबसे बड़े पोषक डॉ० बूलर थे। दक्षिणी सामी लिपि से ब्राह्मी की उत्पत्ति-सम्बन्धी कठिनाइयों की ओर इंगित करते हुए डॉ० बूलर लिखते हैं—"जब हम उत्तरी सामी लिपि से ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विचार करते हैं तो ये कठिनाइयाँ सहज ही में दूर हो जाती हैं। दोनों की समता के उद्योग में वेबर को जो कठिनाइयाँ हुई थीं, वे बाद में प्राप्त-रूपों के मिलाने से दूर हो गईं और अब इस सिद्धान्त को मानने में कोई कठिनाई नहीं रह गई कि सामीय चिह्नों को किस प्रकार भारतीय प्रतीकों में परिवर्तित किया गया होगा।" उत्तरी सामी लिपि से ब्राह्मी की व्युत्पत्ति देते हुए बूलर ने ब्राह्मी लिपि की निम्नलिखित विशेषताओं की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है—

ब्राह्मी के वर्ण, जहाँ तक सम्भव है, सीधे हैं और ट, ठ तथा व को छोड़कर प्रायः सब की ऊँचाई भी समान है।

ब्राह्मी के अधिकांश वर्ण ऊपर से नीचे की ओर लम्बवत् हैं और उनके नीचे तथा ऊपर ही कतिपय जोड़ मिलते हैं, किन्तु किसी भी दशा में केवल ऊपर जोड़ नहीं मिलते।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ऊपर की विशेषताओं की व्याख्या कर बूलर ने उत्तरी सामी लिपि से ब्राह्मी की उत्पत्ति पर विचार करते हुए उनकी आधारभूता हिन्दुओं की निम्नलिखित प्रवृत्तियों का उल्लेख किया है—

१. पाण्डित्य प्रदर्शन की प्रवृत्ति।

२. क्रमवद्ध रेखाओं के अनुकूल प्रतीक-निर्माण की प्रवृत्ति।

३. वर्णों के सिर पर किसी प्रकार के जोड़ अथवा भार देने की प्रवृत्ति की ओर से उदासीनता। बूलर के अनुसार इसका कारण यह प्रतीत होता है कि भारतीय अपने वर्णों को ऊपर से नीचे लम्बवत् आती हुई रेखा की सहायता से अधोभाग में लटकते हुए रूप में लिखते थे। इसमें व्यंजनों के सिर की पट रेखा स्वरों का प्रतिनिधित्व करती थी। वर्णों के सिर पर किसी प्रकार के जोड़ अथवा भार की उपेक्षा करने के कारण कई सामी वर्णों को, ऊपर के जोड़ से मुक्त करके, एक प्रकार से उन्हें उलट दिया गया। अन्त में बाएँ से दाएँ लिखने के कारण भी .सामी लिपि को ब्राह्मी में बदलते समय अनेक परिवर्तन आवश्यक हो गए।

ऊपर के तथ्यों पर विचार करने के बाद बूलर इस परिणाम पर पहुँचे कि ब्राह्मी के २२ वर्ण उत्तरी सामी लिपि से, कतिपय वर्ण प्राचीन फोनेशीय लिपि से, कुछ मेसा के शिलालेख से तथा ५ असीरिया के बाँटों पर लिखित अक्षरों से लिये गए। ब्राह्मी के शेष वर्ण भी, कतिपय परिवर्तन के साथ, बाहरी लिपि से ही लिये गए। बूलर ने अपनी पुस्तक में इन समस्त लिपियों की तुलनात्मक तालिका उपस्थित करके ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति पर प्रकाश डाला।

उत्तरी सामी लिपि से ब्राह्मी की उत्पत्ति सम्बन्धी सिद्धान्त के दूसरे बड़े समर्थक डॉ० डेविड डिरिंगर हैं। इस सम्बन्ध में विचार करते हुए आप अपनी पुस्तक 'अल्फाबेट' के पृष्ठ ३३६-३३७, में लिखते हैं—"सभी उपलब्ध ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक तथ्य इस ओर इंगित कर रहे हैं कि मूलतः ब्राह्मी लिपि आर्माइक (उत्तरी सामी लिपि) से उद्भूत हुई है।" ब्राह्मी तथा सामी लिपि की समता भी यही सिद्ध करती है। मेरे विचार में इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि भारतीय व्यापारियों का सर्वप्रथम आर्मीय सौदागरों से ही सम्पर्क स्थापित हुआ था। आगे चलकर डॉ० डिरिंगर पुनः लिखते हैं—

"आज से साठ वर्ष पूर्व, रायल एशियाटिक सोसाइटी के मंत्री, श्री आर० एन० कस्ट ने सोसाइटी के जर्नल (भाग १६, सन् १८८४, पृष्ठ ३२५-३५९) में 'भारतीय लिपि का उद्भव' (ओरिजिन ऑव द इंडियन अल्फाबेट) शीर्षक लेख प्रकाशित किया था। तब से अनेक नवीन खोजें हुई तथा ब्राह्मी लिपि के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उद्भव के सम्बन्ध में सैकड़ों पुस्तकों एवं लेखों में विचार किया गया, किन्तु आज भी मैं उनके प्रथम दो निर्णयों से बहुत कुछ सहमत हूँ, —

(१) किसी प्रकार भी भारतीय लिपि इस देश के लोगों का स्वतंत्र अनुसन्धान नहीं है। हाँ, यह दूसरी बात है कि अन्यत्र से उधार ली हुई लिपि में भारतीयों ने अद्भुत परिवर्तन एवं परिवर्द्धन किया।

(२) इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि स्वर तथा व्यञ्जन ध्वनियों की प्रतीकस्वरूपा विशुद्ध वर्णात्मक (ब्राह्मी) लिपि पश्चिमी एशिया की लिपि से ही उद्भूत हुई।

(यहाँ यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि भारतीय लिपि अर्द्ध-वर्णात्मक लिपि है, विशुद्ध वर्णात्मक लिपि नहीं।)

अपने सिद्धान्त के समर्थन में डॉ० डिरिंगर ने निम्नलिखित तर्क उपस्थित किए हैं—

(१) हमें यह कल्पना नहीं कर लेनी चाहिए कि ब्राह्मी सहज रूप में आर्मीय लिपि से प्रसूत हुई है। यद्यपि ब्राह्मी के कई वर्णों के रूपों पर सामी लिपि का प्रभाव है और मूलतः इसकी दाहिने से बायें लिखने की प्रणाली भी सामी ही है, तथापि मुख्य रूप में ब्राह्मी के सम्बन्ध में जो बात स्वीकृत की गई थी, वह सम्भवतः इसके वर्णात्मक रूप में लिखने की पद्धति थी।

(२) कुछ विद्वानों का यह मत है कि चूँकि भारतीय लिपि का रूप अक्षरात्मक है, अतएव यह वर्णात्मक लिपि से नहीं प्रसूत हुई होगी, क्योंकि प्रगति के क्षेत्र में वर्णात्मक लिपि का स्थान अक्षरात्मक की अपेक्षा ऊँचा है। इस सम्बन्ध में यही कहा जा सकता है कि ये विद्वान् यह बात प्रायः भूल जाते हैं कि सामी लिपि में स्वरों का अभाव रहता है और जहाँ लिखावट में सामी लिपि में स्वर छोड़ा जा सकता है, वहाँ भारोपीय भाषाओं में इनका उपयोग आवश्यक होता है। ग्रीक लोगों ने इस समस्या का समाधान सफलतापूर्वक किया था, किन्तु भारतीय इसमें सफल न हो सके। सम्भवतः इसका कारण यह था कि ब्राह्मी के अन्वेषक वर्णात्मक लिपि के मूल तत्त्व को समझ न पाए। यह भी सम्भव है कि उन्हें सामी लिपि अर्द्ध अक्षरात्मक प्रतीत हुई हो, जैसा कि वह भारोपीय भाषा-भाषियों को प्रतीत होती है।

उत्तरी सामी लिपि से ब्राह्मी की उत्पत्ति सम्बन्धी सिद्धान्त की आलोचना के पूर्व, सर्वप्रथम इन दोनों लिपियों की तुलनात्मक विशेषता के सम्बन्ध में विचार करना आवश्यक है।

सामी लिपि से ब्राह्मी की उत्पत्ति के सम्बन्ध में निम्नलिखित तर्क हैं—

(१) ये दोनों लिपियाँ एक दूसरे से मिलती हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(२) प्राचीन भारतीय लिपि चित्रात्मक थी, किन्तु किसी भी वर्णात्मक लिपि की उत्पत्ति चित्रात्मक लिपि से नहीं होती। उवर ज्ञात लिपियों में प्राचीनतम सामी ही है, अतएव अर्द्ध-अक्षरात्मक लिपि ब्राह्मी की उत्पत्ति सामी से ही सम्भव है।

(३) मूलतः, ब्राह्मी लिपि भी सामी की भाँति दाहिने से बाएँ लिखी जाती थी।

(४) ५०० ई० पू० के लिखावट के नमूने का भारत में अभाव है।

आलोचना

ऊपर के तर्कों पर एक-एक करके विचार करना आवश्यक है। इसमें सन्देह नहीं कि उत्तरी पश्चिमी एशिया की फोनेशीय तथा आर्मीय लिपियों का ब्राह्मी से सादृश्य है, किन्तु केवल इसी के आधार पर यह सिद्ध नहीं होता कि ब्राह्मी की उत्पत्ति इन सामी लिपियों से हुई है। वूलर ने तो नितान्त विचित्र ढंग से ब्राह्मी की उत्पत्ति सामी लिपि से सिद्ध करने का यत्न किया है।

डॉ० राजबली पाण्डेय के अनुसार फोनेशीय तथा ब्राह्मी लिपि में जो साम्य है, उसका कारण यह है कि फोनेशीय लोगों का मूल निवासस्थान भारत ही था और ये लोग यहीं की लिपि अपने साथ ले गए थे। वहाँ सामी लोगों के बीच रहने के कारण इस लिपि में पर्याप्त अन्तर पड़ गया, किन्तु उनकी लिपि ने भी उत्तरी सामी अथवा आर्माइक लिपि को प्रभावित किया। वास्तव में इस आर्माइक लिपि ने दक्षिणी सामी तथा मिस्र की लिपियों को छोड़कर पश्चिमी एशिया की अन्य लिपियों को प्रभावित किया। इस प्रकार ब्राह्मी की उत्पत्ति फोनेशीय तथा आर्माइक लिपियों से नहीं हुई, अपितु इन दोनों लिपियों की उत्पत्ति प्राचीन ब्राह्मी लिपि से हुई।

जहाँ तक डिरिंगर के दूसरे तर्क का सम्बन्ध है, यह युक्ति-युक्त नहीं है कि चित्रलिपि से वर्णात्मक लिपि का विकास नहीं होता। प्राचीन काल में अनेक देशों में चित्रात्मक लिपि ही प्रचलित थी। यह दूसरी बात है कि चित्रलिपि के किन अन्वेषकों ने अपनी लिपियों को विकसित करके उन्हें वर्णात्मक रूप प्रदान किया। इस सम्बन्ध में एक बात यह भी उल्लेखनीय है कि भारत की प्राचीनतम लिपि सिन्धु-घाटी-लिपि है, किन्तु यह चित्रलिपि नहीं है। यह ध्वन्यात्मक एवं अक्षरात्मक लिपि प्रतीत होती है। अतएव यह तर्क ठीक नहीं है कि ब्राह्मी की उत्पत्ति सिन्धु-घाटी-लिपि से नहीं हो सकती।

डिरिंगर का तीसरा तर्क यह है कि मूलतः ब्राह्मी दाहिने से बाएँ लिखी जाती थी, अतएव इसकी उत्पत्ति सामी लिपि से हुई होगी। इस तर्क का आधार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भी सन्देहपूर्ण है तथा इस सम्बन्ध में जो सामग्री उपलब्ध है, वह भी पर्याप्त नहीं है। जब बूलर ने अपनी 'इंडियन पैलिओग्राफी' नामक पुस्तक लिखी थी तब दाहिने से बाएँ लिखित ब्राह्मी लिपि के निम्नलिखित नमूने प्राप्त थे—

(१) अशोक के अभिलेख के कुछ अक्षर।

(२) मध्यप्रदेश के सागर जिले के एरण नामक स्थान में कनिंघम द्वारा प्राप्त सिक्के का अभिलेख।

(३) मद्रास राज्य के यरगुडी नामक स्थान में प्राप्त अशोक के लघु शिलालेख की लिपि।

बूलर ने ऊपर के संख्या १ तथा २ नमूनों को अत्यधिक महत्त्व दिया, क्योंकि ये दोनों शिलालेख उनके सामी लिपि से ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति सम्बन्धी सिद्धान्त को सम्पुष्ट करनेवाले थे। किन्तु बूलर की यह खोज बहुत सबल नहीं है। सर्वप्रथम ऊपर के दोनों नमूने नितान्त लघु एवं संक्षिप्त हैं। इनके विपरीत बाएँ से दाएँ ओर लिखी हुई ब्राह्मी लिपि के प्रभूत उदाहरण उपलब्ध हैं। इस सम्बन्ध में एक अन्य बात यह भी विचारणीय है कि कभी-कभी साँचे बनानेवालों की भूल के कारण भी सिक्कों पर के लेख उलट जाते हैं। अतएव ऐसे लेखों के आधार पर कोई निश्चित परिणाम नहीं निकाला जा सकता। यही कारण है कि हुल्श तथा फ्लीट बूलर के मत को स्वीकार नहीं करते। जहाँ तक यरगुडी के अशोक के लघु लेख का प्रश्न है, यह विचित्र है। ऐसा प्रतीत होता है कि इसके अक्षरों के काटनेवाले ब्राह्मी लिपि के लेखन-सम्बन्धी कुछ नवीन प्रयोग में व्यस्त थे। इस लेख की पहली पंक्ति बाएँ से दाएँ तथा दूसरी पंक्ति दाएँ से बाएँ हलावर्त्त रूप में लिखी गई है। इससे यही प्रतीत होता है कि इस शिलालेख के लेखक एक नये ढंग से लिखने का प्रयोग कर रहे थे। अतएव केवल इस शिलालेख के आधार पर ही ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति सामी लिपि से मानना युक्तिसंगत न होगा। डिरिंगर का चौथा तर्क भी बहुत युक्तिसंगत नहीं है। चूँकि ३५०० ईसा पूर्व सिन्धु-घाटी-लिपि के बाद भारत में ५०० ई० पू० से लिपि के नमूने मिलने प्रारम्भ हुए हैं, अतएव इसके बीच के काल में लिपि के नमूने न मिलने से यह कैसे मान लिया जाय कि इस प्रकार के नमूने कहीं थे ही नहीं? इस बात की बहुत सम्भावना है कि भारत की आर्द्र जलवायु तथा नदियों की बाढ़ के कारण लिपि-सम्बन्धी बहुत से नमूने नष्ट हो गए होंगे। जहाँ तक साहित्यिक प्रमाण का प्रश्न है, भारतीय साहित्य में इस प्रकार के अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं, जिनसे यह स्पष्टतया सिद्ध हो जाता है कि यहाँ के लोग बौद्धयुग के बहुत पहले से ही लिखना जानते थे। इस बात को प्रकारान्तर से बूलर ने भी स्वीकार किया

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है। सिन्धु घाटी के दो ऐसे शिला-लेख मिले हैं, जिनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन युग में विनष्ट होनेवाली कोमल वस्तुओं पर भी लिखा जाता था। इस परिस्थिति में ब्राह्मी की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अन्वेषण करने के लिए किसी विदेशी लिपि की ओर जाना उचित नहीं प्रतीत होता।

अन्य किसी लिपि से ब्राह्मी की उत्पत्ति की खोज करने के पूर्व इसकी निम्नलिखित विशेषताओं पर ध्यान देना आवश्यक है—

(१) प्रायः सभी उच्चरित ध्वनियों के लिए ब्राह्मी में निश्चित चिह्न अथवा प्रतीक हैं।

(२) इसमें वर्णों का उच्चारण ठीक उसी रूप में होता है, जिस रूप में वे लिखे जाते हैं।

(३) इसमें स्वरों एवं व्यंजनों की संख्या पर्याप्त है।

(४) ह्रस्व एवं दीर्घ स्वरों के लिए इसमें भिन्न-भिन्न चिह्न हैं।

(५) इसमें अनुस्वार, अनुनासिक एवं विसर्ग के चिह्न भी हैं।

(६) उच्चारण-स्थान के अनुसार इसमें वर्णों का ध्वन्यात्मक वर्गीकरण है।

(७) इसमें स्वरों और व्यंजनों का संयोग मात्राओं द्वारा होता है।

ऊपर की विशेषताओं से सम्पन्न ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति सामी से सम्भव नहीं जान पड़ती, क्योंकि इन विशिष्टताओं का सामी लिपि में सर्वथा अभाव है। उत्तरी सामी लिपि में तो अठारह ध्वनियों के लिए बाईस ध्वनि-चिह्न हैं। इसमें वर्णों के रूप तथा उनके उच्चारण में भी एकता नहीं है। इसमें एक ध्वनि के लिए कई वर्ण हैं। इसमें न तो ह्रस्व तथा दीर्घ स्वरों के लिए ही कोई चिह्न है और न अनुस्वार एवं विसर्ग के लिए ही कोई प्रतीक है। इसमें स्वरों की संख्या भी कम है और व्यञ्जनों के साथ स्वरों का संयोग भी इस रूप में होता है कि उसे विभिन्न रूपों में पढ़ा जा सकता है। ऐसी अपूर्ण लिपि से ब्राह्मी जैसी पूर्ण लिपि का उद्‌भव नहीं हो सकता।

बूलर ने ब्राह्मी की ध्वन्यात्मक तथा व्याकरण सम्बन्धी श्रेष्ठता को मानते हुए यह स्वीकार किया है कि इसके निर्माता भारतीय ही थे। आप लिखते हैं— "फिर भी इसमें सन्देह नहीं कि ब्राह्मी के प्राचीनतम उपलब्ध रूप विद्वान् ब्राह्मणों के द्वारा निर्मित हुए।"

ब्राह्मी लिपि के स्वरों और व्यंजनों की पर्याप्त संख्या एवं उच्चारण-स्थान के अनुसार उसका विभिन्न वर्गों में वर्गीकरण यह स्पष्टरूप से प्रमाणित करता है कि इसके निर्माण में भाषाशास्त्र तथा विज्ञान में निष्णात ब्राह्मणों का हाथ था। इस लिपि की उद्‌भावना भी व्यावसायिक सुविधा के लिए नहीं हुई थी,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अपितु वैदिक साहित्य को लिपिबद्ध करने के लिए ही उसका निर्माण हुआ था। वैदिक साहित्य के अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इसके मंत्र-द्रष्टाओं को वर्ण एवं अक्षर का सूक्ष्म ज्ञान था। वैदिक मंत्रों में प्रयुक्त सात छन्द तो अत्याधिक प्रसिद्ध हैं। ये हैं—गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप, वृहति, पंक्ति, त्रिष्टुप एवं जगती। इन सातों छन्दों का सामान्य नाम अनुष्टुप ही है, किन्तु इनमें स्पष्टरूप से सूक्ष्म अन्तर है। छन्दों की रचना करते समय प्रत्येक पाद के वर्णों की गणना आवश्यक थी, अतएव वैदिक मंत्रों के प्रणेताओं को वर्णों एवं अक्षरों तथा स्वर-व्यंजनों और उसके सूक्ष्म भेदों का पूर्ण ज्ञान था।

प्रातिशाख्यों के अनुशीलन से भी यह बात ज्ञात होती है कि वैदिक युग के ब्राह्मणों को ध्वनि-उच्चारण सम्बन्धी सूक्ष्म क्रिया का ज्ञान था। इनके अनुसार इच्छा शक्ति से प्रेरित होकर जब नाभि प्रदेश से प्राणवायु उर्ध्वगामी होती है तब वह उरस्, कण्ठ, शिर, जिह्वामूल, तालु, दन्त, नासिका एवं ओष्ठ का स्पर्श करती है और ध्वनि उत्पन्न होती है। यह श्रोत्रग्राह्य ध्वनि ही वर्ण है। इसप्रकार वर्णों की पूर्ण एवं स्वतः स्थिति है तथा स्थान एवं प्रयत्न के अनुसार ये वैज्ञानिक रीति से विभक्त हैं। उच्चारण के समय इसकी चार अवस्थाएँ होती हैं और ये हैं परा, पश्यन्ति, मध्यमा एवं वैखरी। इन चारों अवस्थाओं में ध्वनि, क्रमशः सूक्ष्म से स्थूल होती जाती है। अन्तिम वैखरी अवस्था में ही ध्वनि श्रोत्र-ग्राह्य होती हैं। आधुनिक ध्वनि-विज्ञानी यहीं से ध्वनियों के अध्ययन का कार्य आरम्भ करते हैं।

सच तो यह है कि जब वैदिक युग में ब्राह्मणों को वैज्ञानिक वर्णमाला का ज्ञान हो गया था, तभी उन्होंने लिपि का भी प्रणयन किया था। वास्तव में वर्णों का प्रतीक ही लिपि है। पश्चिमी देशों में ये प्रतीक जीवन्त चक्षुग्राह्य वस्तुओं से लिये गए थे और बाद में ये अन्य लिपियों के सम्पर्क से ध्वन्यात्मक लिपि में परिवर्तित हुए थे, किन्तु यह स्थिति भारत में नहीं आई। यहाँ वर्णों की ध्वनि-ऊर्जा (Sound energy) ही वर्णों में परिवर्तित हो गई। इस तथ्य को श्री एच० के० भट्टाचार्य ने अपनी सन् १९५९ में, अँग्रेजी में प्रकाशित पुस्तक 'द लैंग्वेज ऐंड स्क्रिप्ट ऑव एन्शियण्ट इंडिया' के पृष्ठ ९७-११२ में स्पष्ट करने का यत्न किया है। श्री भट्टाचार्य के अनुसार ब्राह्मी लिपि के वर्णों की उच्चरित ध्वनियों एवं उनके रूपों में समवाय सम्बन्ध है। जैसा कि अन्यत्र कहा जा चुका है, इच्छा-शक्ति से ही इन वर्णों के उच्चारण का आरम्भ होता है। इसके उपरान्त उच्चारण में गति आती है जिसके परिणामस्वरूप मुख की आकृति एक विशेष रूप ग्रहण कर लेती है। श्री भट्टाचार्य के अनुसार इस आकृति के अनुरूप ही ब्राह्मी के वर्णों का आकार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

निर्मित हुआ है। आपने इस वात की व्याख्या प्रस्तुत की है कि ब्राह्मी के प्रत्येक वर्ण के प्रतीक उसके उच्चारण-काल की मुखाकृति के अनुरूप ही निर्मित हुए हैं।

सभी बातों पर विचार करने के उपरान्त यही निष्कर्ष निकलता है कि जिस प्रकार संस्कृत-व्याकरण प्राचीन युग के ब्राह्मण-ऋषियों की अद्भुत कृति है, उसी प्रकार वैज्ञानिक ब्राह्मी लिपि भी उन्हीं की उद्भावना है और उसकी उत्पत्ति सम्बन्धी पाश्चात्य विद्वानों की धारणा नितान्त काल्पनिक है।

ब्राह्मी लिपि का विकास एवं प्रसार

मौर्ययुग की ब्राह्मी लिपि के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस युग में ही यह लिखावट की कला में पूर्णता प्राप्त कर चुकी थी, क्योंकि इसके द्वारा ध्वनियों का विश्लेषण हो जाता है, किन्तु इस लिपि में लिखित प्राकृत शब्दों को देखने से ज्ञात होता है कि द्वित्व-व्यंजन वर्णों को लिखने में यह लिपि समर्थ न थी। उदाहरणार्थ 'वस्स' शब्द इस लिपि में 'वस' या 'वास' रूप में लिखा जाता था।

भारतीय संस्कृति के प्रतीकस्वरूप वस्तुतः ब्राह्मी लिपि ही भारत के विविध राज्यों एवं भारत के बाहर विदेशों में फैली। प्राचीन एवं बाद के मौर्य एवं शुंग युग की ब्राह्मी चौथी शताब्दी में गुप्त ब्राह्मी में परिणत हुई। यह गुप्त युग की ब्राह्मी ही भारतीय धर्म-प्रचारकों द्वारा मध्य एशिया पहुँची, जिसमें वहाँ की पुरानी खोतनी तथा ईरानी एवं तोखारी भाषाएँ लिखी गईं।

सिद्धमात्रिका लिपि

गुप्तयुग की पश्चिमी-शाखा की पूर्वी उपशाखा से छठीं शताब्दी में सिद्ध-मात्रिका लिपि का विकास हुआ। इसके आकार के कारण बूलर ने इसका नाम 'न्यून कोणीय लिपि' भी रखा है। ५८८-८९ ई० का बोधगया का प्रसिद्ध लेख सिद्धमात्रिका लिपि में ही है।

दक्षिणी भारत की लिपियाँ

दक्षिण भारत में ब्राह्मी लिपि का विकास किंचित् भिन्न प्रकार से हुआ। इसके दो मुख्य रूप दक्षिण में प्रचलित हुए। इनमें एक था 'उत्तरी रूप' तथा दूसरा 'दक्षिणी रूप'। वस्तुतः उत्तरी रूप से ही 'तेलगु' तथा 'कन्नड़' लिपियाँ उत्पन्न एवं विकसित हुई हैं।

दक्षिणी लिपि से तमिल देश में प्रचलित प्राचीन ग्रंथ-लिपि का उद्भव

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हुआ था। संस्कृत-ग्रंथों के लिखने के लिए ही व्यवहृत होने के कारण इसका नाम ग्रंथ लिपि पड़ा। इसका प्राचीन रूप 'वट्टेलुट्टु' नाम से प्रख्यात है।

सिंहल (सीलोन) की 'सिंहली लिपि' का विकास भी ब्राह्मी से स्वतंत्र रूप से हुआ था।

'तिब्बती लिपि' का विकास भी सिद्धमात्रिका तथा कश्मीरी (शारदा) लिपि से हुआ था। सातवीं शती की इस लिपि का प्रयोग चीन तथा जापान के बौद्ध आज भी करते हैं।

दक्षिणी लिपि ही विभिन्न युगों में हिन्दचीन (इण्डोचाइना) तथा हिन्देशिया (इण्डोनेशिया) में पहुँची और इसी ने वहाँ की लिपियों को जन्म दिया। इन दोनों के सम्मिश्रण तथा विशेष रूप से दक्षिणी लिपि के प्रभाव से मॉन अथवा तलंग लिपियाँ अस्तित्व में आईं। इस लिपि को दसवीं शती में उत्तरी ब्रह्मा के मंगोल लोगों ने अपनाया। आधुनिक 'वर्मी लिपि' इसी से विकसित हुई है।

द्वितीय शती ईस्वी पूर्व की दक्षिणी लिपि से कम्बोडिया की लिपि उत्पन्न हुई और कुछ परिवर्तन के साथ इससे 'स्याम की लिपि' उत्पन्न हुई।

दक्षिणी लिपि का ही एक रूप सुमात्रा तथा जावा द्वीपों में पहुँचा तथा इसी से जावा तथा बाली द्वीप की लिपियों की उत्पत्ति हुई। सुमात्रा की 'वटक लिपि' तथा सेलिबीज एवं फिलिपाइन्स की लिपियों का जन्म भी इसी दक्षिणी भारतीय लिपि से हुआ।

उत्तरी भारत की लिपियाँ

सातवीं शताब्दी में गुप्त ब्राह्मी में परिवर्तन हुआ। हर्षवर्द्धन की मृत्यु के पश्चात् तो उत्तरी भारत की राजनीतिक एकता छिन्न-भिन्न हो गई जिसके परिणामस्वरूप उत्तरी भारत में अनेक स्वतंत्र राज्य स्थापित हो गए। इसका प्रभाव लिपि पर भी पड़ा और उत्तरी भारत की लिपि निम्नलिखित तीन प्रकार की लिपियों में विभक्त हो गई। ये हैं—(क) शारदा (ख) कुटिल (ग) नागर। इन तीनों लिपियों से ही उत्तरी भारत की आधुनिक युग की लिपियाँ प्रसूत हुई हैं। इनके सम्बन्ध में नीचे विचार किया जाता है —

(क) शारदा

इस लिपि का प्रचार एवं प्रसार उत्तरी-पश्चिमी भारत, कश्मीर, पंजाब तथा सिंध में हुआ। स्थानीय भेद के अनुसार इस लिपि के तीन स्वरूप—टक्री, लण्डा तथा गुरुमुखी—मिलते हैं। ग्रियर्सन के अनुसार तो शारदा, टक्री तथा लंडा वस्तुतः भगिनी-स्वरूपा लिपियाँ हैं। दूसरे शब्दों में इन तीनों की उत्पत्ति एक ही लिपि से हुई है। किन्तु बूलर के अनुसार टक्री अथवा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

टक्करि की उत्पत्ति शारदा लिपि से हुई है और यह टक्क लोगों की लिपि है। टक्क जाति के लोग किसी समय प्राचीन साकल तथा आधुनिक स्यालकोट में निवास करते थे। इसका प्रचलन निम्न श्रेणी के व्यापारियों में है। महाजनी लिपि की भाँति इसके स्वर अपूर्ण हैं। इससे प्रसूत अनेक रूप पंजाब के उत्तर तथा हिमालय के निचले प्रदेशों में प्रचलित हैं।

डोग्री लिपि

इसका प्रयोग पंजाबी की डोग्री भाषा के लिखने में होता है। यह भाषा जम्मू राज्य के आसपास प्रचलित है।

चमेआली लिपि

इस लिपि का प्रयोग चम्बा प्रदेश की पश्चिमी पहाड़ी भाषा, चमेआली के लिखने में होता है। चमेआली भाषा-भाषियों की संख्या ६५,००० के लगभग है। जहाँ तक स्वरों का सम्बन्ध है, चमेआली में इनकी संख्या पर्याप्त है और यह देवनागरी लिपि की भाँति ही बहुत अंशों में पूर्ण है। छपाई में भी इसका प्रयोग होता है। साथ ही चमेआली में अनूदित बाइबिल के कुछ अंश भी इसमें प्रकाशित हुए हैं। 'मंडेआली' लिपि का प्रयोग मंडी तथा सुकेत के राज्यों में होता है। मंडेआली भाषा-भाषियों की संख्या मंडी राज्य में डेढ़ लाख तथा सुकेत राज्य में पचपन हजार है।

सिरमौरी लिपि

यह भी टक्री लिपि की ही एक उपशाखा है जो पश्चिमी पहाड़ी की सिरमौरी बोली के लिखने में प्रयुक्त होती है। सिरमौरी बोलनेवालों की संख्या सवा-लाख के लगभग है। सिरमौरी लिपि पर देवनागरी लिपि का प्रभाव स्पष्ट है।

जौनसारी लिपि

सिरमौरी लिपि से यह लिपि बहुत मिलती-जुलती है। यह उत्तर प्रदेश के पहाड़ी प्रदेश, जौनसार बावर में प्रचलित है। जौनसारी भाषा की गणना भी पश्चिमी पहाड़ी के अन्तर्गत है। इसके बोलनेवालों की संख्या पचास हजार के लगभग है। इस प्रदेश में देवनागरी लिपि का भी प्रयोग होता है।

कोछी लिपि

इस लिपि का प्रयोग शिमला पर्वत की पश्चिमी पहाड़ी बोली 'किउठाली'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

की उपभाषा 'कोछी' के लिए होता है। यह लिपि भी टक्री का ही एक भेद है। कोछी भाषा-भाषियों की संख्या बावन हजार के लगभग है। स्वरों की अव्यवस्था के कारण यह लिपि भी बहुत कुछ अपूर्ण है।

कुल्लुई लिपि

यह कुल्लू घाटी (पंजाब) में प्रचलित है। कुल्लुई भाषा की गणना भी पश्चिमी पहाड़ी के अन्तर्गत है। इसके बोलनेवालों की संख्या पचपन हजार है।

कश्टवारी लिपि

ग्रियर्सन के अनुसार यह लिपि टक्री तथा शारदा के बीच की कड़ी है। कश्टवारी बोली को लिखने के लिए यह लिपि प्रयुक्त होती है। कश्मीर के दक्षिणपूर्व, कश्टवार की घाटी में कश्टवारी बोली का क्षेत्र है। यह मूलतः कश्मीरी की ही एक उपभाषा है किन्तु इस पर पहाड़ी एवं लहँदा का अत्यधिक प्रभाव है।

लंडा लिपि

लंडा लिपि का प्रचार पंजाब तथा सिन्ध में है। यद्यपि यह यहाँ की राष्ट्रीय लिपि है तथापि इसका सर्वाधिक प्रचार व्यवसायियों तथा दूकानदारों में ही है। लंडा लिपि का प्रयोग लहँदा तथा सिन्धी बोलियों के लिखने के लिए होता है। लहँदा भाषा-भाषियों की संख्या सत्तर लाख तथा सिन्धी बोलनेवालों की संख्या पैंतीस लाख के लगभग है। टक्री तथा महाजनी लिपियों की भाँति ही लंडा लिपि का पढ़ना भी कठिन है। इसके कई स्थानीय भेद हैं। टक्री की तरह यह भी अपूर्ण लिपि है और इसमें भी स्वरों के प्रयोग के सम्बन्ध में अत्यधिक अव्यवस्था है।

मुल्तानी लिपि

लंडा लिपि के अनेक स्थानीय भेद हैं। इन्हीं में से मुल्तानी भी एक है। लहँदा की बाईस बोलियों में मुल्तानी का प्रमुख स्थान है। मुल्तानी बोलनेवालों की संख्या पच्चीस लाख है।

सिन्धी लिपि

आज से सौ वर्ष पूर्व प्रकाशित जार्ज स्टैक के सिन्धी-व्याकरण में लंडा से प्रसूत एक दर्जन लिपियों का उल्लेख है। इनमें हैदराबाद में प्रचलित खुदा-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वाडी लिपि मुख्य है और प्रायः देश भर के सिन्धी-व्यापारी इस लिपि का प्रयोग करते हैं। सिन्ध में प्रचलित लंडा लिपि को 'वनिया' या 'वानिको' कहते हैं। सन् १८६८ में यह सरकारी लिपि घोषित की गई थी। सिन्ध में स्कूली पुस्तकों की छपाई के लिए भी इस लिपि का प्रयोग होता है। सिन्ध के लगभग तीस लाख मुसलमान अरबी-फारसी लिपि का प्रयोग करते हैं। इधर पाकिस्तान के निर्माण के बाद सिन्धी लिपि का प्रयोग केवल हिन्दुओं में ही सीमित हो गया है। अब सिन्धी तथा बाहर से गये हुए मुसलमान एक-मात्र अरबी-फारसी लिपि का ही प्रयोग करने लगे हैं।

गुरुमुखी लिपि

लंडा लिपि में ही कतिपय सुधार करके सिक्खों के दूसरे गुरु श्री अंगद (१५३८-५२) ने गुरुमुखी लिपि का निर्माण किया था। कुछ लोग भ्रमवश इसे पंजाबी लिपि भी मानते हैं। आजकल पंजाबी इसी लिपि में लिखी जाती है। इसके प्रयोग करनेवाले भी प्रायः सिक्ख ही हैं। पंजाब के हिन्दुओं में देवनागरी लिपि का ही प्रचार है।

(ख) कुटिल लिपि

इस लिपि का प्रचार पूर्वी उत्तरप्रदेश, बिहार, बंगाल, आसाम, उड़ीसा, मनीपुर तथा नेपाल में हुआ। तिरछे तथा टेढ़े-मेढ़े ढंग से लिखने के कारण इसका नाम कुटिल लिपि पड़ा।

बिहारी लिपि

भाषा की दृष्टि से पूर्वी उत्तरप्रदेश, पश्चिमी-बिहार का ही एक भाग है। आजकल बिहार में पुस्तकों की छपाई तथा सामान्य रूप से लिखने में भी नागरी लिपि का ही प्रयोग होता है किन्तु बिहार की प्रचलित लिपि कैथी है। चूँकि इधर सरकारी कार्यालयों में लिखने-पढ़ने का सब से अधिक कार्य कायस्थ जाति के लोग ही करते रहे अतएव इस लिपि का 'कैथी' नाम पड़ गया। इसके तीन स्थानीय भेद हैं—

१. तिरहुती कैथीलिपि—इसका प्रयोग तिरहुत के लोग करते हैं। यह बहुत सुन्दर लिपि है।
२. भोजपुरी कैथीलिपि—इसका प्रयोग भोजपुरी बोली के लिखने में होता है। भोजपुरी, पूर्वी उत्तरप्रदेश तथा बिहार की मुख्य बोली है। यहाँ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रचलित कैथी लिपि, नागरी से बहुत मिलती-जुलती है। अतएव इसके पढ़ने में कठिनाई नहीं होती।

३. मगही कैथी लिपि—इसका प्रयोग बिहार की मगही बोली के लिखने के लिए होता है। पटना तथा गया जिलों में इसका सर्वाधिक प्रचार है। पहले छपाई में भी इस लिपि का प्रयोग होता था किन्तु अब इसका स्थान नागरी लिपि ने ले लिया है।

४. मैथिली लिपि—उत्तर बिहार की बिहारी भाषा की मैथिली बोली के लिखने के लिए इस लिपि का प्रयोग होता है। इसे तिरहुती लिपि भी कहते हैं। बिहार के इस अंचल में निम्नलिखित तीन लिपियों का प्रयोग होता है—

(क) देवनागरी—साहित्यिक मैथिली तथा हिन्दी के लिखने तथा छापे में इस लिपि का प्रयोग होता है।

(ख) तिरहुती कैथी लिपि—इसके सम्बन्ध में ऊपर लिखा जा चुका है।

(ग) मैथिली लिपि—इसका प्रयोग केवल मैथिल ब्राह्मणों तक ही सीमित है। ब्राह्मणेतर जातियाँ इसका प्रयोग नहीं करतीं। यह लिपि बंगला लिपि से बहुत मिलती-जुलती है किन्तु यह पढ़ने में बंगला की अपेक्षा कठिन है। सम्पूर्ण बिहार में शिक्षा का माध्यम हिन्दी होने के कारण सम्प्रति यहाँ नागरी लिपि का ही सर्वाधिक प्रचार एवं प्रयोग है और धीरे-धीरे ऊपर की स्थानीय लिपियाँ समाप्त होती जा रही हैं।

बंगला लिपि

बूलर के अनुसार प्राचीन बंगला लिपि का उद्भव, ११वीं शती में, भारत के पूर्वी अंचल में प्रचलित नागरी लिपि से हुआ था। श्री एस० एन० चक्रवर्ती (इस सम्बन्ध में देखो, बंगाल की रायल एशियाटिक सोसाइटी भाग ४, सन् १९३८, पृ० ३५१-३९१) के अनुसार प्राचीन बंगला लिपि का विकास सातवीं शती की उत्तर-भारत की लिपि से हुआ था। यह लिपि जौहरियों (सोने-हीरे के व्यवसायियों) में प्रचलित थी। फरीदपुर (बंगाल) के दानपत्र में इस लिपि का प्रयोग हुआ है। सातवीं से नवीं शती तक यह लिपि स्वतंत्र रूप से बंगाल में विकसित होती रही। दसवीं शती में, इस पर नागरी लिपि का भी प्रभाव पड़ा और इस प्रकार प्राचीन बंगला लिपि के रूप में एक नवीन लिपि अस्तित्व में आई। प्राचीन बंगला लिपि में ११-१२वीं शती की हस्तलिखित पुस्तकें प्राप्त हैं। १५-१६वीं शती तक बंगला लिपि पूर्णतया विकसित हो गई थी। बंगला की वर्णों की संख्या तथा उनका क्रम भी ठीक देवनागरी का ही है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

असमिया लिपि

यह बंगला लिपि का ही एक भेद है तथा असमिया भाषा के लिखने में प्रयुक्त होती है। असमिया भाषा-भाषियों की संख्या बीस लाख के लगभग है। असमिया तथा बंगला लिपियों में मुख्य अन्तर यह है कि असमिया में 'र' तथा 'व' वर्णों के रूप बंगला से भिन्न हैं।

उड़िया लिपि

उड़िया लिपि का मूल स्रोत वही है जो बंगला का, किन्तु दक्षिण की तेलुगु तथा तमिल लिपियों के प्रभाव से उड़िया की लिखावट विचित्र हो गई है। इसके वर्ण वर्तुलाकार हो गए हैं। प्राचीनकाल में दक्षिण तथा उड़ीसा में ताड़पत्रों पर लोहे की शलाका से लिखा जाता था। अतएव ताड़पत्रों पर खड़े-खड़े अक्षर लिखने से उनके फट जाने की आशंका रहती थी। इससे बचने के लिए ही दक्षिण भारत या उड़ीसा की लिपियों का आकार वर्तुलाकार बनाया गया। उड़िया लिपि के आज तीन भेद प्रचलित हैं—

(१) ब्राह्मनी—इसका प्रयोग केवल ताड़पत्रों पर लिखने के लिए होता है। धार्मिक ग्रंथों के लिखनेवाले ब्राह्मणों तक ही यह लिपि सीमित है।

(२) करनी—कागज-पत्रों (दस्तावेजों) के लिखने में यह लिपि प्रयुक्त होती है। इस लिपि के उद्भावक करण कायस्थ हैं।

(३) गंजाम जिले के कुछ भाग में जो उड़िया लिपि प्रचलित है, वह वर्तमान उड़िया लिपि की अपेक्षा और भी अधिक वर्तुलाकार है। इसका मुख्य कारण तेलुगु लिपि का अधिक प्रभाव ही है।

प्राचीन मनीपुरी लिपि

प्राचीन मनीपुरी लिपि की उत्पत्ति सम्भवतः बंगला लिपि से हुई थी। सत्रहवीं शती में तिब्बती-बर्मी शाखा की भाषा मनीपुरी को लिखने के लिए इस लिपि का प्रयोग किया गया था। आजकल यह लिपि बहुत कम प्रयोग में है।

प्राचीन नेपाली अथवा नेवारी लिपि

इस लिपि की उत्पत्ति भी प्राचीन बँगला लिपि से हुई थी। नेवारी भाषा तिब्बती-हिमालय की एक उपभाषा है। नेपाल के नेवार बौद्ध हैं और नेवारी में बौद्धधर्म-सम्बन्धी साहित्य प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। नेपाल की राजभाषा गोरखाली है। इसके लिखने के लिए नागरी लिपि व्यवहृत होती है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(ग) नागर लिपि

इसे नागरी अथवा देवनागरी लिपि भी कहते हैं। प्राचीनकाल में पश्चिमी उत्तरप्रदेश, गुजरात, राजस्थान, एवं महाराष्ट्र में इसका प्रचार एवं प्रसार था। नागरी का मूल अर्थ क्या है, यह निश्चित रूप से कहना कठिन है। कतिपय विद्वानों के अनुसार बौद्धों के प्रसिद्ध ग्रंथ 'ललित विस्तर' की 'नाग लिपि' ही नागरी है, किन्तु डॉ० एल० डी० बार्नेट के अनुसार नाग लिपि तथा नागरी में कोई सम्बन्ध नहीं है। कुछ लोग गुजरात के नागर ब्राह्मणों से इसका सम्बन्ध स्थापित करते हैं किन्तु अन्य लोग इसका सम्बन्ध नगर से बतलाते हैं। चूंकि देवभाषा संस्कृत के लिखने के लिए भी इसका प्रयोग किया गया अतएव इसे देवनागरी नाम से भी अभिहित किया गया।

प्राचीन काल में नागरी लिपि का प्रचार-प्रसार

हर्षवर्द्धन की मृत्यु के उपरान्त भारतीय इतिहास में जिस युग का प्रादुर्भाव हुआ वह राजपूत-युग के नाम से प्रसिद्ध है। इस काल में उत्तरी एवं दक्षिणी भारत में अनेक नये राज्यों की स्थापना हुई जिनके शासक क्षत्रिय थे। ये नये शासक संस्कृत भाषा, मध्यदेश के शौरसेनी अपभ्रंश तथा नागरी लिपि के पोषक एवं प्रेमी थे, अतएव इनके संरक्षकत्व में, उत्तरी तथा दक्षिणी भारत में नागरी लिपि का प्रचार-प्रसार हुआ।

उत्तरी भारत में नागरी लिपि का समारम्भ, सातवीं शताब्दी में, सम्राट् हर्षवर्द्धन के शासनकाल में प्रचलित लिपि से माना जा सकता है। इस युग की नागरी लिपि अत्यन्त अलंकृत है और सम्राट् का हस्ताक्षर तो प्राचीन नागरी का उत्कृष्ट नमूना है। सम्राट् हर्षवर्द्धन केवल शासक एवं विजेता ही नहीं था, अपितु वह उच्च स्तर का साहित्यिक, कवि एवं लेखनकला में भी दक्ष था।

हर्षवर्द्धन की नागरी लिपि के समान ही, दक्षिण में महाबलीपुरम् एवं काञ्चीपुरम् के कैलाश मन्दिर के शिलालेखों की लिपि है। ये शिलालेख पल्लव राजाओं के शासन-काल में प्रचलित नागरी लिपि में उत्कीर्ण हैं। दक्षिण भारत में, ग्रंथ-लिपि के साथ-साथ नागरी लिपि का प्रचार एवं प्रसार इस बात का द्योतक है कि देश के इन दोनों भागों में भावात्मक एकता के रूप में नागरी लिपि एवं संस्कृत भाषा प्रचलित थी।

बंगाल के शशांक के ताम्रपत्र की लिपि, पूर्वी भारत की प्राचीनतम नागरी लिपि है। यह लिपि हर्षवर्द्धन की लिपि से कम सुन्दर है। किन्तु भास्करवर्मन् के निधनपुर (असम राज्य) के दानपत्र की लिपि हर्षवर्द्धन के समान ही अलं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कृत एवं सुन्दर है। इस प्रकार आठवीं शताब्दी के आरम्भ में ही हम प्राचीन नागरीलिपि का प्रचार पंजाब से असम राज्य तक पाते हैं।

दक्षिण भारत में पल्लव राजाओं की भाँति ही, पश्चिमी चालुक्य वंश के शासकों को भी हम नागरीलिपि का व्यवहार करते हुए पाते हैं। पुनः दक्षिण में ही 'वरगुन' के 'पलियम्' के ताम्रपत्र में नागरी का व्यवहार मिलता है। इस ताम्रपत्र की आरम्भ की लिपि तो तमिल है किन्तु आगे इसमें नागरी लिपि प्रयुक्त हुई है।

पल्लव वंश के बाद दक्षिण में चोलवंश के राज्य की स्थापना हुई। इस वंश के राजाओं ने अपनी मुद्राओं (सिक्कों) पर नागरीलिपि का ही व्यवहार किया। इसी युग में केरल में राज्य के शासकों ने भी अपने सिक्कों पर नागरीलिपि का व्यवहार किया। भारत के बाहर, श्री लंका (सीलोन) में भी पराक्रमबाहु, विजयबाहु एवं अन्य राजाओं के सिक्कों पर भी नागरीलिपि का प्रयोग मिलता है।

विजयनगर राज्य के समय के सिक्कों पर भी नागरीलिपि का व्यवहार हुआ है। इस युग की नागरी 'नन्दि नागरी' के नाम से प्रसिद्ध है। यह दक्षिण के यादव एवं ककातीय वंश के राजाओं द्वारा व्यवहृत नागरी का ही एक रूप है। दक्षिण भारत में, पन्द्रहवीं शताब्दी तक राजपूत राजाओं द्वारा नागरीलिपि का प्रयोग प्रचलित रहा।

हर्षवर्द्धन के युग से लेकर दसवीं शताब्दी तक नागरीलिपि में यत्किंचित् परिवर्तन होते रहे, किन्तु ग्यारहवीं शताब्दी में यह लिपि पूर्णता प्राप्त कर चुकी थी। गुजरात, राजस्थान एवं महाराष्ट्र में तो इसमें ताड़पत्र पर लिखे हुए अनेक ग्रंथ प्राप्त हुए हैं। उत्तरी भारत में तो तुर्कों के आक्रमणकाल तक यह लिपि इतनी जनप्रिय थी कि महमूद गज़नवी तक ने अपने सिक्कों पर इसका व्यवहार किया।

मुगलों के शासन-काल में जब राजभाषा फारसी हो गई तो उत्तरी भारत में अरबी-फ़ारसी लिपि का प्रचार-प्रसार बढ़ा तथा नागरीलिपि के प्रचलन में बाधा उपस्थित हुई, किन्तु इस युग में भी संस्कृत एवं हिन्दी के ग्रंथों के लेखन में नागरीलिपि का प्रयोग ही प्रचलित था। ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासनकाल में भी प्रायः फारसी लिपि का ही बोलबाला रहा किन्तु जब मिशनरियों ने संस्कृत के अध्ययन का आरम्भ किया तो उनके लिए नागरीलिपि का ज्ञान आवश्यक हो गया। उधर जब मैक्समूलर ने वेदों का संकलन एवं सम्पादन किया तो रोमन लिपि के बजाय, इसके लिए, उन्होंने नागरीलिपि का ही व्यवहार किया। इधर जब ब्रिटिश शासन में विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई तो वहाँ संस्कृत के अध्यापन के साथ नागरीलिपि का प्रयोग अनिवार्य हो गया।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आधुनिक काल में नागरीलिपि का प्रचार-प्रसार

आधुनिक काल में नागरी लिपि के प्रचार-प्रसार विषयक तथ्यों की जानकारी के लिए हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठापित करने के आन्दोलन के इतिहास पर दृष्टिपात करना पड़ेगा। काँग्रेस की स्थापना सन् १८८५ ई० में हुई थी। इसके संस्थापक श्री ह्यूम का उद्देश्य यह था कि भारतीय वैज्ञानिक ढंग से शासन में स्थान प्राप्त करें, किन्तु पन्द्रह वर्षों के बाद ही पं० बालगंगाधर तिलक, लाला लाजपतराय तथा श्री विपिनचन्द्र पाल जैसे नेताओं के उद्योग के परिणामस्वरूप काँग्रेस क्रान्तिकारी संस्था में परिणत होने लगी। सन् १९०१ से सन् १९१० ई० के बीच का इतिहास वस्तुतः भारतीय नवजागरण का इतिहास है। इसी समय लार्ड कर्जन ने वंग-भंग किया जिसके कारण बंगाल में 'स्वदेशी आन्दोलन' का सूत्रपात हुआ। इसी बीच सूरत की काँग्रेस के अधिवेशन में क्रान्तिकारी दल की विजय हुई तथा भारत के उदारदल का काँग्रेस से सदा के लिए निष्कासन हुआ। उधर विदेश-स्थित भारतीय क्रान्तिकारियों का एक दल संगठित हुआ जिसमें महाराष्ट्र, बंगाल, पंजाब एवं गुजरात आदि सभी प्रदेशों के नवयुवक थे। इस युग में राष्ट्रीयता की जो लहर उठी उसने राष्ट्रभाषा की ओर भारतीय तरुणों का ध्यान आकर्षित किया और उसके फलस्वरूप राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी राष्ट्रीयता का अविभाज्य अंग बनने लगी।

इधर उत्तरी भारत में हिन्दी को समुन्नत करने तथा उसे राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन करने का आन्दोलन चल पड़ा। यह सर्वथा स्वाभाविक था। हिन्दी उत्तरी भारत की जनता की मातृ-भाषा और नागरीलिपि उनकी अपनी लिपि थी किन्तु इन दोनों को कचहरियों तथा सरकारी कार्यालयों में उचित स्थान प्राप्त न था। इस आन्दोलन के प्रवर्त्तक महामना मालवीयजी थे। उत्तर प्रदेश (तब संयुक्तप्रान्त) की कचहरियों में वैकल्पिकरूप से नागरीलिपि तथा हिन्दी में लिखित अर्जियाँ भी ले ली जाया करें, इसके लिए लाखों व्यक्तियों के हस्ताक्षर कराकर उस समय के गवर्नर सर एन्थनी मैकडानेल के पास प्रार्थनापत्र भेजा गया। इस कार्य में प्रयाग के एक तरुण राष्ट्रकर्मी बाबू पुरुषोत्तमदासजी टंडन ने भी मालवीयजी की सहायता की। सन् १८९३ई० में स्थापित काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने भी इस आन्दोलन में मालवीय जी का हाथ बँटाया। आगे चलकर १० अक्तूबर, सन् १९१० को हिन्दी साहित्य-सम्मेलन की स्थापना हुई। इसका प्रथम अधिवेशन, नागरी प्रचारिणी सभा के तत्त्वावधान में काशी में ही हुआ। इसके प्रथम सभापति पं० मदनमोहन मालवीयजी हुए। सम्मेलन का संगठन हुआ और उसके मंत्री बाबू पुरुषोत्तम

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

...0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दासजी टंडन मनोनीत हुए। सम्मेलन ने अपनी प्रथम नियमावली में ही हिन्दी को राष्ट्रभाषा तथा देवनागरी को राष्ट्रलिपि माना।

सम्पूर्ण भारत में हिन्दी भाषा तथा देवनागरी लिपि के प्रचार-प्रसार के लिए हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने अपनी प्रथमा, मध्यमा एवं उत्तमा की परीक्षाएँ परिचालित कीं। श्री टंडनजी के मन में परीक्षाओं की यह कल्पना कैम्ब्रिज सर्टिफिकेट परीक्षा से आई और हिन्दी भाषा तथा नागरीलिपि के प्रचार-प्रसार के लिए ये परीक्षाएँ वरदान सिद्ध हुईं।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के साथ गांधीजी का सहयोग

सन् १९१४ ई० में गांधीजी दक्षिणी अफ्रीका से भारत आए। एक बार उन्होंने बाबू पुरुषोत्तमदासजी टंडन को अपने एक पत्र में लिखा—"मेरे लिए हिन्दी का प्रश्न तो स्वराज्य का प्रश्न है।" ठीक यही बात टंडनजी के मन में भी थी। अतएव दो समानधर्मा आ मिले। सन् १९१७ ई० (संवत् १९७४) में श्री टंडनजी की प्रेरणा से गांधीजी हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के इन्दौर के अधिवेशन में, सम्मेलन के सभापति हुए। सम्मेलन में गांधीजी के आगमन से हिन्दी-राष्ट्रभाषा-आन्दोलन को बहुत बल मिला। गांधीजी की ही प्रेरणा से, सम्मेलन के तत्त्वावधान में, दक्षिण में हिन्दी का प्रचार-कार्य प्रारम्भ हुआ तथा 'दक्षिण-भारत-प्रचार-सभा' की नींव पड़ी। सभा ने, सम्मेलन के आदर्श पर ही, तमिल, मलयालम, तेलुगु तथा कन्नड भाषाभाषियों के लिए अपनी परीक्षाएँ परिचालित कीं जिसके फलस्वरूप लक्ष-लक्ष अहिन्दी-भाषियों ने हिन्दी भाषा तथा नागरी लिपि सीखी।

सन् १९३५ ई० में, गांधीजी इन्दौर हिन्दी साहित्य सम्मेलन के दूसरी बार सभापति हुए। सन् १९३६ ई० में उन्हीं की प्रेरणा से, नागपुर हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के पच्चीसवें अधिवेशन में, मद्रास को छोड़कर शेष अहिन्दी प्रदेशों (सिन्ध, गुजरात, महाराष्ट्र, उत्कल, बंगाल तथा असम आदि) में हिन्दी के प्रचार के लिए राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति के संगठन का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। इस अधिवेशन के सभापति भारत के प्रथम राष्ट्रपति स्वर्गीय श्री राजेन्द्र बाबू थे। इस समिति का संगठन भी सम्मेलन के अन्तर्गत ही हुआ तथा इसका कार्यालय वर्धा में रखा गया। समिति ने अपनी परीक्षाएँ परिचालित कीं, जिनमें, प्रतिवर्ष, इन प्रदेशों के अनेक अहिन्दी भाषी सम्मिलित हुए। इस प्रकार इन राज्यों में राष्ट्रभाषा हिन्दी एवं राष्ट्रलिपि नागरी का कार्य जोरों से बढ़ा। आज भी यह कार्य अबाध गति से चल रहा है।

ऊपर के विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि किस प्रकार मालवीयजी,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

टंडनजी एवं गांधीजी के प्रयत्नों के फलस्वरूप उत्तर तथा दक्षिण भारत में नागरीलिपि का प्रचार-प्रसार हुआ। सन् १९४७ ई० में जब देश स्वतंत्र हुआ तथा उसका संविधान बनने लगा तो स्वाभाविक रूप से राष्ट्रभाषा तथा राष्ट्रलिपि का प्रश्न देश के सामने आया। राष्ट्रभाषा का नाम 'हिन्दी' अथवा हिन्दुस्तानी रखा जाय, इस बात को लेकर भी विवाद उपस्थित हुआ किन्तु अन्त में श्री टंडनजी तथा श्री वल्लभभाई पटेल के प्रयत्न से, संविधान में, हिन्दी को सरकारी भाषा तथा नागरी को सरकारी लिपि स्वीकार कर लिया गया।

रोमन लिपि

भारत में यूरप के निवासियों के आगमन तथा देश में अँग्रेजी राज्य के प्रसार के साथ-साथ रोमक अथवा रोमनलिपि के प्रचार का भी प्रारम्भ हुआ। आरम्भ में अंग्रेजी भाशा के पठन-पाठन तक ही यह लिपि सीमित थी किन्तु धीरे-धीरे इसाई मिशनरियों ने देशी भाषाओं को लिखने के लिए भी इस लिपि का व्यवहार प्रारम्भ किया। लन्दन में पालिग्रंथों के प्रकाशन का कार्य जब आरम्भ हुआ तथा जब उसके लिए 'पालिटेक्स्ट सोसायटी' की स्थापना हुई तब वहाँ यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि इसके लिए किस लिपि को चना चाय। उस समय पालिटेक्स्ट की पुस्तकें सिंहली, वर्मी एवं थाई (स्यामी) लिपि में उपलब्ध थीं। अच्छा हुआ होता कि पालिटेक्स्ट सोसायटी इस कार्य के लिए नागरी लिपि का चुनाव करती, किन्तु सोसायटी ने अन्त में मूल पालि-ग्रंथों (त्रिपिटक) को रोमन में ही छापने क निश्चय किया। यह प्रसन्नता की वात है कि इधर नालन्दा (विहार) से नागरी में भी त्रिपिटक का प्रकाशन हो गया।

भारत तथा वाहर के प्राच्य विद्या सम्बन्धी पत्र-पत्रिकाओं ने भी संस्कृत तथा पालि आदि के लिए रोमन वर्गों का ही व्यवहार किया और अन्तर्राष्ट्रीय-ध्वनि परिषद् (इन्टरनेशनल फोनेटिक ऐसोशिएशन) ने संसार की विभिन्न भाषाओं को लिखने के लिए रोमन को नवीन ध्वनि-चिह्नों से सम्पन्न किया। भारतीय फौजों में नागरी तथा उर्दू लिपियों का वहिष्कार करके उनके स्थान पर रोमन को विठाया गया और जव हिन्दू-मसलमानों के विषम राजनीतिक दृष्टिकोण के फलस्वरूप देवनागरी तथा उर्दू लिपि का प्रश्न राजनीतिज्ञों के सामने आया तो अनेक लोगों ने इससे वचने का मार्ग रोमन लिपि की स्वीकृति में ही देखा।

भारत के लिए एक सामान्य लिपि की आवश्यकता

जब से देश की स्वतंत्रता के लिए काँग्रेस ने आन्दोलन आरम्भ किया तब से

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भारतीय एकता के प्रश्न पर जोर दिया जाने लगा। इसके लिए एक भाषा तथा एक लिपि की आवश्यकता थी। सन् १९०५ ई० में काशी नागरी प्रचारिणी सभा के एक अधिवेशन में भाषण देते हुए लोकमान्य तिलक ने समस्त भारतीय भाषाओं के लिए एक सामान्य लिपि के रूप में देवनागरी को अपनाने का प्रबल समर्थन किया था और यह भी कहा था कि देवनागरी रोमनलिपि की तुलना में कहीं अधिक उपयुक्त है।

न्यायमूर्ति श्री शारदाचरण मित्र द्वारा सन् १९१० ई० में इलाहाबाद में आयोजित एक लिपि-सम्मेलन में संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित एवं विधिवेत्ता श्री वी० कृष्णस्वामी अय्यर ने अध्यक्ष पद से भाषण देते हुए समग्र भारत के लिए एक भाषा और एक लिपि की नितान्त आवश्यकता पर बल दिया था तथा इस बात का संकेत किया था कि बहुप्रचलित और वैज्ञानिक होने के कारण सामान्य लिपि के रूप में देवनागरी को अपनाया जा सकता है। जस्टिस शारदाचरण मित्र ने तो एक लिपि विस्तार-परिषद् और देवनागर पत्रिका के माध्यम से समस्त भारतीय भाषाओं को देवनागरी लिपि में लिखने के लिए आन्दोलन भी किया था।

राष्ट्रपिता बापू ने तो देवनागरी को समस्त भारत के लिए एक सामान्य लिपि के रूप में अपनाने के लिए सदैव बल दिया। भारतीय साहित्य-परिषद्, मद्रास के अध्यक्षपद से उन्होंने जो भाषण सन् १९३७ में दिया था उसमें यह स्पष्ट-रूप से बताया था कि फारसी और रोमन लिपियों में न तो देवनागरी जैसी पूर्णता है और न ही देवनागरी के समान भारतीय भाषाओं की विभिन्न ध्वनियों को शुद्धरूप में व्यक्त करने की क्षमता है। अनेक लिपियों का बोझ ढोना अनावश्यक है क्योंकि इस बोझ से सहज ही छुटकारा मिल सकता है। पुनः रोमन लिपि का विरोध करते हुए ११ फरवरी सन् १९३९ ई० के 'हरिजन' में गांधीजी ने लिखा था कि समूचे भारत के लिए एक सामान्य लिपि के रूप में रोमन लिपि को अपनाना भावना और वैज्ञानिकता दोनों के विरुद्ध है। उसे प्रचलित करना थोपना ही होगा और थोपी हुई चीज कभी लोकप्रिय नहीं हो सकती। ज्योंही जनता जागृत होगी, उसे उखाड़ फेंकेगी।

भारत के लिए रोमन लिपि

समग्र भारत के लिए, सामान्य लिपि के रूप में, रोमन को अपनाने के सब से प्रबल समर्थक प्रसिद्ध भाषा-विज्ञानी डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी हैं। आप ने सन् १९३५ ई० में कलकत्ता विश्वविद्यालय के जर्नल, डिपार्टमेण्ट ऑव लेटर्स, भाग २६ में 'भारत के लिए रोमन लिपि' (रोमन अल्फाबेट फॉर इंडिया)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शीर्षक निवन्ध प्रकाशित किया था। रोमनलिपि के सम्बन्ध में डॉ० चटर्जी के निम्नलिखित तर्क द्रष्टव्य हैं—

(१) आज भारत में अनेक लिपियाँ प्रचलित हैं। ये हैं—देवनागरी, वंगला, गुजराती, कैथी, गरुमखी, उड़िया, तेलुगु, कन्नड़, तमिल, मलयालम आदि।

इनमें देवनागरी लिपि सर्वाधिक प्रसिद्ध है, क्योंकि संस्कृत लिखने के लिए आजकल प्रायः समस्त भारत में इसी लिपि का प्रयोग किया जाता है।

(२) उर्दू तथा सिन्धी के लिए फारसी-अरबी लिपि का प्रयोग होता है।

(२) गोआ के इसाई कोंकणी के लिए रोमन लिपि का प्रयोग करते हैं। इसके अतिरिक्त फौज तथा उत्तरी भारत के इसाइयों में भी रोमन लिपि प्रचलित है।

ऊपर की लिपियों में नं० २ अर्थात् फ़ारसी-अरबी लिपि के सम्बन्ध में विचार ही नहीं किया जा सकता क्योंकि वह नितान्त अपूर्ण तथा अवैज्ञानिक लिपि है। इसमें स्वरों का कोई मूल्य नहीं है तथा कई व्यंजनों का रूप भी एक ही तरह का है। और केवल नुक्तों के द्वारा व्यंजनों का अन्तर स्पष्ट किया जाता है। नं० १ की प्रादेशिक लिपियों में केवल देवनागरी ही एक ऐसी लिपि है जिसे राष्ट्रीयलिपि कहा जा सकता है। पहले संस्कृत प्रादेशिक लिपियों में लिखी जाती थी किन्तु इधर संस्कृत लिखने के लिए देवनागरी निखिल भारतीय लिपि वन गई है। डॉ० चटर्जी के अनुसार देवनागरी तथा ब्राह्मी से प्रसूत अन्य लिपियों में निम्नलिखित त्रुटियाँ दीख पड़ती हैं और इनमें सुधार की गुंजायश है—

(१) लिखावट में देवनागरी तथा अन्य भारतीय लिपियाँ रोमन की अपेक्षा अधिक जटिल हैं।

(२) देवनागरी अक्षरात्मक लिपि है, रोमन की भाँति वर्णात्मक नहीं।

(३) संयुक्त वर्णों को देवनागरी में, लिखने में कठिनाई होती है क्योंकि कभी-कभी इसके लिए वर्णों के आधे रूप को ही लेना पड़ता है और कभी-कभी तो वर्णों का नया रूप ही वन जाता है।

ऊपर की त्रुटियों के सम्वन्ध में विचार करते हुए डॉ० चटर्जी लिखते हैं—संसार की लिपियों में भारतीय लिपियों की यह विशेषता उल्लेखनीय है कि इनके वर्णों के क्रम नितान्त वैज्ञानिक हैं। (स्वरों के अतिरिक्त इनके व्यंजन-वर्ण, कंठ, तालु, मूर्धा, दन्त तथा ओष्ठ से उच्चरित होनेवाले कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग तथा पवर्ग में विभक्त हैं।) जिन लोगों ने वर्णों को इस क्रम में सजाया था अथवा जिन लोगों ने यह वर्णमाला तैयार की थी, वे वास्तव में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उत्कृष्ट ध्वनि-शास्त्री थे ? किन्तु इसके साथ ही साथ विभिन्न भारतीय लिपियों के वर्णों के रूपों की कठिनाई भी कम नहीं है। सच बात तो यह है कि ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी की ब्राह्मी लिपि आज की नागरी तथा अन्य प्रादेशिक लिपियों की अपेक्षा अधिक सरल थी। उदाहरण स्वरूप मौर्य ब्राह्मी का + (क) आज की देवनागरी, बंगला, गुजराती तथा अन्य प्रादेशिक लिपियों की अपेक्षा सरल था। यही बात ब्राह्मी 'ख' और 'ग' के रूपों एवं अन्य वर्णों के सम्बन्ध में भी है। डॉ० चटर्जी ने अपने निबन्ध में जो लिपि प्रस्तावित की है उसके वर्ण तो रोमन के हैं किन्तु उन्हें भारतीय उच्चारण क्रम से सजाया गया है। अपनी इस लिपि में आप ने भारत की प्रसिद्ध प्राचीन एवं अर्वाचीन भाषाओं को शुद्ध रूप में लिखकर प्रदर्शित किया है।

आगे देवनागरी तथा रोमन लिपि सम्बन्धी तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जायेगा। इसी में डॉ० चटर्जी के विचारों की आलोचना का भी समावेश होगा। उसके पूर्व यहाँ आदर्श लिपि की विशेषताओं के सम्बन्ध में विचार किया जाता है।

आदर्श लिपि की विशेषताएँ

किसी भी भाषा की आदर्श लिपि वही हो सकती है जिसमें—

(क) एक ध्वनि को व्यक्त करने के लिए केवल एक चिह्न हो,

(ख) एक चिह्न केवल एक ही ध्वनि का बोधक हो,

(ग) मात्रा एवं वर्ण-बोधक चिह्न इतने भिन्न हों कि किन्हीं दो चिह्नों के स्वरूप में परस्पर कोई भ्रम न हो, और

(घ) चिह्न सुन्दर और कलात्मक होने के साथ-साथ आधुनिक लेखन और मुद्रण के यांत्रिक साधनों, जैसे टाइपराइटर, टेलीप्रिंटर, मद्रण-यंत्र आदि के लिए सरलता से अपनाए जा सकें।

ऊपर की विशेषताओं में से (क) और (ख) मुख्य विशेषताएँ तथा (ग) एवं (घ) गौण विशेषताएँ हैं।

किसी भी देश के लिए, जहाँ अनेक लिपियाँ प्रचलित हों, अपनाए जानेवाली सामान्यालपि में कतिपय और भी विशेषताएँ आवश्यक हैं; यथा—

(१) देश की अधिकाँश जनता उस लिपि से परिचित हो,

(२) देश में प्रचलित अन्य लिपियों से उसका घनिष्ठ सम्बन्ध हो,

(३) उस लिपि के वर्ण प्रचलित लिपियों के वर्णों के अनरूप हों तथा उसकी वर्णमाला का क्रम भी अन्य लिपियों के समान ही हो;

(४) और उस लिपि की देश में प्रतिष्ठा हो तथा जनता का उससे भावात्मक सम्बन्ध हो।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रोमन तथा देवनागरी लिपियों का तुलनात्मक विश्लेषण

ऊपर की विशेषताओं को ध्यान में रखकर जब हम नागरी एवं रोमन का तुलनात्मक अध्ययन करते हैं तो नागरी ही श्रेष्ठ लिपि ठहरती है क्योंकि जहाँ रोमन में एक ध्वनि को व्यक्त करने के लिए कई प्रतीक अथवा चिह्न हैं वहाँ नागरी में केवल एक ही प्रतीक है। पुनः यहाँ रोमन के विपरीत एक प्रतीक केवल एक ही ध्वनि का बोधक है। इसके मात्रा एवं वर्णबोधक प्रतीक भी भिन्न-भिन्न हैं तथा यह यांत्रिक दृष्टि से भी उपयुक्त लिपि है।

आज से कतिपय वर्ष पूर्व उत्तरी भारत में अरबी-फ़ारसी लिपि का काफी प्रचार-प्रसार था और आज भी एक विशेष वर्ग के लोगों में यह लिपि प्रचलित है किन्तु जैसा कि हम डॉ० चटर्जी का मत पहले उद्धृत कर चुके हैं, यह लिपि नितान्त अवैज्ञानिक है और आज के युग में एक सामान्यलिपि के रूप में उसे स्वीकार करना किसी प्रकार सम्भव नहीं है।

नागरीलिपि की आज यदि किसी लिपि से प्रतिद्वन्द्विता है तो वह एक मात्र रोमन लिपि से है। यह इसलिए नहीं है कि रोमन में किसी प्रकार की पूर्णता है अपितु इसका एक कारण यह है कि साम्यवादी (कम्युनिस्ट) देशों को छोड़ कर रोमन आज यूरप की एक सामान्य लिपि बन गई है तथा ओस्मानली तुर्की, इंडोनेशिया एवं कुछ अंशों में चीन तक ने इस लिपि को अपना लिया है। यहाँ एक बात यह उल्लेखनीय है कि एशिया के जिन देशों ने रोमन लिपि को अपनाया है उनके यहाँ नागरी जैसी ध्वन्यात्मक लिपि थी ही नहीं। जहाँ तक ओस्मानली तुर्की द्वारा रोमन लिपि को अपनाने की बात है, यहाँ पहले अरबी-फ़ारसी जैसी अवैज्ञानिक लिपि प्रचलित थी। रोमन की अपेक्षा रूसी लिपि अधिक ध्वन्यात्मक एवं पूर्ण है अतएव रूस ने अपने राज्य के तुर्की भाषी प्रदेशों में इधर हाल ही में रूसी लिपि को प्रचलित किया है। सच बात तो यह है कि जब भारत के पास, परम्परा से प्राप्त स्वतः अपनी एक पूर्ण ध्वन्यात्मक एवं वैज्ञानिक लिपि है तो वह रोमन जैसी अपूर्ण लिपि को ध्वन्यात्मक क्रम में सजाकर तथा उसे विविध चिह्नों से पूर्ण बनाकर क्यों स्वीकार करे?

डॉ० चटर्जी ने नागरी लिपि की एक यह त्रुटि बतलाई है कि यह अक्षरात्मक लिपि है अतएव इसके द्वारा ध्वनियों का ठीक ढंग से विश्लेषण नहीं हो पाता। इस सम्बन्ध में यह निवेदन है कि नागरी अर्द्ध अक्षरात्मक लिपि है और इसकी लेखन प्रणाली में किंचित् परिवर्तन करके इसे ऐसा बनाया जा सकता है कि इसके द्वारा ध्वनियों का विश्लेषण आसानी से होने लगे। अब रही संयुक्त वर्णों अथवा व्यंजन गुच्छों को नागरी में लिखने की कठिनाई की बात,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सो इधर नागरी लिपि में सुधार कर तथा उसे मानकरूप देकर यह कठिनाई भी बहुत कुछ दूर कर दी गई है।

इधर नागरी के जो नये टाइपराइटर बने हैं वे पहले की अपेक्षा बेहतर हैं। आशा है, नवीन खोजों के परिणाम स्वरूप ये भविष्य में और भी बेहतर हो जायँगे। इसीप्रकार नागरी में मोनोटाइप के आविष्कार एवं प्रयोग से जहाँ एक ओर इसकी छपाई में गति एवं सुविधा आई है वहाँ दूसरी ओर नागरी टेलीप्रिंटर के कारण हिन्दी के दैनिक समाचार पत्र अब अँग्रेजी दैनिकों से होड़ लेने लगे हैं। इस तरह नई खोजों के फलस्वरूप यांत्रिक दृष्टि से भी नागरी पूर्ण लिपि बनती जा रही है और आवश्यकतानुसार विविध चिह्नों से युक्त करके इसे और भी पूर्ण बनाया जा सकता है। यहाँ यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि कोई भी लिपि स्वतः पूर्ण नहीं होती अपितु उसे पूर्ण बनाना पड़ता है।

नागरी और एकमात्र नागरी

आज सम्पूर्ण भारत राष्ट्र की एकता को दृष्टि में रखकर सामान्य लिपि के रूप में नागरी को स्वीकार करने के अतिरिक्त और कोई अन्य विकल्प नहीं है। जैसा कि इस लेख में अन्यत्र दिखाया जा चुका है, पिछले एक सहस्र वर्ष से अधिक समय से, देवनागरी भारत की सर्वाधिक प्रचलित एवं जनप्रिय लिपि रही है। आज भी हिमाचल प्रदेश, दक्षिण पंजाब, दिल्ली, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश, बिहार तथा महाराष्ट्र में इसका बहुलता से प्रयोग हो रहा है। बंगला, गुजराती एवं गुरुमुखी लिपियाँ देवनागरी से बहुत-कुछ मिलती-जुलती हैं। नेपाल की भाषाओं—गुरखाली एवं नेवारी—के लिए भी देवनागरी लिपि का प्रयोग चल रहा है। बिहार की मुंडा परिवार की कई भाषाएँ भी आज देवनागरी लिपि में ही लिखी जा रही हैं।

संस्कृत तथा प्राकृतों के लिए अखिल भारतीय स्तर पर देवनागरी का प्रयोग पिछली शताब्दी से अधिकाधिक होने लगा है। एक समय था जब संस्कृत को लिखने के लिए शारदा, बंगला, असमिया, तेलुगु, ग्रंथ, मैथिल, मलयालम आदि प्रादेशिक लिपियों का प्रयोग होता था किन्तु सन् १८६० से जब से मैक्समूलर ने संस्कृत-ग्रंथों की छपाई के लिए देवनागरी लिपि को अपनाया तब से यह संस्कृत की एकमात्र लिपि बन गई। आज यूरोप में कोई भी प्राच्य-विद्या-प्रेमी ऐसा नहीं है जो नागरी लिपि से परिचित न हो। अमेरिका के हारवर्ड ओरियण्टल सिरीज में संस्कृत के ग्रंथ एवं संकलन देवनागरी लिपि में ही प्रकाशित हुए हैं और अमेरिका, पूर्वी साम्यवादी देश एवं रूस के सभी संस्कृत एवं हिन्दी पढ़नेवाले छात्र इस लिपि से परिचित हैं। इधर जब से नालन्दा (बिहार)

८

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

से, पालि त्रिपिटक का प्रामाणिक एवं सुसम्पादित संस्करण नागराक्षरों में प्रकाशित हुआ है तब से सिंहल, वर्मा, थाई (स्याम) एवं कम्वोडिया आदि देशों के पालि के पंडित एवं प्रेमी भी नागरीलिपि से विशेष रूप से परिचय प्राप्त करने लगे हैं।

जैसा कि अन्यत्र कहा जा चुका है, भारत की ही नहीं, अपितु भारत के बाहर की वर्मी, सिंहली, थाई, तिब्बती तथा एशिया के पूर्वी द्वीपों की लिपियाँ भी ब्राह्मी से ही प्रसूत हैं और उनके वर्णों का क्रम भी देवनागरी का ही है। और इस प्रकार ये सभी लिपियाँ सहोदरा हैं, अतएव दक्षिणी-पूर्वी एशिया की एकता की दृष्टि से भी नागरी को भारत की राष्ट्रलिपि स्वीकार करना आवश्यक है।

नागरीलिपि में सुधार

जैसा कि पहले लिखा जा चुका है नागरी तथा भारत की अन्य लिपियाँ ब्राह्मी से ही विकसित हुई हैं। इस विकास का भी एक लम्बा इतिहास है, जिसमें विविध परिस्थितियों का भी पूरा योग है। इधर जब नागरी को रोमन के मुकाबले में आना पड़ा तब उसके समक्ष एक नवीन समस्या आ खड़ी हुई। यद्यपि रोमन लिपि में कई दोष हैं किन्तु इसमें कतिपय गुण भी हैं जिससे उसका विश्व में प्रसार होता जा रहा है। इधर तुर्की तथा अफ्रीका के कई प्रदेशों में, जहाँ पहले सामी लिपि प्रचलित थी, रोमन अपना ली गई है। जिस तीव्र गति से रोमन का प्रचार बढ़ रहा है उसे देखते हुए यह प्रतीत हो रहा है कि निकट भविष्य में सामी लिपि केवल कतिपय विशेषज्ञों तक सीमित रह जायगी तथा उसका स्थान रोमनलिपि ग्रहण कर लेगी। वर्णनात्मक लिपि के साथ-साथ रोमन लिपि की अल्प संख्या, उसके वर्णों के अति सरलरूप तथा टंकन एवं छपाई की सुविधा ने भी संसार के लोगों का ध्यान इसकी ओर आकृष्ट किया है। इस बीसवीं शताब्दी में विज्ञान ने एक ओर जहाँ रोमन को छपाई आदि कार्यों में अनेक सुविधाएँ प्रदान की है वहाँ दूसरी ओर नागरी इन सुविधाओं से बहुत दिनों तक वंचित थी। यह बात नागरी के समर्थकों को बहुत अखरी। फिर क्या था, अनेक व्यक्ति नागरी-लिपि के सुधार के लिए कटिवद्ध हो गए। इन सुधारकों में कई व्यक्ति ऐसे भी थे जो न तो नागरी के इतिहास एवं परम्परा से ही परिचित थे और न वर्णात्मक तथा अक्षरात्मक लिपि के अन्तर को ही जानते थे। हाँ, इनमें से कुछ लोग ऐसे अवश्य थे जिन्हें टाइप तथा छपाई आदि का पूरा ज्ञान था और इस दृष्टि से वे लिपि-सुधार के सम्बन्ध में जो राय देते थे उसमें पर्याप्त मात्रा में व्यावहारिकता थी।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यहाँ एक बात और स्मरण रखने योग्य है, नागरीलिपि के सुधार का कार्य यहाँ उस समय प्रारम्भ हुआ था, जब देश परतंत्र था और जब राजकार्य में न तो नागरी का व्यवहार ही आवश्यक था और न वह राष्ट्र-लिपि के रूप में ही स्वीकृत थी। उस समय चारों ओर से यह आवाज सुनाई पड़ती थी कि नागरी, टाइप राइटर के लिए अयोग्य है, इसके लिखने में गति नहीं है और इसकी छपाई में भी शिथिलता है। इधर विधान द्वारा नागरी के राष्ट्रलिपि घोषित होते ही बिना किसी प्रकार के सुधार के ही इसमें टेलीप्रिंटर (जिसके द्वारा समाचारपत्रों के लिए देश-विदेश के समाचार छप जाते हैं) तथा मोर्सकोड (जिसके द्वारा तार भेजे जाते हैं) का आविष्कार हो गया; और कई ऐसे नये टाइप राइटर भी बन गए जिन्हें पर्याप्त मात्रा में सुधरा हुआ तथा सफल कहा जा सकता है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि यथासम्भव शीघ्र ही नागरी भी यांत्रिक दृष्टि से पूर्णलिपि बन जायगी।

नागरीलिपि के सुधार का इतिहास तथा इसमें परिवर्तन-सम्बन्धी सुझाव

सम्भवतः 'अ' की बारहखड़ी (यथा, अ, आ, अि, अी, अु, अू, अे, अै, आदि) का प्रचलन सर्वप्रथम महाराष्ट्र के सावरकर-बन्धुओं ने किया था तथा व्यावहारिक रूप में इसे मराठी समाचारपत्रों ने अपनाया था। उधर हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के सन् १९३५ के २४वें अधिवेशन, इन्दौर, में राष्ट्रपिता गांधीजी के सभापतित्व में, नागरीलिपि में सुधार के लिए एक छोटी उपसमिति बनाई गई तथा श्री काका कालेलकर इसके संयोजक नियुक्त किये गये। बापू के मन में बहुत दिनों से यह बात चल रही थी कि किसी प्रकार यदि देवनागरी लिपि के वर्णों की संख्या में कुछ कमी हो जाय तो देश की साक्षरता में उससे सहायता मिले। इसी के परिणामस्वरूप इस समिति का निर्माण भी हुआ। कई वर्षों के निरन्तर उद्योग के बाद सम्मेलन ने निम्नलिखित १४ सुझावों को स्वीकार किया––

१. नागरी को लिखने में शिरोरेखा लगाना आवश्यक नहीं है। छपाई में साधारणरीति से शिरोरेखा लगाना ही नियम रहे। किन्तु विशेषस्थानों में अक्षरों की विभिन्नता प्रकट करने के लिए शिरोरेखा हीन अक्षर भी प्रयुक्त हो सकते हैं। सम्मेलन की सिफारिश है कि विशेष या छोटे अक्षरों में, जहाँ शिरोरेखा होने से छपाई की स्पष्टता में कमी आ जाती हो, वहाँ शिरोरेखा-विहीन अक्षरों का प्रयोग करना अच्छा होगा।

२. प्रत्येक वर्ण ध्वनि के उच्चारण क्रम से लिखा जाय।

(क) जब तक कोई सन्तोषजनक रूप सामने न आए तब तक 'इ' की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मात्रा अपवाद रूप से वर्तमान पद्धति के अनुसार ही 'ि' लिखी जाय; यथा—ओिर'।

(ख) ए, ऐ की मात्राएँ वर्ण के ठीक ऊपर न लगाकर दाहिनी ओर जरा हटाकर वर्तमान पद्धति के अनुसार ऊपर लगाई जायँ; यथा—देवता, अनेक।

ओ और औ भी ऊपर के सिद्धान्त के अनुसार ही लिखे जायँ; यथा—ओल़ा, औरत।

(ग) ऊ, उ, ऋ की मात्राएँ अक्षर के बाद आएँ और पंक्ति में ही लिखी जायँ; यथा—कुटिल, पूजा, सृष्टि।

(घ) अनुस्वार और अनुनासिक के चिह्न भी अक्षर के बाद ऊपर लिखे जायँ; यथा—अंश।

(ङ) रेफ, से व्यक्त होने वाला अर्द्ध 'र' उच्चारण क्रम से यथास्थान लिखा जाय; यथा—धर्म।

(च) संयुक्ताक्षर में द्वितीय 'र' सामान्यरूप से लिखा जाय; यथा—प्र, त्र।

(छ) संयुक्ताक्षर में भी, सर्वत्र, वर्ण उच्चारण-क्रम से एक के पीछे एक लिखे जायँ; यथा—द्‌वारका (द्वारका नहीं), विद्‌वत्ता (विद्वत्ता नहीं)।

३. स्वरों और मात्राओं में समानता तथा सामंजस्य करने के लिए इ ई, उ ऊ, के वर्तमान रूप छोड़कर केवल 'अ' में ही इन स्वरों की मात्राएँ लगाकर इन स्वरों के मूलस्वरूप का बोध कराया जाय; अर्थात् अ की बारहखड़ी की जाय; यथा—अ, आ, अि, अी, अु, अू, अे, अै, ओ, औ, अं, अः।

४. दक्षिण की लिपिओं के स्वरों में ह्रस्व 'ए' और ह्रस्व 'ओ' के स्वरूप आते हैं, उनके लिए ह्रस्व मात्राएँ बनाई जायँ।

५. पूर्ण अनुस्वार के स्थान पर '०' लगाया जाय और अनुनासिक के लिए केवल बिंदी '' लिखी जाय, यथा—सिंह, चांद। व्यंजन के पूर्व हलन्त ङ०; ञ, ण, न, म, की जगह पर जहाँ प्रतिकूलता न हो (यथावाङ्०मय तन्मय) अनुस्वार लिखा जाय; यथा—च चल, प०थ, प०प, आदि।

६. छपने में अक्षरों के नीचे बाईं ओर यदि अनुकूल स्थान पर बिंदी लगाई जाय तो उसका अभिप्राय होगा कि उस अक्षर की ध्वनि उस अक्षर की मूलध्वनि से भिन्न है। उस ध्वनि का निर्णय प्रचलन के अनुसार होगा; यथा—फारसी, क़, ख़, ग़, ज़, फ़; मराठी च़, सिन्धी ज़ इत्यादि।

७. विराम-चिह्न आजकल सब भारतीय भाषाओं में जैसे प्रचलित हैं वैसे ही कायम रखे जायँ, पूर्ण विराम का चिह्न पाई '।' रहे।

८. अंकों के स्वरूप इस प्रकार रहें—१, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, ०।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

९. वर्तमान 'ख' के स्वरूप का परिवर्तन करना आवश्यक है। उसके स्थान पर गुजराती ख स्वीकार किया जाय।

१०. अ, झ, ण की जगह बम्बई के अ, झ, ण रखे जायँ और 'ल' 'श' की जगह हिन्दी के रूप 'ल', 'श' रखे जायँ। 'क्ष' का 'क्ष' रूप प्रचलित किया जाय। बीजगणित आदि वैज्ञानिक साहित्य में 'क्ष' आ सकता है।

११. मराठी, गुजराती, कन्नड, तेलुगु आदि भाषाओं में विशिष्ट ध्वनि के लिए जो ळ प्रयुक्त होता है, वही रखा जाय, 'ड' या 'ल' से न व्यक्त किया जाय।

१२. ज्ञ के उच्चारण में प्रान्तीय भिन्नता होने से 'ज्ञ' का रूप जैसा है, वैसे ही रखा जाय।

१३. संयुक्त अक्षरों के बनाने के लिए जिन वर्णों में खड़ी पाई अन्तिम भाग में है, जैसे ख, ग, घ, च, ज, ञ, त, थ, ध, न, प, ब, भ, म, य, ल, व, श, ष, स—उनका संयोज्यरूप खड़ीपाई हटाकर समझा जाय; यथा—ख्, ग्, ध्, च्, ज्, त्, थ्, न्, प्, ब्, इत्यादि। क और फ का वर्तमान संयोज्य रूप क्, फ् स्वीकृत किया जाय।

जिन अक्षरों के अन्तिम भाग में खड़ी पाई नहीं है उनका संयोज्यरूप (-) चिह्न लगाकर समझा जाय संयोजक चिह्न पिछले अक्षर से मिला रहे, यथा—विद्-या, विट्-ठल, उच्छ्-वासु, वुड्-ढा, ब्रह्-मा।

१४. शिरोरेखा हटाकर लिखने में भ और ध को म और घ से पृथक् करने हेतु भ और ध में गुजराती की तरह घुंडी लगाई जाय।

ऊपर के सुझावों का व्यावहारिक प्रयोग राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति वर्धा, द्वारा संचालित परीक्षाओं तथा वहाँ से प्रकाशित पुस्तकों में तो हुआ किन्तु जिन प्रदेशों में साहित्यिक भाषा के रूप में हिन्दी का प्रसार था, वहाँ ये सुझाव स्वीकृत एवं कार्यान्वित न हो सके। इसका सर्वाधिक विरोध तो काशी के हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अधिवेशन में हुआ और इसके विरोधियों में प्रमुख स्थान नागरी-प्रचारिणी-सभा के सदस्यों का था। सम्मेलन के ऊपर के सुझावों में से अधिकांश व्यावहारिक थे, किन्तु उस समय नागरी-प्रचारिणी-सभा किसी प्रकार के सुधार के लिए तैयार न थी।

काशी-सम्मेलन के ठीक दस वर्ष बाद, सन् १९४५ में, न जाने किस प्रेरणा से नागरी-प्रचारिणी-सभा ने यह निश्चय किया कि उपयोगिता और प्रचार की दृष्टि से वर्तमान नागरी-लिपि में सुधार और पुनःसंस्कार की आवश्यकता है। इसके साथ ही सभा ने सुधार के सम्बन्ध में कतिपय सिद्धान्त भी निर्धारित किए और अपनी ओर से देश के प्रमुख हिन्दी-पत्रों में यह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सूचना प्रकाशित की कि इस दिशा में कार्य करनेवाले सज्जन और संस्थाएँ अपने-अपने प्रयत्न की सूचना और सामग्री सभा की समिति के पास भेजने की कृपा करें। अन्त में श्री श्रीनिवास का प्रयत्न ही समिति को विशेष संगत प्रतीत हुआ। श्रीनिवास ने बड़े प्रयत्न से अपनी प्रस्तावित वर्णमाला में एक-रूपता लाने का उद्योग किया है; किन्तु इतने पर भी इस लिपि में अनेक त्रुटियाँ हैं। आप के प्रस्तावित सुधार में सब से पहली त्रुटि यह है कि इसमें नागरी के अनेक वर्णों का रूप विकृत हो गया है। आपने अपनी वर्णमाला में समूचे 'अ' की बारह खड़ी नहीं की है जो विज्ञान एवं व्यवहार, दोनों दृष्टियों से भ्रामक और अशुद्ध है। इसके अतिरिक्त अल्पप्राण वर्ण में हीं, प्राण जोड़कर आपने महाप्राण बनाया है। यह प्राणचिह्न इतना सूक्ष्म है कि अस्पष्टता के कारण कुछ का कुछ पढ़ा जा सकता है।

छपाई को दृष्टि में रखकर डॉ० गोरखप्रसाद ने भी कतिपय व्यावहारिक सुझाव दिया था। आपका पहला प्रस्ताव यह था कि 'उ, ऊ, ए, ऐ, तथा अं की मात्राओं को थोड़ा-सा दाहिनी ओर हटा कर लगाया जाय। इससे यह लाभ होगा कि ७०० के बदले केवल १५० या यदि सभी वर्तमान संयुक्ताक्षर रखे जायँ तो २०० टाइपों से कम्पोजिंग हो जाया करेगी। वर्तमान टाइपों से भी, बिना उनमें किसी प्रकार का परिवर्तन किए, इतने में कम्पोजिंग का काम चल सकेगा। डॉ० प्रसाद का दूसरा सुझाव यह था कि छोटे (८ पाइंट से कम) अक्षरों के कम्पोज करने में शिरोरेखा विहीन अक्षरों से काम लिया जाय। आपने इस प्रकार के टाइप से थोड़ा मैटर छाप कर दिखलाया भी। इसमें सन्देह नहीं कि शिरोरेखा-हीन इन छोटे टाइपों के अक्षर स्पष्ट हैं और इन्हें पढ़ने में कठिनाई नहीं होती। इस टाइप में कोश आदि छापने से उनका मूल्य आधा हो जायेगा और छपाई के संसार में क्रान्ति मच जायगी। आप के इस सुझाव में इसके अतिरिक्त कोई त्रुटि नहीं है कि शिरोहीन नागरी लिपि सुन्दर नहीं प्रतीत होती।

उत्तरप्रदेश सरकार द्वारा नागरी लिपि के सुधार का प्रयत्न

उत्तरप्रदेश की सरकार ने भी आचार्य नरेन्द्रदेव की अध्यक्षता में नागरी-लिपि-सुधार-समिति का निर्माण किया। इस समिति का संघटन ३१ जुलाई सन् १९४७ में हुआ था। समिति की कुल नौ बैठकें हुईं। केन्द्रीय-शासन की ओर से जो हिन्दुस्तानी शीघ्रलिपि तथा लेखन-यंत्र समिति, सन् १९४८ में नियुक्त हुई थी, उसके साथ भी इस समिति ने विचार-विमर्श किया। जो योजनाएँ इस समिति के पास विशेषज्ञों ने भेजी थीं, उन पर भी समिति ने समुचित

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विचार किया तथा कुछ सज्जनों का साक्ष्य भी लिया। अन्त में इस समिति ने २५-५-४९ को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इस रिपोर्ट में समिति ने अपने नकारात्मक तथा स्वीकारात्मक, दोनों प्रकार के सुझावों को प्रस्तुत किया। समिति के नकारात्मक निश्चय निम्नलिखित हैं—

१. निश्चय हुआ कि श्री श्रीनिवासजी के एकमात्रिक एवं द्विमात्रिक आदि स्वरों के भेद समिति को मान्य नहीं हो सकते।
२. 'अ' की बारहखड़ी अथवा काका कालेलकर के अनुसार 'अ' की स्वराखड़ी नहीं बनाई जा सकती।
३. 'इ' की मात्रा को छोड़कर अन्य मात्राओं के वर्तमान स्वरूप में परिवर्तन न किया जाय।
४. किसी व्यंजन के नीचे कोई दूसरा व्यंजन वर्ण न लगाया जाय।
५. कुछ लोग नागरीलिपि में सुधार के नाम पर आमूल परिवर्तन करना चाहते हैं। इन सुधारों के वांछनीय न होने के कारण उन पर विचार करने के लिए उनके प्रेषकों को बुलाने की आवश्यकता नहीं है।
६. केवल मशीन की सुविधा के लिए कोई अवांछनीय परिवर्तन न किए जायँ।

ऊपर के नकारात्मक निश्चयों के देखने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि समिति कितनी सावधानी से लिपि-सुधार के कार्य में प्रवृत्त हुई थी। अब नीचे समिति के स्वीकारात्मक सुझाव (सिद्धान्तगत अनुरोध) दिए जाते हैं—

साधारणलिपि-सम्बन्धी अनुरोध—

१. मुद्रण टाइपराइटिंग की सुविधा के लिए आवश्यकतानुसार मात्राओं को थोड़ा हटाकर केवल दाहिनी ओर ही, बगल में ऊपर और नीचे लगाया जाय, यथा—
महात्मा गांधी, पटेल, कैकेयी, संपूर्ण, आदि।
२. शुद्ध अनुस्वार के स्थान पर '०' शून्य लगाया जाय। व्यंजन के हलन्त ङ्, ञ्, ण्, न्, म् की जगह पर जहाँ प्रतिकूलता न हो (यथा—वाङ्मय, तन्मय) शून्य लिखा जाय। अनुनासिक स्वर के लिए '˙' बिन्दी का प्रयोग हो; यथा—हँसना, किन्तु हंस (पक्षी विशेष)।
३. शिरोरेखा लगाई जाय।
४. ऋ, लृ की मात्राएँ भी अन्य मात्राओं के ही सदृश थोड़ा हटाकर दाहिनी ओर नीचे लगाई जायँ।
५. जिन वर्णों का उत्तरार्ध खड़ी पाई युक्त हो उनका आधारूप खड़ी पाई निकाल कर बनाया जाय, यथा—ग (पूर्ण रूप) ग़ (अर्ध रूप); उदाहरण—वक्त्र (वक्र), घर्‌म (घर्म), वस्त्र (वस्त्र)।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

६. जिन वर्णों का उत्तरार्ध खड़ी पाई युक्त नहीं है उनका आधा रूप 'क' और 'फ' को छोड़कर हल चिह्न मात्राओं के ही समान, बगल में, नीचे की ओर लगाकर बनाया जाय; यथा—'ङ' का आधारूप ङ्; राष्ट्र (राष्ट्र), विद्या (विद्या), ब्राह्मण (ब्राह्मण) ।

७. ह्रस्व 'इ' की मात्रा भी दाहिनी ओर लगाई जाय ।

समिति के स्वीकारात्मक सुझाव (रूपगत अनुरोध)

(१) स्वरों में 'अ' का रूप अब केवल 'अ' रहेगा ।

(२) व्यंजनों में छ, झ, ण, ध, भ, र, ल, ह के केवल निम्नलिखित रूप ही स्वीकृत हुए हैं—छ, झ, ण, ध, भ, र, ल और ह ।

(३) मात्राओं में ह्रस्व 'इ' की मात्रा का रूप ी होगा ।

(४) क्ष और त्र के स्थान पर क्ष और त्र से काम लिया जायेगा । इस प्रकार इन परिवर्तनों के हो जाने के अनन्तर हमारी वर्ण माला और अंकों का लिपिसुधार-समिति की ओर से अनुरोधित रूप निम्नांकित ढंग का होगा—

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ ०

अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ

ओ औ ऋ अं अः

क ख ग घ ङ

च छ ज झ ञ

ट ठ ड ढ ण

त थ द ध न

प फ ब भ म

य र ल व श

ष स ह ज्ञ

विशेष अक्षर श्र, ओउम् तथा ळ होंगे ।

(५) विराम चिह्न यथासम्भव वे सब ले लिए जायँ जो इस समय अँग्रेजी में प्रचलित हैं । केवल पूर्ण-विराम के लिए खड़ीपाई स्वीकार की जाय ।

यदि समिति के सुधार-सम्बन्धी ऊपर के सुझावों का विश्लेषण किया जाय तो स्पष्ट रूप से ज्ञात होगा कि समिति ने यथासम्भव कम-से-कम ही सुधार किया है । कतिपय सुधार सम्बन्धी सुझावों के साथ-साथ समिति ने जो सब से महत्त्वपूर्ण कार्य किया है वह है नागरीलिपि का स्थिरीकरण (Standardisation) । इस समय विभिन्न प्रदेशों में कई वर्णों के दो रूप लिखने तथा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

छापने में चालू हैं; उदाहरण स्वरूप निम्नलिखित वर्णों के इस समय दो रूप प्रचलित हैं—

(१) अ छ झ ल र ह ध भ

(२) अ छ झ ळ ɿ ह ध भ

ऊपर नं० १ के अक्षर प्रायः उत्तरप्रदेश में प्रचलित हैं किन्तु दूसरी पंक्ति के ɿ, ध तथा भ अक्षरों को छोड़कर शेष उत्तर प्रदेश से सर्वथा बहिष्कृत हैं, ऐसी बात भी नहीं है। इसके साथ नं० (२) के अक्षर बम्बइया टाइप में उपलब्ध हैं और निर्णयसागर प्रेस की संस्कृत की तथा बम्बई से प्रकाशित होने वाली हिन्दी की पुस्तकें भी प्रायः इसी टाइप में छपती हैं। बम्बइया टाइप वाले अक्षर ही समस्त महाराष्ट्र में प्रचलित हैं और 'ध' एवं 'भ' तो स्पष्ट-रूप से गुजराती हैं। अब प्रश्न यह उठता है क एक ही अक्षर के इन दो रूपों में से किस एक को स्वीकार किया जाय ? प्रचलन की दृष्टि से नं०२ के अक्षरों को ही स्वीकार करना उचित है। और समिति ने यही किया भी। 'झ' के इस दूसरेवाले रूप को इसलिए स्वीकार करने की जरूरत है कि पहली पंक्ति के 'झ' के आगे वाले भाग के टूटने से यह 'भ' बन जाता है और दूसरी पंक्ति के घुंडी वाले ध और भ इसलिए मान लेने की आवश्यकता है कि पहली पंक्ति के 'ध' एवं 'भ' के 'घ' तथा 'म' में परिणत होने की सदैव आशंका रहती है। स्थिरीकरण की दृष्टि से समिति के ये सुझाव अत्यधिक महत्त्व के हैं।

नरेन्द्रदेव कमेटी की रिपोर्ट के बाद, नवम्बर सन् १९५३ ई० में उत्तर प्रदेश शासन ने नागरीलिपि में सुधार-सम्बन्धी सुझावों पर विचार करने के लिए लखनऊ में विभिन्न राज्यों के मंत्रियों तथा कतिपय चुने हुए विद्वानों की एक सभा की। जहाँ तक अक्षरों के रूप से सम्बन्ध है, इस सभा में आमंत्रित विद्वानों ने एक-दो परिवर्तनों के साथ नरेन्द्र देव-समिति द्वारा सुझाए हुए रूपों को स्वीकार कर लिया। इन में से एक परिवर्तन 'ख' के सम्बन्ध में था। इसके रूप में दोष यह था कि इस में प्रायः 'र' और 'व' का भ्रम हो जाता है। यही कारण है कि इस सभा में समवेत विद्वानों ने इसे यह (ख) रूप दिया। नरेन्द्रदेव समिति ने 'क्ष' को स्वतंत्र अक्षर के रूप में स्वीकार नहीं किया था किन्तु लखनऊ की सभा ने इसकी स्वतंत्र सत्ता स्वीकार कर ली। नरेन्द्र देव-समिति ने ह्रस्व 'इ' की मात्रा को जो रूप दिया था, उसे इस समिति ने बदल दिया, यथा— हीन्दी (=हिन्दी)। संयुक्ताक्षरों के सम्बन्ध में इस सभा ने हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन तथा नरेन्द्रदेव-समिति के सुझावों को प्रायः उसी रूप में स्वीकार कर लिया।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जनवरी सन् १९५५ में भारत सरकार ने लखनऊ-सम्मेलन (सभा) की सिफारिशों को स्वीकार कर लिया तथा उसने सभी राज्य-सरकारों को लिखा कि जहाँ-जहाँ नागरीलिपि का प्रयोग करना हो, यह संशोधित लिपि ही काम में लाई जाय। राज्य सरकारों से जो उत्तर प्राप्त हुए उनसे पता चला कि बहुत-सी राज्य-सरकारें लखनऊ-सम्मेलन की सिफारिशों से सहमत नहीं थीं। इसके अतिरिक्त हिन्दी-जगत् ने भी इनमें से अनेक सिफ़ारिशों का स्वागत नहीं किया। जहाँ तक सुधरे हुए अक्षरों के रूप का प्रश्न था, लोगों को उतनी आपत्ति नहीं थी, किन्तु ह्रस्व 'इ' की मात्रा तथा संयुक्ताक्षर (विशेषरूप से 'र' के साथ संयुक्त वर्ण, यथा=प्रेम (=प्रेम), शीघ्रता (=शीघ्रता), क्षेत्र (=क्षेत्र)) आदि के रूप से हिन्दी-क्षेत्र के लोग भी बुरी तरह भड़कते थे। सन् १९५३ से १९५७ तक की चार वर्ष की अवधि में उत्तरप्रदेश की सरकार भी इन सिफारिशों को कार्यान्वित न कर सकी। अतएव उत्तरप्रदेश की सरकार ने लिपि-सुधार के प्रश्न पर पुनः विचार करने के लिए अक्तूबर १९५७ में लखनऊ में दूसरा सम्मेलन बुलाया। इस सम्मेलन ने पहले सम्मेलन के निर्णयों में परिवर्तन-संशोधन किया। इनमें से ऊपर के दो संशोधन मुख्य थे। दूसरे शब्दों में इस सम्मेलन ने ह्रस्व 'इ' तथा 'र' के संयुक्ताक्षर को पूर्ववत् कर दिया।

इस विषय पर भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय ने पुनः विचार किया और इसे शिक्षा-मंत्री सम्मेलन में प्रस्तुत करने का निश्चय किया। इससे पहले कि यह मामला शिक्षा-मंत्री सम्मेलन में उपस्थित किया जाय, शिक्षा मंत्रालय ने विशेषज्ञों का एक सम्मेलन बुलाया और इस विषय में उनकी राय ली। तदुपरान्त ८ और ९ अगस्त सन् १९५९ को सारा मामला शिक्षा-मंत्री सम्मेलन में रखा गया, जिसमें १९५३ के लखनऊ सम्मेलन की सिफारिशों को १९५७ के लखनऊ-सम्मेलन द्वारा किए गए परिवर्तन-संशोधन के साथ कुछ स्पष्टीकरण-सहित स्वीकार कर लिया गया।

सामान्य-लिपि के रूप में देवनागरी की स्वीकृति

यद्यपि देवनागरी की मानक लिपि तैयार हो गई किन्तु इसके बाद समस्त देश की एकता की दृष्टि से सामान्यलिपि के रूप में भी देवनागरी की स्वीकृति की आवश्यकता प्रतीत होने लगी। उधर १०, ११, १२ अगस्त सन् १९६१ को राज्यों के मुख्य-मंत्रियों और केन्द्रीय मंत्रियों का एक सम्मेलन दिल्ली में हुआ। सम्मेलन ने एकमत होकर यह राय दी कि समस्त भारतीय भाषाओं के लिए एक सामान्यलिपि का होना ही वांछनीय नहीं, आवश्यक भी है; क्योंकि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ऐसी लिपि भारतीय भाषाओं के बीच एक सेतु का काम करेगी और उससे भी भावात्मक एकता को बढ़ावा मिलेगा। सम्मेलन की वर्तमान परिस्थिति को देखते हुए देवनागरी लिपि ही ऐसी लिपि हो सकती है।

देवनागरी में नवीन प्रतीकों का समावेश

देवनागरी लिपि को अखिल भारतीय लिपि का स्वरूप और क्षमता देने के उद्देश्य से उसमें हिंदीतर भाषाओं की विशिष्ट ध्वनियों के लिए नवीन प्रतीकों का समावेश आवश्यक था। इस कार्य के लिए सन् १९६१ में भारत-सरकार ने एक भाषाविद् समिति का संगठन किया। इस समिति ने अपनी सिफारिशें सरकार के पास भेज दीं और अन्त में सरकार ने इन्हें स्वीकार भी कर लिया।

'मानक देवनागरी' (जिसमें हिंदीतर भाषाओं की विशिष्ट ध्वनियों का भी समावेश है) तथा समस्त भारतीय भाषाओं के लिए 'सामान्य राष्ट्रलिपि', 'परिवर्द्धित देवनागरी' नाम की दो पुस्तिकाएँ, नवम्बर सन् १९६६ ई० में, भारत सरकार ने प्रकाशित कीं तथा समस्त देश के चुने हुए विद्वानों की दिल्ली में एक सभा बुलाकर उनकी स्वीकृति प्राप्त की। दूसरी पुस्तिका में, सरकार ने अपने निर्णयों की व्यावहारिकता दर्शाने के लिए भारत के संविधान की आठवीं अनुसूची में उल्लिखित चौदह भाषाओं में लिखित अनुच्छेद ३५१ का देवनागरी लिप्यन्तरण भी दिया है।

मानक देवनागरी

स्वर

अ आ इ ई उ ऊ ऋ ऌ ए ऐ

ओ औ अं अः

मात्राएं

ा ि ी ु ू ृ े ै ो ौ ं ः

व्यंजन

क	ख	ग	घ	ङ
च	छ	ज		ञ
ट	ठ	ड	ढ	ण
त	थ	द	ध	न
प	फ	ब	भ	म

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

य र ल व

श ष स ह ड़ ढ़ ळ

क्ष ज्ञ श्र

अंक

१, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, ०

स्पष्टीकरण

१. हिंदी में ॠ (दीर्घ ॠ) का प्रयोग नहीं होता, अतः इसे स्वरों में सम्मिलित नहीं किया गया है।

२. संयुक्ताक्षर

(१) खड़ी पाईवाले व्यंजन :

ख ग घ च ज झ ञ ण त थ द ध न

प ब भ म य ल व श ष क्ष ज्ञ

खड़ी पाईवाले व्यंजनों का संयुक्त रूप खड़ी पाई को हटाकर ही बनाया जाना चाहिए। यथा :

ख्याति, लग्न, विघ्न, कच्चा, छज्जा, व्यंजन, नगण्य, कुत्ता, पथ्य, ध्वनि, न्यास, प्यास, डिब्बा, सभ्य, रम्य, शय्या, उल्लेख, व्यास, श्लोक, राष्ट्रीय, स्वीकृत, यक्ष्मा।

(२) अन्य व्यंजन :

(क) 'क' और 'फ' के संयुक्ताक्षर बनाने का वर्तमान ढंग ही कायम रहेगा। यथा : संयुक्त, पक्का, दफ्तर। (संयुक्त, पक्का, दफ्तर नहीं)

(ख) ङ, छ, ट, ठ, ड, ढ और द के संयुक्ताक्षर हल् चिह्न लगा कर ही बनाए जायें। यथा :

वाङ्मय, लट्टू, बुड्ढा, विद्या आदि

(वाङ्मय, लट्टू, बुड्ढा, विद्या नहीं)

(ग). संयुक्त 'र' के पुराने तीनों रूप यथावत रहेंगे। यथा :

प्रकार, धर्म, राष्ट्र।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(घ) 'श्र' का पुराना रूप जैसा 'श्री' में है वैसा ही क़ायम रहेगा।
(ङ) 'त्र' के स्थान पर अब 'त' और 'र' का संयुक्त अक्षर 'त्र' रहेगा। (परंतु आगे चल कर पूर्व प्रचलित रूप 'त्र' भी स्वीकार कर लिया गया है।)
(च) 'ह' का संयुक्त रूप वर्तमान प्रणाली के साथ ही हल् चिह्न लगाकर भी किया जा सकेगा। यथा :

चिह्न और चिह्‌न (चिह्न नहीं)

(छ) संस्कृत में संयुक्ताक्षर पुरानी शैली से भी लिखे जा सकेंगे।

३. अन्य निश्चय, जो १९५३ में हुए थे, वे ही कायम रहेंगे। यथा :

(१) शिरोरेखा का प्रयोग प्रचलित रहेगा।
(२) (क) फुलस्टाप को छोड़कर शेष विराम आदि चिह्‌न वहीं ग्रहण कर लिए जाएँ जो अँग्रेजी में प्रचलित हैं। यथा :

(- = – , ; । ? ! :)

(विसर्ग के चिह्‌न को ही कोलन का चिह्‌न मान लिया जाय)

(ख) पूर्ण विराम के लिए खड़ी पाई (।) का प्रयोग किया जाए।
(ग) जहाँ तक संभव हो टाइपराइटर के कुंजीपटल में निम्नलिखित चिह्‌नों को सम्मिलित कर लिया जाय :

(ˎ ˙ . % " " ( ) + × ÷ * = ‿)

(३) अनुस्वार और अनुनासिक दोनों (ं ँ) प्रचलित रहेंगे।

राष्ट्रपति द्वारा समय-समय पर दिए गए आदेशों के अनुसार, कुछ विशेष प्रयोजनों को छोड़कर, सभी सरकारी हिंदी-प्रकाशनों में अंतर्राष्ट्रीय अंकों का प्रयोग अपेक्षित है—

अंतर्राष्ट्रीय अंक

1 2 3 4 5 6 7 8 9 0

देवनागरी लिपि को अखिल भारतीय लिपि का स्वरूप और क्षमता देने के उद्देश्य से उसमें हिंदीतर भाषाओं की विशिष्ट ध्वनियों को व्यक्त करने के लिए कुछ नवीन प्रतीकों का भी समावेश कर दिया गया है। आगे के पृष्ठों में भारत सरकार द्वारा प्रस्वीकृत देश की अन्य भाषाओं के देवनागरी लिप्यन्तरण के पटल प्रस्तुत —

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

असमिया - देवनागरी वर्णमाला

অ अ	আ आ	ই इ	ঈ ई	উ उ
ঊ ऊ	ঋ ऋ	ঌ ऌ	এ ए	ঐ ऐ
ও ओ	ঔ औ	অঁ अं	অঃ अः	
ক क	খ ख	গ ग	ঘ घ	ঙ ङ
চ च	ছ छ	জ ज	ঝ झ	ঞ ञ
ট ट	ঠ ठ	ড ड	ঢ ढ	ণ ण
ত त	থ थ	দ द	ধ ध	ন न
প प	ফ फ	ব ब	ভ भ	ম म
য य	ৰ र	ল ल	ৱ व	শ श
ষ ष	স स	হ ह	ক্ষ क्ष	জ্ঞ ज्ञ
শ্ৰ श्र	ড় ड़	ঢ় ढ़	ৎ त्	য় य़

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उड़िया - देवनागरी वर्णमाला

ଅ अ	ଆ आ	ଇ इ	ଈ ई	ଉ उ
ଊ ऊ	ଋ ऋ	ଏ ए	ଐ ऐ	ଓ ओ
	ଔ औ	ଅଂ अं	ଅଃ अः	
କ क	ଖ ख	ଗ ग	ଘ घ	ଙ ङ
ଚ च	ଛ छ	ଜ ज	ଝ झ	ଞ ञ
ଟ ट	ଠ ठ	ଡ ड	ଢ ढ	ଣ ण
ତ त	ଥ थ	ଦ द	ଧ ध	ନ न
ପ प	ଫ फ	ବ ब	ଭ भ	ମ म
ଯ य	ର र	ଳ ळ	ଲ ल	ଵ व
ଶ श	ଷ ष	ସ स	ହ ह	କ୍ଷ क्ष
	ଡ଼ ड़		ଢ଼ ढ़	

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उर्दू - देवनागरी वर्णमाला

ट ٹ	त ت	प پ	ब ب	अ ا
ख़ خ	ह ح	च چ	ज ج	स ث
ड़ ڑ	र ر	ज़ ذ	ड ڈ	द د
स س	श़ ش	स ص	झ़ ژ	ज़ ز
ग़ غ	अ़ ع	ज़ ظ	त ط	ज़ ض
ल ل	ग گ	क ک	क़ ق	फ़ ف
य ی	ह ہ	व و	न ن	म م
		य ے		
झ جھ	ठ ٹھ	थ تھ	फ پھ	भ بھ
ख کھ	ढ़ ڑھ	ढ ڈھ	घ گھ	छ چھ
आ آ	उ اُ	इ اِ	अ اَ	ए اے

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

[illegible] - देवनागरी वर्णमाला

अ	आ	इ	ई	उ
ऊ	ऋ	ॠ	ऍ	ए
ऐ	ऑ	ओ	औ	अं
		अः		
क	ख	ग	घ	ङ
च	छ	ज	झ	ञ
ट	ठ	ड	ढ	ण
त	थ	द	ध	न
प	फ	ब	भ	म
य	र	ल	व	श
ष	स	ह	क्ष	ळ

६

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कश्मीरी - देवनागरी वर्णमाला

ई	इ	आ	अ	ॴ	ॳ
ओ	ॵ	ऊ	उ	ॷ	ॶ
	इ़	ए	ऍ		
छ	च	ग	ख	क	
ट	ज़	छ़	च़	ज	
द	थ	त	ड	ठ	
म	ब	फ	प	न	
व	ल	र	य	य	
	ह	स	श		

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गुजराती - देवनागरी वर्णमाला

અ अ	આ आ	ઇ इ	ઈ ई	ઉ उ
ઊ ऊ	ઋ ऋ	એ ए	ઐ ऐ	ઓ ओ
	ઔ औ	અં अं	અઃ अः	
ક क	ખ ख	ગ ग	ઘ घ	ઙ ङ
ચ च	છ छ	જ ज	ઝ झ	ઞ ञ
ટ ट	ઠ ठ	ડ ड	ઢ ढ	ણ ण
ત त	થ थ	દ द	ધ ध	ન न
પ प	ફ फ	બ ब	ભ भ	મ म
ય य	ર र	લ ल	વ व	શ श
ષ ष	સ स	હ ह	ળ ळ	ક્ષ क्ष
	ત્ર त्र		જ્ઞ ज्ञ	

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तमिल - देवनागरी वर्णमाला

அ	अ	ஆ	आ	இ	इ	ஈ	ई
உ	उ	ஊ	ऊ	எ	ऍ	ஏ	ए
ஐ	ऐ	ஒ	ऑ	ஓ	ओ	ஔ	औ
		ஃ	अक्				
க	क	ங	ङ	ச	च	ஞ	ञ
ட	ट	ண	ण	த	त	ந	न
ப	प	ம	म	ய	य	ர	र
ல	ल	வ	व	ழ	ऴ	ள	ळ
ற	ऱ	ன	ऩ	ஷ	ष	ஸ	स
ஹ	ह	ஜ	ज	க்ஷ	क्ष		

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

తెలుగు - देवनागरी वर्णमाला

అ अ	ఆ आ	ఇ इ	ఈ ई	ఉ उ
ఊ ऊ	ఋ ऋ	ౠ ॠ	ఌ ऌ	ౡ ॡ
ఎ ऎ	ఏ ए	ఐ ऐ	ఒ ऒ	ఓ ओ
ఔ औ	అం अं	అః अः		
క क	ఖ ख	గ ग	ఘ घ	ఙ ङ
చ च	ఛ छ	జ ज	ఝ झ	ఞ ञ
ట ट	ఠ ठ	డ ड	ఢ ढ	ణ ण
త त	థ थ	ద द	ధ ध	న न
ప प	ఫ फ	బ ब	భ भ	మ म
య य	ర र	ల ल	వ व	శ श
ష ष	స स	హ ह	క్ష क्ष	ఱ ऱ
		ళ ळ		

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पंजाबी (गुरमुखी)-देवनागरी वर्णमाला

ਅ अ	ਆ आ	ਇ इ	ਈ ई	ਉ उ
ਊ ऊ	ਰੀ ऋ	ਏ ए	ਐ ऐ	ਓ ओ
	ਔ औ	ਅਂ अं	ਅ: अः	
ਕ क	ਖ ख	ਗ ग	ਘ घ	ਙ ङ
ਚ च	ਛ छ	ਜ ज	ਝ झ	ਞ ञ
ਟ ट	ਠ ठ	ਡ ड	ਢ ढ	ਣ ण
ਤ त	ਥ थ	ਦ द	ਧ ध	ਨ न
ਪ प	ਫ फ	ਬ ब	ਭ भ	ਮ म
ਯ य	ਰ र	ਲ ल	ਵ व	ਸ਼ श
	ਸ स		ਹ ह	

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बंगला - देवनागरी वर्णमाला

অ अ	আ आ	ই इ	ঈ ई	উ उ
ঊ ऊ	ঋ ऋ	৯ लृ	এ ए	ঐ ऐ
ও ओ	ঔ औ		ং अं	ঃ अः ँ
ক क	খ ख	গ ग	ঘ घ	ঙ ङ
চ च	ছ छ	জ ज	ঝ झ	ঞ ञ
ট ट	ঠ ठ	ড ड	ঢ ढ	ণ ण
ত त	থ थ	দ द	ধ ध	ন न
প प	ফ फ	ব ब	ভ भ	ম म
য य	র र	ল ल	ব व	শ श
ষ ष	স स	হ ह	ক্ষ क्ष	জ্ঞ ज्ञ
শ্র श्र	ড় ड़	ঢ় ढ़	ৎ त्	য় य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मलयालम - देवनागरी वर्णमाला

അ अ	ആ आ	ഇ इ	ഈ ई	ഉ उ
ഊ ऊ	ഋ ऋ	ൠ ॠ	ഌ ऌ	ൡ ॡ
എ एँ	ഏ ए	ഐ ऐ	ഒ ओं	ഓ ओ
	ഔ औ	അം अं	അഃ अः	
ക क	ഖ ख	ഗ ग	ഘ घ	ങ ङ
ച च	ഛ छ	ജ ज	ഝ झ	ഞ ञ
ട ट	ഠ ठ	ഡ ड	ഢ ढ	ണ ण
ത त	ഥ थ	ദ द	ധ ध	ന न
പ प	ഫ फ	ബ ब	ഭ भ	മ म
യ य	ര र	ല ल	വ व	ശ श
ഷ ष	സ स	ഹ ह	ള ळ	ക്ഷ क्ष
	ഴ ष़	റ ऱ	റ്റ ट्र	

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हिन्दी-क्षेत्र में भाषाशास्त्र के अध्ययन की प्रगति

यद्यपि प्राचीनकाल में हमारे देश में संस्कृत-व्याकरण का सूक्ष्म और शास्त्रीय अध्ययन हुआ था और भारत के प्राचीन वैयाकरण पाणिनि, पतंजलि तथा कात्यायन ने भाषा-सम्बन्धी अनेक ऐसे तत्त्वों का अन्वेषण किया था जिससे आज के भाषाशास्त्री भी प्रेरणा प्राप्त कर रहे हैं, तथापि आधुनिक युग में वैज्ञानिक रूप में इस देश में भाषाशास्त्र का अध्ययन बीम्स, हार्नले, ग्रियर्सन, ट्रम्प, काल्डवेल, ब्लाख एवं टर्नर की कृतियों से प्रारम्भ हुआ। यूरोप के विद्वानों की पद्धति का अनुसरण करते हुए रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर, सुनीतिकुमार चटर्जी, तारपुरवाला आदि विद्वानों ने आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं एवं भाषाशास्त्र का गम्भीर अध्ययन किया। स्वर्गीय डॉ० ए० सी० वुलनर के प्रयत्न और उद्योग से सन् १९२८ ई० में 'लिंग्विस्टिक सोसाइटी ऑफ इण्डिया' की स्थापना हुई। तब से प्राच्यविद्या-सम्मेलन (Oriental Conference) के अधिवेशनों में लिंग्विस्टिक सोसाइटी का भी अधिवेशन होता आ रहा है। यद्यपि भारत के विभिन्न विश्वविद्यालयों में भाषा-सम्बन्धी शोध एवं अध्ययन-अध्यापन का कार्य थोड़ा-बहुत होता रहा है तथापि इस ओर विश्वविद्यालयों का विशेषरूप से ध्यान आकर्षित न हो सका और कलकत्ता विश्वविद्यालय को छोड़कर कहीं भी भाषा-शास्त्र के अध्ययन-अध्यापन का विभाग न खुल सका। यह आश्चर्य की बात है कि जहाँ यूरप के पैरिस, लन्दन, ऑक्सफोर्ड, केम्ब्रिज तथा जर्मनी के विविध विश्वविद्यालयों में १९वीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही भाषाशास्त्र के 'चेयर' की स्थापना हो चुकी थी वहाँ उन्हीं के आदर्श पर बने हुए भारतीय विश्वविद्यालयों में इस शास्त्र के लिए कोई स्थान न रहा।

सन् १९४७ ई० में अँगरेजों की दासता से भारत स्वतंत्र हुआ। इस अवसर पर आशा थी कि विश्वविद्यालयों में भारतीय भाषाओं के अध्ययन की नवीन प्रणाली का प्रादुर्भाव होगा किन्तु यह आशा दुराशा के रूप में परिणत होकर रह गई। सौभाग्य से डेकेन कालेज, पूना के भाषाशास्त्र के विद्वान् प्राध्यापक, डॉ० सुमित्र मंगेश कत्रे का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ। सन् १९५३ ई० के मई मास में उन्होंने भारत के विविध राज्यों के कुछ चुने हुए भाषाशास्त्रियों एवं शिक्षा-विशारदों की सभा पूना के डेकेन कालेज में बुलाई। इसका सभापतित्व लन्दन विश्वविद्यालय के 'प्राच्य एवं अफ्रीकी विभाग' के अध्यक्ष

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

एवं संचालक डॉ० सर राल्फ लिली टर्नर ने किया था और इसके व्यय का भार अमेरिका के 'राकेफेवर फाउण्डेशन' ने वहन किया था। इस सभा में कई प्रस्ताव स्वीकृत हुए थे जिनमें भाषाशास्त्र से सम्बन्ध रखनेवाले प्रस्तावों को संक्षेप में नीचे दिया जा रहा है—

(अ) भारतीय भाषाशास्त्र की आधारभूत आवश्यकताएँ

१. भारत के विश्वविद्यालयों में भाषाशास्त्र के विभाग खोले जायँ तथा बी० ए० और एम० ए० के पाठ्यक्रमों में भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन को स्थान दिया जाय।

२. भाषाशास्त्र को मानव-विज्ञान (Human Science) मान कर नृ-विज्ञान (Anthropology) के क्षेत्र में कार्य करनेवालों को भाषाशास्त्र की शिक्षा दी जाय।

३. भाषाओं और भाषाशास्त्र के उचित अध्ययन के लिए विश्वविद्यालयों में 'प्रयोगात्मक लैबोरेटरीज' की स्थापना की जाय।

४. भारतीय भाषाशास्त्र की सद्यः आवश्यकताओं को देखते हुए सभा ने ये सुझाव दिये —

(क) एकरूपता को दृष्टि में रखकर प्रमुख भारतीय भाषाओं के ऐतिहासिक व्याकरण लिखे जायँ।

(ख) सामान्य एवं भारतीय भाषाशास्त्र की परिनिष्ठित विदेशी भाषा की पुस्तकों का प्रमुख भारतीय भाषाओं में अनुवाद किया जाय।

(ग) बोलियों तथा बोली-भूगोल (Dialect-Geography) को सर्वोच्च स्थान दिया जाय, क्योंकि यह सामग्री द्रुतगति से विनष्ट हो रही है।

(घ) भारतीयस्तर पर, नवीन प्रणाली के आधार पर, 'भारत का नवीन भाषासर्वेक्षण' किया जाय।

(ङ) प्रमुख भारतीय भाषाओं के महत्वपूर्ण ग्रन्थों का पाठालोचन की दृष्टि से सम्पादन किया जाय।

(च) भाषाशास्त्र (विशेषतया, भारतीय) के लिए सन्दर्भ सूची-विभाग (Bibliographical Department) की स्थापना की जाय।

(आ) भारतीय तथा अभारतीय भाषाओं के विद्यार्थियों के लिए भारतीय भाषाशास्त्र में प्रशिक्षण एवं विशिष्ट अध्ययन की सुविधाएँ

१. डेकेन कालेज में भाषाशास्त्र के ग्रीष्मकालीन एवं शरत्कालीन स्कूलों को चालू किया जाय जिनमें भारतीय तथा विदेशी विशेषज्ञ भाग लें तथा भाषाशास्त्र के आधुनिक सिद्धान्तों एवं पद्धतियों का गहन अध्ययन-अध्यापन करें।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

२. भाषाशास्त्रीय स्कूल के अध्येताओं के अतिरिक्त, डेकेन कालेज, अपनी प्रशिक्षण सुविधाओं के लिए अन्य जिज्ञासु विद्वानों के लिए भी अपना द्वार उन्मुक्त करे।

३. यह सभा इस बात का सुझाव देती है कि विश्वविद्यालय, राज्य सरकारें तथा अन्य संस्थाएँ पूना में स्थापित भाषाशास्त्रीय स्कूल में विशेष अध्ययन के लिए योग्य विद्यार्थियों को सुविधाएँ दें। इसके अतिरिक्त देश के विश्वविद्यालय अपने नवयुवक अध्यापकों को भी भाषाशास्त्र के अध्ययन के लिए सुविधा दें।

सभा के इन सुझावों के परिणामस्वरूप पूना के डेकेन कालेज में, भाषाशास्त्र के प्रथम शरत्कालीन स्कूल का समारम्भ सन् १९५४ के नवम्बर में हुआ। इस प्रकार का दूसरा स्कूल सन् १९५५ के मई-जून में, तीसरा स्कूल अक्टूबर-नवम्बर में तथा चौथा स्कूल मई-जून सन् १९५६ में पूना में हुआ। इसके बाद प्रवन्ध-समिति ने यह निर्णय किया कि शरत्कालीन स्कूल को 'सेमिनार' के रूप में वदल दिया जाय तथा 'सेमिनारों' में केवल चुने हुए कतिपय विद्वानों एवं शोधछात्रों को ही वुलाया जाय जिससे उनके शोध-सम्बन्धी विषयों की कठिनाइयों को दूर किया जाय। इस तरह सन् १९५५ के नवम्बर में जो स्कूल प्रारम्भ हुआ था उसका स्थान इस सेमिनार ने ले लिया। इस योजना का प्रथम शरत्कालीन सेमिनार सन् १९५६ में पूना में हुआ। यहीं यह भी निश्चय किया गया कि ग्रीष्मकालीन स्कूल तथा शरत्कालीन सेमिनार पूना के अतिरिक्त भारत के अन्य स्थानों पर भी किये जायँ जिससे भारत के अन्य राज्यों को भी समान लाभ मिल सके।

उत्तरप्रदेश के आगरा विश्वविद्यालय ने इस प्रकार के प्रथम स्कूल को डी० ए० वी० कालेज देहरादून में आमंत्रित किया तथा वहाँ १९५७ के मई-जून में ग्रीष्मकालीन स्कूल हुआ। इसका अनुसरण करते हुए मद्रास राज्य के अन्नामलाई विश्वविद्यालय ने शरत्कालीन सत्र को सन् १९५७ के सितम्वर-अक्तूबर में चिदम्बरम् में आमंत्रित किया तथा यह सत्र अन्नामलाई विश्वविद्यालय में हुआ। इसके वाद सन् १९५८ ई० का ग्रीष्मकालीन स्कूल मैसूर विश्वविद्यालय के महाराजा कालेज में तथा शरत्कालीन सेमिनार डेकेन कालेज, पूना में हुआ। यह इस योजना का अन्तिम सेमिनार था जिसमें लन्दन से सर राल्फ टर्नर एक बार पुनः आए। भाषाशास्त्रीय अध्ययन की इस योजना का अन्तिम ग्रीष्मकालीन स्कूल सन् १९५९ के मई-जून में दक्षिण में, कोयम्वटूर में हुआ। इस प्रकार भाषाशास्त्र के अध्ययन-अध्यापन की यह योजना निरन्तर पाँच वर्षों तक चलती रही। इसमें कई लाख रुपये व्यय हुए जिसे अमेरिका के राकेफेलर फाउंडेशन ने वहन किया।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शरत्कालीन तथा ग्रीष्मकालीन स्कूलों के अतिरिक्त कतिपय नवयुवक अध्येताओं को २५०) रु० मासिक की छात्रवृत्ति देकर फेलो भी बनाया गया जो एक-एक वर्ष तक डेकेन कालेज में रहकर वर्णनात्मक (Descriptive) तथा ऐतिहासिक (Historical) भाषाशास्त्र एवं ध्वनि-विज्ञान का नियमित रूप से अध्ययन करते रहे। ऐसे युवकों की संख्या भाषा के अनुसार इस प्रकार थी—

तालिका नं० १

भाषा	१९५५-५६	१९५६-५७	१९५७-५८	१९५८-५९	योग
कन्नड़	२	१	१	१	५
तेलगु	१	×	१	×	२
तमिल	×	१	१	२	४
मलयालम	×	×	१	×	१
असमिया	१	१	×	×	२
बंगला	×	×	×	×	०
उड़िया	×	×	×	१	१
मराठी	१	२	२	×	५
गुजराती	×	×	१	×	१
सिन्धी	×	×	×	१	१
पंजाबी	×	१	×	×	१
कश्मीरी	×	×	१	×	१
*हिन्दी	२	३	१	२	८

डेकेन कालेज द्वारा परिचालित इन भाषाशास्त्रीय स्कूलों का यह परिणाम हुआ कि भारत के विभिन्न अंचलों में भाषाशास्त्र के अध्ययन के लिए लोगों में नवीन स्फूर्ति आ गई।

डेकेन कालेज के इसी कार्यक्रम अन्तर्गत कई प्रौढ़ (सीनियर) एवं उदीयमान (जूनियर) भाषाशास्त्रियों को व्याख्यात्मक भाषाशास्त्र की नवीन प्रणालियों के अध्ययन के लिए अमेरिका भी भेजा गया। ऐसे व्यक्तियों की संख्या भाषाओं के अनुसार इस प्रकार है—

---

*यहाँ हिन्दी के अन्तर्गत उर्दू भी है। वस्तुतः आठ में से छह हिन्दी के तथा दो उर्दू के फलो थे।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तालिका नं० २

भाषा	सीनियर भाषाशास्त्री	जूनियर भाषाशास्त्री	योग
कन्नड़	३	२	५
तमिल	×	१	१
मलयालम	१	×	१
असमिया	×	१	१
मराठी	३	१	४
गुजराती	१	×	१
सिन्धी	×	१	१
पंजाबी	×	१	१
*हिन्दी	२	१	३

भाषाशास्त्र के विभिन्न स्कूलों के अध्येताओं की संख्या भाषानुसार इस प्रकार है। इसमें तेलुगु के अन्तर्गत तेलुगु एवं तूलू, मराठी के अन्तर्गत मराठी एवं कोंकणी तथा हिन्दी के अन्तर्गत हिन्दी, उर्दू, खड़ीबोली, ब्रज, वाँगरू, राजस्थानी, अवधी, भोजपुरी, मगही (मागधी), मैथिली तथा छिकाछिकी बोलियाँ सम्मिलित हैं —

तालिका नं० ३

भाषा	१९५४ (शरद)	१९५५ (ग्रीष्म)	१९५५ (शरद)	१९५६ (ग्रीष्म)	१९५८ (ग्रीष्म)	योग
कन्नड़	८	१७	११	१०	५६	१०२
तेलुगु	९	९	२	९	२०	४९
तमिल	५	१०	६	१७	३८	७६
मलयालम	३	५	१	६	१०	२५
असमिया	४	४	१	६	५	२०
बंगला	३	८	३	८	५	२७
उड़िया	३	७	×	६	५	२१
मराठी	१४	५१	२५	३६	३०	१५६
गुजराती	५	२१	५	७	१३	५१

*यहाँ हिन्दी के अन्तर्गत उर्दू भी सम्मिलित है। वस्तुतः सीनियर भाषाशास्त्रियों में एक हिन्दी तथा एक उर्दू के हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सिन्धी	१	×	१	×	१	३
पंजाबी	१	१	५	२	३	१२
कश्मीरी	१	१	१	१	१	५
नेपाली	१	×	×	×	×	१
सिंहली	१	×	×	×	×	१
अँग्रेजी	१	×	×	×	२	३
हिन्दी	१२	१२	१८	२७	३५	१०४

(ऊपर की तालिका नं० ३ में १९५६ के शरद्, १९५७ के ग्रीष्म एवं शरद तथा १९५८ के शरद और १९५९ ग्रीष्म के अध्येताओं की संख्या अनुपलब्ध होने के कारण नहीं दी जा सकी।)

तालिका नं० १ से यह स्पष्ट हो जाता कि कुल ३२ फेलों में से हिन्दी-भाषी क्षेत्र* के केवल ८ फेलो थे। हिन्दी भाषा-भाषियों की संख्या की दृष्टि से यह अनुपात बहुत कम है। यदि हम राशियों के आधार पर विचार करें तो इन आठ फेलो में से राजस्थान से १, पूर्वी पंजाब (रोहतक) से १, बिहार से २, उत्तरप्रदेश से ४ (२ हिन्दी तथा २ उर्दू) फेलो थे। मध्यप्रदेश से एक भी फेलो न आ सका। इतने विशाल हिन्दी-क्षेत्र से केवल ८ फेलो का आना यह स्पष्ट करता है कि हिन्दी-क्षेत्र के लोगों ने भाषाशास्त्र के अध्ययन में कितनी कम दिलचस्पी ली। जनसंख्या की दृष्टि से यह संख्या निराशाजनक है। यह तालिका इस तथ्य की ओर भी संकेत करती है कि भाषाशास्त्र के अध्ययन की इस योजना से जितना लाभ अन्य भाषा-भाषियों को हुआ उतना हिन्दी-भाषियों को न हो सका।

तालिका नं० २ से ऊपर की बात की और भी पुष्टि हो जाती। जहाँ अन्य भाषा-क्षेत्रों से १५ विद्वान् वर्णनात्मक भाषाशास्त्र (Descriptive linguistics) के अध्ययन के लिए अमेरिका भेजे गये, वहाँ हिन्दी क्षेत्र से केवल ३ विद्वान् (एक उर्दू तथा दो हिन्दी) ही जा सके। इन तीन विद्वानों में से दो उत्तरप्रदेश और एक पूर्वी पंजाब (रोहतक) के थे।

तालिका नं० ३ में विभिन्न वर्षों के अध्येताओं की संख्या दी गई है। इनमें से प्रायः आधे से अधिक ऐसे अध्येता हैं जो कई स्कूलों से आये हैं; किन्तु इससे

---

*यहाँ हिन्दीभाषी क्षेत्र के अन्तर्गत वे सभी राज्य हैं जहाँ साहित्यिक भाषा के रूप में हिन्दी व्यवहृत होती है। इन राज्यों में दिल्ली, राजस्थान, उत्तर-प्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश तथा पूर्वी पंजाब के कुछ भाग आते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अध्येताओं के अनुपात में कोई अन्तर नहीं आता। इस तालिका में देहरादून और कोयम्बटूर के स्कूलों तथा शरत्कालीन सेमिनारों की संख्या नहीं दी जा सकी है, किन्तु देहरादून में भी हिन्दीवालों की संख्या अन्य स्कूलों से अच्छी न थी।

ऊपर की तीनों तालिकाओं के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि अनुपात की दृष्टि से हिन्दी-क्षेत्र के कितने कम अध्येताओं ने इन स्कूलों से लाभ उठाया। इसका कारण यह नहीं कि अहिन्दी भाषा-भाषियों पर विशेष कृपा की गई; अपितु इसका सब से बड़ा कारण यह है कि हिन्दीभाषी-क्षेत्र के नवयुवक प्राध्यापकों में हम भाषाशास्त्र के अध्ययन के लिए वास्तविक प्रेम और उत्साह न उत्पन्न कर सके। जहाँ अहिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्रों में इन पाँच वर्षों के अन्तर्गत ही भाषाशास्त्र के अध्ययन के लिए सात—अहमदाबाद, अन्नामलाई, बड़ौदा, धारवाड़, ट्रावन्कोर, वाल्टेयर और पूना—विश्वविद्यालयों में केन्द्र एवं अलग विभाग स्थापित हो गए वहाँ दिल्ली, राजस्थान, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश एवं विहार में, केवल आगरे में एक केन्द्र खुल सका। इसके अनेक कारण हैं जिनमें से नीचे कतिपय कारणों पर विचार किया जाता है।

इनमें सर्वाधिक मुख्य कारण यह है कि समस्त हिन्दी-क्षेत्र में गुजरात, महाराष्ट्र, तमिलनाड, बंगाल आदि की तरह भाषा को लेकर किसी प्रकार की एकता का भाव नहीं है। हिन्दी-प्रदेश की सब से बड़ी कमजोरी है, जातिवाद। इसने इस समस्त क्षेत्र को विखण्डित कर रखा है। एक दूसरी कठिनाई यह भी है कि इस क्षेत्र के अधिकांश हिन्दी प्राध्यापकों तथा छात्रों का संस्कृत, मध्यकालीन प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओं के अध्ययन से कोई सम्बन्ध-सम्पर्क नहीं है। वस्तुतः भारोपीय परिवार के भाषाशास्त्र के अध्ययन का मेरुदण्ड ये प्राचीन भाषाएँ हैं। यूरोप में भी अठारहवीं शताब्दी से भाषाशास्त्र के अध्ययन की जो प्रवृत्ति चली थी उसका मुख्य कारण संस्कृत का अध्ययन ही था। हिन्दी की अपेक्षा अँग्रेजी का साहित्य कई गुना विशाल है फिर भी यूरोप तथा अमेरिका के अँग्रेजी के प्राध्यापकों के लिए ग्रीक तथा लैटिन जैसी प्राचीन भाषाओं एवं फ्रेंच, जर्मन जैसी अर्वाचीन भाषाओं का ज्ञान अनिवार्य है। किन्तु हिन्दी के प्राध्यापक होने के लिए यहाँ की प्राचीन भाषाओं एवं भारत के अन्य प्रदेशों की भाषाओं का ज्ञान आवश्यक नहीं है। यह कितनी विचित्र बात है कि उत्तरप्रदेश के हाईस्कूलों तथा इण्टरमीडिएट कालेजों में हिन्दी-अध्यापक होने के लिए संस्कृत का ज्ञान आवश्यक है किन्तु विश्वविद्यालयों में इसकी आवश्यकता नहीं समझी गई है। भाषाशास्त्र के अध्ययन की उपेक्षा का एक कारण यह भी है कि जहाँ अहिन्दी क्षेत्र के छात्रों और प्राध्यापकों को संस्कृत

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के अतिरिक्त पड़ोस की दो-एक अन्य भाषाओं का भी ज्ञान अनिवार्य रूप से होता है वहाँ हिन्दी-क्षेत्र के छात्र हिन्दी के अतिरिक्त पड़ोस की किसी अन्य भाषा का ज्ञान प्राप्त करने का किसी प्रकार का प्रयत्न नहीं करते। ये कटु सत्य हैं, इन्हें स्वीकार करने में हमें किसी प्रकार का संकोच नहीं होना चाहिए।

पूना के विविध भाषाशास्त्रीय स्कूलों में जहाँ अहिन्दी क्षेत्रों के कई विश्वविद्यालयों अथवा राज्यों की ओर से छात्रवृत्ति देकर छात्र भेजे गये थे वहाँ हिन्दी-राज्यों तथा विश्वविद्यालयों से एक भी छात्र पूरे वर्ष के अध्ययन के लिए पूना नहीं भेजा गया। इस सम्बन्ध में यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि पंजाब, अन्नामलाई तथा शान्तिनिकेतन विश्वविद्यालयों से इसके लिए छात्रवृत्ति-सहित एक-एक छात्र आया था। मैं इसके लिए हिन्दी-प्रदेश के विश्वविद्यालयों तथा राज्यों को उतना दोषी नहीं मानता। सच तो यह है कि हिन्दी के कर्णधारों ने न तो भाषाशास्त्र के अध्ययन के लिए उपयुक्त वातावरण ही तैयार किया और न छात्रों को ही इसके लिए उत्साहित किया और न राज्याधिकारियों को ही इसके लिए किसी प्रकार की प्रेरणा ही दी।

एक बात और भी है। पूना से हिन्दी-क्षेत्र के जो 'फेलो' अध्ययन करके आये भी, उन्हें हिन्दी-क्षेत्र के विश्वविद्यालयों ने अपने यहाँ स्थान नहीं दिया, जब कि अन्य क्षेत्रों के फेलो लोगों को उन क्षेत्रों के विश्वविद्यालयों ने अपने यहाँ नियुक्त कर लिया। सच बात तो यह है कि हिन्दी-क्षेत्र के विश्वविद्यालयों में जब नये प्राध्यापकों की नियुक्ति होती है उस समय विषय-ज्ञान की अपेक्षा हमारी दृष्टि व्यक्तियों पर ही विशेषरूप से होती है। उस समय हम हिन्दी के अभिवृद्धि-सम्बन्धी समस्त आदर्शों को भूल जाते हैं। हिन्दी-क्षेत्र पर इसका अत्यधिक अशुभ परिणाम हुआ है। इस समय जहाँ तक भाषाशास्त्र के अध्ययन-अध्यापन का प्रश्न है, अहिन्दीभाषी क्षेत्रों से हिन्दीभाषी क्षेत्र पचास वर्ष पीछे तथा यूरोप एवं अमेरिका से सौ वर्ष पीछे हो गये हैं। हमारे यहाँ भाषाशास्त्र के नाम पर आज छात्रों को जो सैद्धान्तिक ज्ञान दिया जा रहा है वह उन्नीसवीं शताब्दी के मध्यभाग का है। यह बासी और अशुद्ध है।

लेखक को प्रयाग एवं पूना में स्नातकोत्तर छात्रों को पढ़ाने का जो सुअवसर मिला है उससे यह अनुभव हुआ है कि भाषाशास्त्र जैसे वैज्ञानिक विषय के अध्ययन की ओर हिन्दी-क्षेत्र के छात्रों की बहुत कम प्रवृत्ति होती है। इसका कारण यह है कि जहाँ एक ओर भाषाशास्त्र का अध्ययन काव्यादि के अध्ययन की अपेक्षा कुछ कठिन है, वहाँ दूसरी ओर यह सद्यः फलदायक भी नहीं है। साहित्यिक विषयों में जहाँ अल्प परिश्रम से ही छात्रों को 'डॉक्टरेट' की पदवी मिल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जाती है वहाँ भाषाशास्त्र की उपयुक्त थीसिस लिखने में गम्भीर अध्ययन और अधिक परिश्रम की आवश्यकता होती है। इसमें अपेक्षाकृत अधिक समय भी लग जाता है। अनेक छात्र आर्थिक कठिनाइयों एवं अन्य प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण भाषाशास्त्र में अनुसन्धान करने से इसलिए भी घबराते हैं।

इस सम्बन्ध में सब से आवश्यक बात यह है कि अहिन्दीभाषी क्षेत्रों की भाँति ही हम तत्काल हिन्दीभाषी-क्षेत्र में भी भाषाशास्त्र के अध्ययन-केन्द्र स्थापित करें। विश्वविद्यालयों में साधारणतया नवीन विषय को पाठ्यक्रम के अन्तर्गत लाने में तीन-चार वर्ष लग जाते हैं। हमें ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि विशेषाधिकार से भाषाशास्त्र को हम यथासम्भव शीघ्र बी.ए. एवं एम.ए. के पाठ्यक्रम में लायें। विश्वविद्यालयों के भाषाशास्त्र के विभागों में ऐतिहासिक (Historical), तुलनात्मक (Comparative) एवं वर्णनात्मक (Descriptive), तीनों प्रकार के भाषाशास्त्रीय-अध्ययनों को चालू करने की आवश्यकता है। इस सम्बन्ध में सब से बड़ी कठिनाई प्रशिक्षित प्राध्यापकों की है। इसके लिए हम आवश्यकतानुसार समय-समय पर पूना, दक्षिण के अन्य विश्वविद्यालयों तथा यूरोप एवं अमेरिका के भाषाशास्त्रियों से सहायता ले सकते हैं। यद्यपि भाषाशास्त्र के योग्य अध्यापकों की अमेरिका तथा यूरोप में भी कमी है, तथापि जहाँ तक सम्भव हो, हमें इनसे लाभ उठाने का प्रयत्न करना चाहिए। हमें पूर्ण आशा है कि हिन्दी-क्षेत्र के मुख्यमंत्री, शिक्षा-मंत्री, उपकुलपति एवं विद्वान् प्राध्यापक तथा हिन्दी-सेवी और प्रेमी इस महत्त्वपूर्ण कार्य की ओर ध्यान देंगे।

हिन्दी-क्षेत्र में आज पच्चीस (कुरुक्षेत्र, दिल्ली, जयपुर, जोधपुर, अलीगढ़, आगरा, रुड़की, लखनऊ, मेरठ, कानपुर, इलाहाबाद, बनारस, वाराणसेय संस्कृत वि० वि०, काशी विद्यापीठ, गोरखपुर, पटना, बिहार, राँची, भागलपुर, सागर, जबलपुर, इन्दौर, ग्वालियर, उज्जैन तथा रायपुर) विश्वविद्यालय हैं। यदि इन विश्वविद्यालयों के उपकुलपति सन्नद्ध हो जाएँ तो हिन्दी-क्षेत्र में भाषाशास्त्र के अध्ययन की प्रगति शीघ्र हो सकती है। हमें इस सम्बन्ध में तनिक भी प्रमाद करने का अवकाश नहीं है। व्यावहारिक दृष्टि से तो यह उपयुक्त होगा कि हिन्दी-क्षेत्र के उपकुलपति-गण किसी एक स्थान पर मिलकर इस सम्बन्ध में मंत्रणा करें तथा योजना बनाकर उसे कार्य-रूप में परिणत करने का प्रयत्न करें।

ऊपर के स्पष्टीकरण में मेरा उद्देश्य न तो प्रान्तीय विद्वेष उभाड़ने का है और न किन्हीं व्यक्तियों पर छींटाकशी करने का है। मेरा मुख्य उद्देश्य यह है कि हिन्दीभाषी जागरूक होकर अपना उत्तरदायित्व समझें।

००

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हिन्दी के विभिन्न रूप और उनका समन्वय

हमारा देश विशाल है। इसका क्षेत्रफल रूस को छोड़कर यूरोप महाद्वीप के बराबर है। इसमें अनेक जातियों तथा भाषाओं को बोलनेवाले लोग रहते हैं, और इसकी जनसंख्या संसार की जनसंख्या का पंचमांश है। ग्रियर्सन के भाषा-सर्वेक्षण के अनुसार भारत में छह सौ से अधिक भाषाएँ तथा उपभाषाएँ प्रचलित हैं। प्राचीनकाल में इस देश में इतनी भाषाएँ तथा बोलियाँ न थीं। वस्तुतः समय की प्रगति के साथ-साथ ही इनकी संख्या में अभिवृद्धि हुई है।

स्वतंत्रता के बाद जब भारतीय संविधान बना तो उसमें चौदह भाषाओं को राज्यभाषा का गौरव प्रदान किया गया, और अँग्रेजी के स्थान पर हिन्दी को अन्तर्प्रान्तीय राज्य-भाषा के रूप में स्वीकार किया गया।

यद्यपि इस रूप में अभी तक हिन्दी समग्र देश में प्रतिष्ठापित नहीं हो सकी है, फिर भी धीरे-धीरे इसके प्रचार एवं प्रसार का क्षेत्र बढ़ रहा है। इसका परिणाम यह हुआ है कि आज देश में हिन्दी के कई रूप प्रचलित हो गये हैं।

इन्हीं विभिन्न रूपों के समन्वय के सम्बन्ध में यहाँ संक्षेप में विचार किया जायेगा।

हिन्दी का एक रूप आज पूर्वी पंजाब, राजस्थान, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश तथा बिहार के विश्वविद्यालयों एवं कॉलेजों में शिक्षा के माध्यम के रूप में, प्रचलित है। इसे हम परिनिष्ठित हिन्दी, साधुहिन्दी, उच्चहिन्दी अथवा संस्कृत-निष्ठ हिन्दी कह सकते हैं। इसमें संस्कृत के शब्दों का बाहुल्य है। धीरे-धीरे हिन्दी का यह रूप उत्तरीभारत की संस्कृति-वाहिनी भाषा का रूप धारण कर रहा है। प्राचीनकाल में उत्तरप्रदेश का अधिकांश भाग आर्यावर्त के अन्तर्गत था, और उसके बीच में स्थित मध्यदेश, भारतीय संस्कृति का हृदय था। संस्कृत भाषा ने यहीं अपना रूप प्राप्त किया था; और भारतीय आचार-विचार के सम्बन्ध में यह देश आदर्श माना जाता था। मथुरा, काम्पिल्य, संकाश्य, कन्नौज, अयोध्या, श्रावस्ती, प्रयाग तथा काशी इस प्रदेश के प्रमुख नगर थे। साधुहिन्दी आज इसी प्रदेश की उच्च शिक्षा की भाषा है। और शनैः-शनैः वह संस्कृत का स्थान ले रही है। इसके रूप को निर्धारित करने में काशी एवं प्रयाग का प्रमुख हाथ है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हिन्दी का दूसरा रूप वह है जिसका पश्चिमी उत्तरप्रदेश, आगरा, दिल्ली, मेरठ, मुरादाबाद, सहारनपुर, बरेली आदि के लोग अपने दैनिक जीवन में प्रयोग करते हैं। हिन्दी के इस रूप में तद्भव शब्दों की अधिकता होती है। इसमें अरबी-फारसी के सरल एवं बहुप्रचलित शब्द अपने-आप आ जाते हैं। पश्चिमी उत्तरप्रदेश के साधारण शिक्षित लोग भी हिन्दी के इस रूप का व्यवहार अपने घरों में करते हैं। हिन्दी का यह रूप निखर कर अभी तक साहित्य में नहीं आ पाया है। इसका मुख्य कारण यह है कि पश्चिम—आगरा, दिल्ली, तथा सहारनपुर—के लेखक काशी तथा प्रयाग के हिन्दी के रूप को ही आदर्श मानते हैं तथा साहित्य में उसी का प्रयोग करते हैं। हिन्दी के इस रूप में समन्वय के बीज वर्तमान हैं और भविष्य में साहित्य में, इसके प्रयोग की अत्यधिक सम्भावना है।

आज से कई वर्ष पूर्व राष्ट्रपिता बापू की प्रेरणा से हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन तथा दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचार-सभा के तत्वावधान में, हिन्दी के प्रचार तथा प्रसार का कार्य बंगाल, महाराष्ट्र, गुजरात, उत्कल, असम, सिंध, तमिल, तेलगु कन्नड़ तथा मलयालम राज्यों एवं क्षेत्रों में हुआ था।

स्वतंत्रता के बाद अनेक बाधाओं के बावजूद भी, यह काम आगे बढ़ रहा है। और इन क्षेत्रों में हिन्दी के कई ऐसे लेखक पैदा हो गए हैं जिनकी मातृ-भाषा हिन्दी नहीं है। ये लेखक जिस प्रकार की हिन्दी लिखते हैं उसमें, तथा उत्तरी भारत की हिन्दी में कोई अन्तर नहीं है, क्योंकि उनका आदर्श भी उत्तर भारत की परिनिष्ठित हिन्दी ही है। किन्तु भविष्य में इन क्षेत्रों के लोग जैसे-जैसे हिन्दी के क्षेत्र में आगे बढ़ते जायेंगे, वैसे ही वैसे हिन्दी के रूप में भी परिवर्तन होने की आशा है।

हिन्दी का एक चौथा रूप उर्दू भी है

अब प्रायः सभी लोग यह मानने लगे हैं कि उर्दू, हिन्दी की ही एक शैली है। वास्तव में यदि उर्दू के कतिपय व्याकरणीय नियमों का त्याग कर दिया जाय तो हिन्दी तथा उर्दू के वाक्य-विन्यास तथा व्याकरण में कोई अन्तर नहीं रह जायेगा। यह बात दूसरी है कि आज जहाँ साधुहिन्दी में संस्कृत शब्दों का प्राचुर्य है वहाँ उर्दू में अरबी-फारसी शब्दों का बाहुल्य है।

हिन्दी में इन चार रूपों के अतिरिक्त उधर हिन्दी-क्षेत्र में कई नवीन शैलियों एवं प्रवृत्तियों का प्रादुर्भाव हुआ है। आज हिन्दी के कई समर्थ लेखकों ने अपने रेखा-चित्रों तथा आंचलिक उपन्यासों में बहुप्रचलित क्षेत्रीय शब्दों का प्रयोग आरम्भ कर दिया है जिसके परिणामस्वरूप अनेक नूतन भावव्यंजक शब्द

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हिन्दी में आ रहे हैं। विहार के हिन्दी-लेखकों, विशेष रूप से श्री महापंडित राहुल सांकृत्यायन, श्री रामवृक्ष वेनीपुरी, श्री नागार्जुन, श्री फणीश्वरनाथ 'रेणु' एवं श्री हिमांशु श्रीवास्तव के नाम इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय हैं।

श्री राहुलजी तथा वेनीपुरीजी ने तो 'अगवाह', 'पोरसा', 'मुरेठा', 'लाल-भभूका', 'भोर' आदि अनेक ठेठ बिहारी शब्दों का हिन्दी में प्रयोग किया है। इन लेखकों की देखादेखी, आज अनेक उदीयमान लेखक भी विश्वास के साथ आंचलिक शब्दों का प्रयोग करने लगे हैं। इधर हिन्दी में एक नवीन उल्लेखनीय प्रवृत्ति यह भी आई है कि हिन्दी के नये लेखक कविता में भारी-भरकम अप्रचलित शब्दों के स्थान पर बोलचाल के सरल शब्दों का प्रयोग करने लगे हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि एक ओर जहाँ हिन्दी-कविता वहुमुखी हुई है वहाँ दूसरी ओर इसके शब्द-भण्डार में भी अभिवृद्धि हुई है। नवीन विषयों को नये छन्दों में बाँधने के कारण कविता के रूप (फॉर्म) तथा विषय (कण्टेण्ट) दोनों में नवीनता आई है।

एक बात और है। हिन्दी ज्यों-ज्यों भारत-व्यापिनी भाषा होती जायेगी त्यों-त्यों उसमें विविध क्षेत्रों के नये नये शब्द तथा मुहावरे आते जायेंगे। अँग्रेजी वाक्य-विन्यास की शैली तथा उसके मुहावरों ने एक प्रकार से सभी भारतीय भाषाओं को एक सीमा तक प्रभावित किया है। प्रेमचन्द-जैसे हिन्दी के समर्थ लेखक तक ने कई स्थलों पर अँग्रेजी के मुहावरों का अनुवाद किया है, जैसे—"मैं फावड़े को फावड़ा कहूँगा।" भाषा के क्षेत्र में यह प्रवृत्ति रोकी भी नहीं जा सकती। इसमें तनिक भी घबराने की आवश्यकता नहीं है। जब अँग्रेजी-जैसी समृद्ध भाषा संयुक्तराज्य अमेरिका की राज्य-भाषा बनी तो इसके रूप में अन्ततोगत्वा अन्तर आ ही गया। यूरोप तथा एशिया की विभिन्न भाषा वोलने वाली जव अनेक जातियों को अमेरिका का नागरिक बनकर राज्य-भाषा के रूप में अँग्रेजी को स्वीकार करना पड़ा, तो इंगलैंड में प्रचलित परिनिष्ठित अँग्रेजी के रूप में परिवर्तन आना सर्वथा स्वाभाविक था। आज तो अमेरिकन-इंगलिश के रूप में एक सशक्त भाषा अस्तित्व में आ गई है। यद्यपि भविष्य के विषय में कुछ भी कहना कठिन है, तथापि इतना तो सहज में ही अनुमान किया जा सकता है कि जब भारत के सभी राज्य अन्तर्प्रान्तीय भाषा के रूप में हिन्दी का व्यवहार करने लगेंगे तो इसके रूप में एक हद तक निश्चित रूप से परिवर्तन होगा।

हिन्दी के विविध रूपों के इस संक्षिप्त सर्वेक्षण के पश्चात् यह आवश्यक है कि भाषावैज्ञानिक दृष्टि से हम हिन्दी की प्रकृति भी जान लें। मोटे तौर पर संसार में हमें दो प्रकार की भाषाएँ मिलती हैं। इनमें से एक प्रकार की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भाषाएँ तो वे हैं जो अपने निजी प्रत्ययों से शब्दों का निर्माण करती हैं। ऐसी भाषाओं को हम निर्माण करनेवाली भाषा की संज्ञा दे सकते हैं। इनके विपरीत दूसरे वर्ग के अन्तर्गत वे भाषाएँ आती हैं जिनमें स्वतः निर्माण की शक्ति नहीं होती और आवश्यकता पड़ने पर यह अन्य भाषाओं से शब्द उधार लेती हैं। इन भाषाओं को उधार लेनेवाली भाषाओं के नाम से अभिहित किया जा सकता है। यूरोप की भाषाओं में जर्मन भाषा प्रथम के अन्तर्गत आती है और अँग्रेजी की गणना दूसरे के अन्तर्गत की जा सकती है। भारतीय भाषाओं में हिन्दी भी प्रथम वर्ग की भाषा है क्योंकि अपने निजी प्रत्ययों से शब्द-निर्माण करने की इसमें अपूर्व क्षमता है। उदाहरणस्वरूप हम इसके दो प्रत्ययों 'आवट' तथा 'अक्कड़' को ले सकते हैं। इन दोनों प्रत्ययों से हिन्दी के 'लिखावट', 'मिलावट', 'गिरावट' तथा 'भुलक्कड़' 'घुमक्कड़', एवं 'पियक्कड़' जैसे अनेक शब्दों का निर्माण होता है। नव्यभारतीय आर्यभाषाओं में दूसरे वर्ग की भाषा बंगला है, जिसमें ४५% से ५०% शब्द संस्कृत से तत्सम रूप में उधार लिए गए हैं।

हिन्दी के विविध रूपों के समन्वय के लिए यह आवश्यक है कि उसकी प्रवृत्ति पर ध्यान देते हुए यथासम्भव ठेठ शब्दों का प्रयोग किया जाय। इससे सब से बड़ा लाभ यह होगा कि हिन्दी बोलचाल की भाषा के निकट आ जायेगी। और तब वह जनसाधारण के लिए बोधगम्य बन जायेगी। इससे 'उच्च हिन्दी' तथा 'उच्च उर्दू' में भी समन्वय होना प्रारम्भ हो जायेगा जिसे आज कुछ लोग असम्भव मानते हैं। उर्दू की सब से बड़ी कठिनाई यह है कि इसके प्राचीन साहित्य का सम्पूर्ण वातावरण बहुत-कुछ विदेशी है। इसकी लिपि भी इतनी दोषपूर्ण है कि इसमें स्वरों का निश्चित मूल्य नहीं है और व्यंजन में कई ध्वनियाँ अनावश्यक हैं। इसका एक परिणाम यह हुआ है कि संस्कृत के साधारण-से-साधारण तथा हिन्दी के ठेठ शब्दों को उच्चारणानुसार लिखने में यह लिपि सर्वथा असमर्थ है; किन्तु भविष्य में यह स्थिति रहनेवाली नहीं है। भारत ज्यों-ज्यों राष्ट्रीयता के पथ पर अग्रसर होता जायेगा, त्यों-त्यों विविध धर्मों, जातियों तथा क्षेत्रों के लोग निकट आते जायेंगे। इसका प्रभाव भाषा पर पड़े बिना न रह सकेगा। उर्दू को हिन्दी के निकट लाने के लिए यह अत्यावश्यक है कि इसके समस्त वाङ्मय को नागराक्षरों में प्रकाशित किया जाय। इस शुभ कार्य का आरम्भ भी हो चुका है।

हिन्दी के विविध रूपों के समन्वय के लिए एक और आवश्यक बात यह है कि उत्तरी भारत की विविध भाषाओं एवं बोलियों, यथा—पंजाबी, बाँगरू, खड़ीबोली, व्रज, कन्नौजी, बुंदेली, अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी एवं राजस्थानी,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तथा विहार की विविध बोलियों के कोश तैयार किये जायें। इन भाषाओं की बोलियों में अनेक ऐसे ठेठ भाव-व्यंजक शब्द मिलेंगे जिनके प्रयोग से हिन्दी के विविध रूपों में समन्वय स्थापित करने में सहायता मिलेगी। ऐसे कोशों के अभाव में किसी को आज यह ज्ञात नहीं हो पाता कि हिन्दी के ठेठ (तद्भव) शब्दों का क्षेत्र कहाँ तक है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि इन कोशों के निर्माण के बाद ऐसे अनेक श्रेष्ठ शब्द मिलेंगे जो पंजाब से बिहार तक प्रचलित हैं। आज लोग ऐसे शब्दों का प्रयोग करते समय इसलिए घबराते हैं कि वे इन्हें एकदेशीय एवं क्षेत्रीय माने बैठे हैं। हिन्दी को सशक्त बनाने एवं इसके विविध रूपों में समन्वय स्थापित करने के लिए ऐसे कोशों का निर्माण अत्यावश्यक है। कतिपय विद्वानों के अनुसार हिन्दी के विविध रूपों में समन्वय स्थापित करने के लिए यह आवश्यक है कि इसके व्याकरण का सरलीकरण किया जाय। इन विद्वानों के अनुसार हिन्दी के अप्राणिवाचक शब्दों में या तो लिंगभेद मिटा दिया जाय अथवा प्रत्ययों के अनुसार उसे निर्धारित कर दिया जाय। उदाहरणार्थ—हिन्दी के अप्राणिवाचक अकारान्त शब्दों को पुंल्लिग तथा इकारान्त वाचक शब्दों को स्त्रीलिंग मान लिया जाय। आज की साधु हिन्दी में भात पुंल्लिग तथा दाल स्त्रीलिंग है। और बोलते समय हम कहते हैं कि भात अच्छा है और दाल अच्छी है। किन्तु सरल हिन्दी में कहना होगा कि भात अच्छा है और दाल भी अच्छा है।

ये विद्वान् यह भी चाहते हैं कि हिन्दी-व्याकरण की अन्य जटिलताओं को भी सरल बनाया जाय। उदाहरणार्थ साधुहिन्दी में कहा जायेगा—'मैं आया', 'हम आये', 'तू आया', 'तुम आये', 'वह आया', 'वे आये'। स्त्रीलिंग एकवचन में 'आई', बहुवचन में 'आईं', किन्तु सरलहिन्दी में केवल एक ही रूप 'आया', चलेगा। इसी प्रकार जहाँ हम साधुहिन्दी में कहते हैं—'मैंने भात खाया', 'मैंने रोटी खाई', 'मैंने तीन रोटियाँ खाईं'; (संस्कृत) 'मया भक्तं खादितं', 'मया रोटिका खादिता', 'मया तिस्रः रोटिका खादिताः'; वहाँ सरल हिन्दी में हम कहेंगे—"हम भात खाया', 'हम रोटी खाया', 'हम तीन रोटी खाया।'

एक बात और है। कतिपय राजनीतिज्ञ विदेशी भाषाओं, विशेषरूप से अँग्रेजी के अधिक-से-अधिक शब्द हिन्दी में ग्रहण कर इसे समृद्ध बनाने की बातें करते हैं। इसमें कोई हानि नहीं है। जिस प्रकार संसार में कोई शुद्ध रक्तवाली जाति नहीं है उसी प्रकार कोई शुद्ध भाषा भी नहीं है। संस्कृत-जैसी भाषा में भी 'मटची', 'होरा', एवं 'कीचक' जैसे शब्द द्रविड़, ग्रीक तथा चीनी भाषा से आए हैं। किन्तु किसी भी भाषा में दूसरी भाषा से शब्द उधार लेते समय इस बात पर ध्यान देने की आवश्यकता है कि उधार लिए गए शब्द उस

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भाषा की प्रकृति एवं गठन के अनुकूल हैं अथवा नहीं? इसके साथ ही इस बात को भी स्मरण रखने की जरूरत है कि शब्दों को उधार लेने की भी एक सीमा होती है।

जहाँ तक हिन्दी-व्याकरण के सरलीकरण का प्रश्न है, इसमें सन्देह नहीं कि ऊपर की प्रक्रिया द्वारा यह अत्यधिक सरल हो जायेगा और इसे एक पोस्टकार्ड पर लिखना सम्भव हो जायेगा। किन्तु इस सरलीकरण के परिणामस्वरूप हिन्दी, हिन्दी न रह जायेगी और उसकी प्रकृति के विरुद्ध इसमें भयानक परिवर्तन हो जायेगा। जहाँ तक भाषा में परिवर्तन का प्रश्न है, यह ऐतिहासिक कारणों से स्वाभाविक ढंग से होता है। किसी भी राजनीतिज्ञ, वैयाकरण अथवा भाषाशास्त्री को यह अधिकार नहीं है कि वह भाषा में मनमाने ढंग से परिवर्तन करे। वस्तुतः वैयाकरण एवं भाषाशास्त्री का एकमात्र यह कार्य है कि वह भाषा-सम्बन्धी नियमों तथा भाषा की विश्लेषण-पद्धति का निर्माण करे। सच बात तो यह है कि किसी भाषा को रूप देनेवाले उसके लेखक होते हैं। वे ही भाषा को सरल, कठिन, स्वाभाविक एवं अस्वाभाविक बनाते हैं। भाषा के विविध रूपों में समन्वय स्थापित करने का कार्य भी लेखकों द्वारा ही सम्पन्न होता है। हिन्दी के लेखक अपने उत्तरदायित्व को भलीभाँति जानते हैं और हिंदी के विविध रूपों में समन्वय करने के लिए वे सचेष्ट भी हैं।

● ●

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हिन्दी भाषा-शिक्षा की समस्या

हिन्दी भाषा का विस्तार क्षेत्र ज्यों-ज्यों बढ़ता जा रहा है, त्यों-त्यों उसके शिक्षण की समस्या भी विकट होती जा रही है। वास्तव में भाषा का मुख्य कार्य विचारों का वहन करना है और जब तक उसका शुद्ध रूप में उच्चारण न होगा तब तक श्रोता उसके पूर्ण भाव को ग्रहण न कर सकेगा। भाषा की शुद्धता सापेक्षिक वस्तु है। साधारणतया, किसी भाषा के बोलनेवाले शिष्ट लोगों का उच्चारण ही प्रामाणिक माना जाता है। इस प्रामाणिकता के साथ ही स्थान-विशेष का भी सम्बन्ध जुटा रहता है। यदि अँग्रेजी भाषा का उदाहरण लें, तो लंदन के शिष्ट जनों की भाषा ही प्रामाणिक अथवा मानक (स्टैण्डर्ड) मानी जाती है। इन शिष्ट जनों में भी ब्रिटिश संविधान के अनुसार वहाँ के राजवंश का सर्वोपरि स्थान है, अतएव वहाँ 'किंग्स' अथवा 'क्वीन्स' (राजा अथवा रानी) की भाषा ही मानक मानी जाती है। इसी प्रकार प्रत्येक भाषा का मानकरूप निर्धारित किया जाता है।

भारतीय संविधान ने क्षेत्रीय भाषाओं के रूप में चौदह भाषाओं को स्वीकार किया है। इसमें एक उर्दू भी है। बहुत पहले से ही यह बात निश्चित है कि दिल्ली एवं लखनऊ के शिष्ट परिवार के लोग ही शुद्ध उर्दू बोलते हैं। यहाँ राजवंशों की चर्चा मैंने इसलिए नहीं की, क्योंकि अब वे समाप्त हो गये हैं। इसी प्रकार शुद्ध 'बंगला' एवं शुद्ध 'मराठी' क्रमशः पश्चिमी बंगाल एवं पुणे के शिष्ट परिवारों के लोग ही बोलते हैं। गुजराती, असमिया, उड़िया, कश्मीरी, तमिल, तेलुग, मलयालम, कन्नड़ के भी मानकरूप इसी प्रकार निर्धारित हुए हैं। किन्तु हिन्दी का प्रामाणिक एवं मानकरूप कहाँ बोला जाता है तथा इसके बोलने-वाले कौन लोग हैं, यह एक विचारणीय प्रश्न है और इस ओर अभी तक लोगों का ध्यान नहीं गया है। हिन्दी जन-भाषा है और इसके अनेक रूप हैं। इस दृष्टि से भारतीय भाषाओं में इसका एक विशिष्ट स्थान है। अपने मूल स्थान उत्तरप्रदेश के अतिरिक्त यह हिमाचलप्रदेश, मध्यप्रदेश, राजस्थान, बिहार दिल्ली एवं हरयाणा की साहित्यिक भाषा है। मातृभाषा के रूप में, इन सभी प्रदेशों में विभिन्न बोलियों का प्रयोग होता है, किन्तु इन प्रदेशों की शिक्षा का माध्यम हिन्दी ही है। इसके अतिरिक्त कलकत्ता एवं बम्बई के बाजारों में भी अहिन्दी भाषा-भाषी हिन्दी माध्यम से ही अपना कामकाज करते हैं। इस रूप में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यह व्यापारिक भाषा भी है। और देश के औद्योगीकरण के साथ-साथ इसके रूप का प्रचार एवं प्रसार दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है। इस तरह हिन्दी के आज अनेक स्तर बन गये हैं —

(१) साहित्यिक स्तर,

(२) प्रादेशिक स्तर (बिहारी, राजस्थानी आदि),

(३) बाजारू स्तर।

एक ही भाषा में इस प्रकार के स्तरों का होना अच्छा नहीं है, क्योंकि इस कारण से पारस्परिक बोधगम्यता में बाधा पड़ती है। हिन्दी की विभिन्नताओं एवं विविधताओं को दूर करके उसका एक मानकरूप देश के सामने लाना आज हिन्दीवालों का कर्तव्य है। आज विविध विश्वविद्यालयों में पठन-पाठन के लिए हिन्दी का जो रूप है, वह बोलचाल की हिन्दी के रूप से पृथक् है और बाजारू हिन्दी से उसका और भी पार्थक्य है। आज इस बात की आवश्यकता है कि हिन्दी का एक मानकरूप निर्धारित किया जाये। यह प्रश्न कोई नया नहीं है। जब कोई भाषा किसी विशाल भूखंड की भाषा बन जाती है तब स्वाभाविक रूप से उसके सामने यह प्रश्न उपस्थित होता है। अँग्रेजी जब अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, कनाडा एवं भारत पहुँची तब उसे विशुद्ध रूप में सुरक्षित रखने के लिए अनेक संस्थानों की स्थापना की गयी। अँग्रेज आज भारत से चले गए, फिर भी उसके शुद्धरूप को सुरक्षित रखने के लिए हमारी स्वदेशी सरकार ने हैदराबाद में 'केन्द्रीय अँग्रेजी संस्थान' (सैण्ट्रल इंस्टीट्यूट ऑफ इंगलिश) की स्थापना की, जिसमें लाखों रुपये व्यय हो रहे हैं। अँग्रेजी भाषा की शुद्धता की रक्षा के लिए आज ब्रिटिश एवं अमेरिकन सरकारें करोड़ों रुपये व्यय करती हैं। प्राचीनकाल में भी इस प्रकार के उद्योग हुए हैं। ग्रीक भाषा का जब प्रचार एवं प्रसार बढ़ा तो मानक भाषा के रूप में 'कोइने ग्रीक' को स्वीकृत किया गया। इसी प्रकार प्राचीन भारत में जब संस्कृत का प्रचार-प्रसार बढ़ा तब उसकी सुरक्षा के लिए अथक परिश्रम किया गया। वेदों की भाषा को तो अनेक ब्राह्मण-परिवारों ने, अपना सर्वस्व त्याग करके, सुरक्षित रखा। भारत में आज भी अनेक ऐसे ब्राह्मण-परिवार हैं जो वेदमंत्रों का ठीक उसी रूप में उच्चारण करते हैं, जिस रूप में तीन हजार वर्ष पूर्व उनके पुरखे करते थे। विश्व की भाषाओं के इतिहास में यह मिसाल बेजोड़ है। संस्कृत के प्रचार और प्रसार के कारण जब उसके उच्चारण और वैयाकरणीय रूपों में विभिन्नता आने लगी तब महर्षि पाणिनि को 'अष्टाध्यायी' की रचना करनी पड़ी थी। उन्होंने संस्कृत भाषा को अपनी इस अमूल्य कीर्ति द्वारा स्थायित्व प्रदान किया और उसकी रक्षा की। पाणिनि के इस व्याकरण का ही प्रभाव

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है कि संस्कृत आज भी बहुत-कुछ अपने मूल रूप में सुरक्षित है। पतंजलि ने तो महाभाष्य में पाणिनि के एक सूत्र की व्याख्या करते हुए यह प्रश्न उठाया है कि किस स्थान के निवासी बिना व्याकरण पढ़े हुए शुद्ध संस्कृत बोलते हैं। पतंजलि के अनुसार आर्यावर्त के ब्राह्मण शुद्ध एवं मानक संस्कृत बोलते हैं, किन्तु इन ब्राह्मणों में भी प्रामाणिक संस्कृत वही बोलते हैं जो कुम्भीधान्य (मिट्टी के घड़े में अन्न रखनेवाले) अलोलुप एवं अगृहमाण (जो किसी का दिया हुआ कुछ ग्रहण नहीं करते) हैं। ऐसे ब्राह्मण पाणिनि की अष्टाध्यायी पढ़े बिना ही शुद्ध संस्कृत बोलते हैं।

अर्वाचीन एवं प्राचीन भाषा-विषयक तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, यह परमावश्यक है कि हम हिन्दी के मानकरूप के सम्बन्ध में भी विचार करें। जब तक शिक्षा का सार्वजनीन रूप नहीं हुआ था और केवल उच्च एवं शिष्ट परिवारों के व्यक्तियों तक ही वह सीमित थी तब तक हिन्दी के शुद्ध उच्चारण में किसी प्रकार के स्खलन की आशंका न थी किन्तु जब से जन-गण का जागरण हुआ है, तब से सभी प्रकार के लोगों के लिए शिक्षा आवश्यक हो गयी है। प्रजातंत्र में शिष्ट-अशिष्ट अथवा ऊँच-नीच की भावना के लिए स्थान नहीं है। इसका एक परिणाम हिन्दी भाषा के उच्चारण पर पड़ा है। किसी भी सभा में युवकों के भाषणों को सुनकर उच्चारण की भ्रष्टता सहजरूप में ही अनुभव की जा सकती है। जिस प्रकार खोटा सिक्का खरे सिक्के को बाजार से निकाल देता है उसी प्रकार अशुद्ध उच्चारण भी शुद्ध उच्चारण को बहिष्कृत कर देता है। विदेशों में अध्यापकों को प्रशिक्षण के समय ध्वनिशास्त्र (फोनेटिक्स) एवं शुद्ध उच्चारण की नियमित रूप से शिक्षा दी जाती है। हमारे देश में अँग्रेजी पढ़ानेवाले अध्यापकों को अँग्रेजी-ध्वनिशास्त्र की शिक्षा दी जाती है किन्तु हिन्दी अध्यापकों को इस प्रकार की शिक्षा नहीं दी जाती और जहाँ दी भी जाती है, वह बहुत अपर्याप्त रूप में है। प्रशिक्षण महाविद्यालय (ट्रेनिंग कॉलेज) के प्राध्यापकों को अँग्रेजी-ध्वनिशास्त्र का अच्छा ज्ञान भले ही हो, किन्तु प्राचीन भारतीय आर्यभाषा-काल से आज तक हिन्दी-वर्णों के उच्चारण में जो परिवर्तन हुए हैं उनका ज्ञान इन प्राध्यापकों को नहीं ही होता है। हिन्दीभाषा के गठन एवं उसके रूप के सम्बन्ध में भी सरकार की ओर से जो अध्ययन हुए हैं, उनका कोई विवरण अभी तक पुस्तक या लेख-रूप में किसी प्रतिष्ठित पत्रिका में प्रकाशित नहीं हुआ है। विश्वविद्यालयों में अधिकांशतः हिन्दी-साहित्य के सम्बन्ध में ही अनुसन्धान कार्य होते हैं, किन्तु समग्ररूप से हिन्दी भाषा के भी विश्लेषण की आवश्यकता है, इस बात का अनुभव अभी तक विश्वविद्यालय के हिन्दी के प्राध्यापक नहीं कर पाये हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

एक कठिनाई और है। भाषा के क्षेत्र में अनुसंधान-कार्य करने के लिए साहित्य की अपेक्षा अनेक वर्षों के प्रशिक्षण एवं अनुभव की आवश्यकता होती है। इस क्षेत्र में हिन्दीभाषा बंगला, मराठी, तमिल, तेलुगु आदि भाषाओं से बहुत पीछे है। इस स्थिति को ध्यान में रखकर तथा हिन्दीभाषा के प्रचार-प्रसार को विशेष गति देने के लिए कुछ ठोस कदम उठाने की आवश्यकता है। इनमें से पहला कार्य हिन्दीभाषा के अध्ययन के लिए एक संस्थान की आवश्यकता है। यह संस्थान, हैदराबाद के केन्द्रीय इंगलिश संस्थान के अनुरूप होना चाहिए। इस संस्थान में हिन्दी के मानक (स्टैण्डर्ड) उच्चारण को प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए। इसमें सन्देह नहीं कि मध्यदेश (दिल्ली और काशी के बीच) ही में हिन्दी के मानक उच्चारण वाले व्यक्ति मिलेंगे। इस क्षेत्र के शिष्ट लोगों के भाषणों को टेप पर रेकर्ड करने की आवश्यकता है। स्वर्गीय बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' हिन्दी का उच्चारण बहुत शुद्ध रूप में करते थे। सम्भवतः रेडियो से उनके भी भाषण हमें प्राप्त हो जायें। अनेक शिष्ट जनों के भाषणों के रेकर्ड और विश्लेषण के बाद ही हम प्रत्येक वर्ण के उच्चारण-स्थान एवं उनके उच्चारण प्रयत्न के सम्बन्ध में पूर्ण विवरण देने में समर्थ हो सकेंगे। ध्वनियों के विश्लेषण के लिए आज अनेक मशीनें भी बन गयी हैं। इनकी सहायता से प्रत्येक हिन्दी-सार्थक ध्वनि का गहन एवं सूक्ष्म अध्ययन किया जा सकता है। इन अध्ययनों का परिणाम किसी पत्रिका में प्रकाशित होना चाहिए। विविध प्रशिक्षण महाविद्यालयों के प्राध्यापकों के लिए यह अनुसन्धान सुलभ होना चाहिए और धीरे-धीरे यह ज्ञान माध्यमिक एवं प्राथमिक शालाओं के अध्यापकों तक पहुँच जाना चाहिए। छात्र अपने अध्यापकों के उच्चारण का ही अनुकरण करते हैं। इस प्रकार हिन्दी का मानक उच्चारण छात्रों तक पहुँच जायेगा। रेडियो एवं सिनेमा को भी हिन्दी का यह मानक उच्चारण ग्रहण करना पड़ेगा, और इस प्रकार मानक-उच्चारण की समस्या हल हो जायेगी।

एक बात और है। हिन्दी के विविध क्षेत्रों में उच्चारण-सम्बन्धी अशुद्धियों की भी जानकारी आवश्यक है। हिन्दी की लेखन-प्रणाली में 'श्' 'ष्' एवं 'स्' तीन पृथक् ध्वनियाँ हैं, किन्तु आजकल 'ष्' का शुद्ध उच्चारण लुप्त हो गया है। आभिजात्य वर्ग के लोग इसका 'श्' उच्चारण करते हैं किन्तु अन्य लोग इसे 'स्' रूप में उच्चरित करते हैं। यह दूसरा उच्चारण शिष्ट वर्ग में आदृत नहीं है। अतएव 'श्' उच्चारण को ही प्रचलित करने की आवश्यकता है। बिहार के कुछ क्षेत्रों में 'र' और 'ड़' में उच्चारण-भेद नहीं है। उधर के अध्यापकों एवं छात्रों को इसका गहन ज्ञान कराना चाहिए। सच बात यह है कि आज हिन्दी भाषा जिन क्षेत्रों में साहित्यिक रूप में प्रचलित है, उन क्षेत्रों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

में प्रचलित बोलियों के भी सूक्ष्म अध्ययन की आवश्यकता है। इस प्रकार के उच्चारण-सम्बन्धी अध्ययन की, मानक हिन्दी के उच्चारण के अध्ययन से, तुलना करके ही हम यह जान सकते हैं कि क्षेत्रीय बोलियों के हिन्दी-अध्येताओं को मानक उच्चारण सीखने में वास्तविक कठिनाई क्या है।

यह तो हुई केवल हिन्दी क्षेत्र की बात। इसी प्रकार हमें भारत की अन्य चौदह भाषाओं से हिन्दी के तुलनात्मक अध्ययन की आवश्यकता है। अन्य भाषा-भाषियों को मानक ध्वनि के सीखने में कहाँ कठनाई हो रही है, यदि यह ज्ञात हो जाये तो सहज में ही उसका निराकारण किया जा सकता है। यही बात हिन्दी-व्याकरण के सम्बन्ध में भी है। आज यह बात सर्वमान्य हो चुकी है कि प्रत्येक भाषा का अपना ढाँचा एवं स्वरूप होता है। हिन्दी-भाषा का भी अपना स्वरूप है। इस स्वरूप का ज्ञान उसके ध्वनिग्रामों, पदग्रामों एवं वाक्यों में पदों के स्थान के अध्ययन के आधार पर ही किया जा सकता है। वस्तुतः इस अध्ययन के परिणामस्वरूप हिन्दी का एक मानक व्याकरण तैयार किया जा सकता है। अन्य क्षेत्रीय भाषाओं—बंगला, गुजराती, मराठी, तमिल, तेलुगु, मलयालम, कन्नड़ आदि—के मानक व्याकरणों से हिन्दी के मानक व्याकरण की तुलना करके अन्य भाषा-भाषियों की कठिनाई को सहज में ही समझा जा सकता है। इस प्रकार के तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा हिन्दी को समग्र देश के लिए सरल एवं सुलभ बनाया जा सकता है। यह एक विचित्र विडम्बना है कि विदेशी भाषा के शुद्ध प्रचार एवं प्रसार के लिए तो यहाँ शोध-संस्थान की स्थापना की गयी है किन्तु जिस भाषा को हम राजभाषा एवं राष्ट्र-भाषा के रूप में देश में प्रचलित करना चाहते हैं, उसके शुद्ध औच्चारणिक एवं व्याकरणिक रूपों के अध्ययन की कोई व्यवस्था नहीं है।

एक बात और उल्लेखनीय है। भाषा-शास्त्रियों ने भाषाओं के सिखाने की ऐसी प्रणाली का आविष्कार किया है, जिसके द्वारा कोई भी भाषा सहज ही में अल्प समय में सिखायी जा सकती है। यह एक विचित्र बात है कि विदेशी एवं क्षेत्रीय भाषाओं के सिखाने में इस नवीन ज्ञान का उपयोग हमारे देश में नहीं किया जा रहा है। इसका कारण यह है कि विद्यालयों के प्राध्यापक नवीन प्रणाली से अनभिज्ञ हैं। अहिन्दी भाषी-क्षेत्र में शीघ्र हिन्दी सिखाने के लिए तथा इसी प्रकार हिन्दी क्षेत्र में अहिन्दी क्षेत्र की भाषाएँ सिखाने के लिए नवीन प्रणाली का उपयोग किया जा सकता है।

● ●

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

राष्ट्रभाषा-विषयक कतिपय प्रयोग

आज कतिपय विचारक तथा भाषाशास्त्री इस सिद्धान्त को नहीं मानते कि राष्ट्रीय एकता के लिए भाषा की एकता भी आवश्यक है। ऐसे लोग प्रायः स्विट्जरलैण्ड का उदाहरण देते हैं। स्विटजलैण्ड एक छोटा देश है किन्तु राष्ट्रभाषा के रूप में वहाँ चार भाषाएँ——फ्रेंच, जर्मन, इतालीय तथा रैटो-रोमांस-प्रचलित हैं। भाषा-सम्बन्धी इस विषमता के होते हुए भी स्विटजरलैंड एक राष्ट्र है। किन्तु इस अपवाद के बावजूद भी संसार के अधिकांश राष्ट्र राजनीतिक एकता के लिए भाषा-विषयक एकता को आवश्यक मानते हैं। उदाहरण के लिए हम संयुक्तराज्य अमेरिका को ले सकते हैं। यद्यपि यहाँ के विभिन्न राज्यों में यूरोप तथा एशिया के अनेक राष्ट्रों——जर्मनी, फ्रांस, स्पेन, रूस, चीन, जापान तथा भारत आदि——के लोग समय-समय पर आकर बस गये हैं, तथापि यहाँ राष्ट्रभाषा के रूप में केवल एकमात्र अँग्रेजी भाषा ही स्वीकृत है। अमेरिका के अन्तर्गत 'प्योर्टोरिको' तथा 'न्यूमेक्सिको', दो ऐसे क्षेत्र हैं जहाँ के लोगों की मातृभाषा स्पैनिश है, किन्तु यहाँ के लोग भी अँग्रेजी उसी रूप में सीखते हैं जिस रूप में अमेरिका के अन्य राज्यों के लोग। यदि किसी अमेरिका-निवासी से तर्क करते हुए आप यह कहें कि 'प्योर्टोरिको' में मुख्यरूप से स्पैनिश तथा द्वितीय भाषा के रूप में अँग्रेजी का पठन-पाठन होना चाहिए तो वह तुरन्त कह उठेगा——नहीं, प्योर्टोरिको अमेरिका का एक भाग है और अमेरिका का नागरिक होने के लिए मुख्यरूप से अँग्रेजी का ज्ञान आवश्यक है। अतः प्योर्टोरिको के लोगों को अँग्रेजी उसी रूप में जाननी चाहिए जिस रूप में अमेरिका के अन्य क्षेत्रों के लोगों को।[1] कदाचित् इस विवरण को पढ़कर कुछ लोग

---

[1] लेखक को एक दिन अपने एक जर्मन मित्र-प्रोफेसर की दो लड़कियों को विशुद्ध अँग्रेजी बोलते हुए सुनकर आश्चर्य हुआ। प्रोफेसर महोदय से पूछने पर ज्ञात हुआ कि उनकी ये लड़कियाँ एक ऐसे अच्छे अँग्रेजी स्कूल में पढ़ती हैं जहाँ उच्चारण आदि पर विशेष ध्यान दिया जाता है। किन्तु वास्तविक कारण तो यह है कि इन लड़कियों के सामने प्रोफेसर महोदय अपनी पत्नी से कभी भी जर्मन नहीं बोलते तथा सदैव अँग्रेजी का ही प्रयोग करते हैं। उनका कहना है कि द्वितीय भाषा के रूप में ये लड़कियाँ जर्मन तो बाद में सीख लेंगी किन्तु चूँकि वे अब अमेरिका के नागरिक हो चुके हैं अतः देश के विधान के अनुसार उनकी लड़कियों को, मुख्य रूप से, अंग्रेजी का ज्ञान आवश्यक है। ——लेखक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चौंकें और सोचें कि तब तो अमेरिका के लोग भाषा के मामले में बड़े तानाशाह हैं, किन्तु उनकी यह धारणा निर्मूल होगी। आज अमेरिका के लोग संसार के विविध देशों की भाषाओं को सीखने में जितने तत्पर हैं उतना, रूस को छोड़कर कदाचित् किसी अन्य देश के लोग नहीं। आज आप अमेरिका के किसी भी विश्वविद्यालय में चले जायँ, वहाँ आपको यूरोप तथा एशिया की सभी मुख्य भाषाओं के अध्यापक और अध्येता मिलेंगे। वहाँ के कई विश्वविद्यालयों में हिन्दी के अध्ययन-अध्यापन का प्रबन्ध है। जिस रूप में यहाँ के लोग हिन्दी में दिलचस्पी लेने लगे हैं उसे देखते हुए ऐसा प्रतीत हो रहा है कि अगले दस वर्षों में वहाँ के सभी विश्वविद्यालयों में हिन्दी का प्रवेश हो जायेगा। इसके अतिरिक्त वहाँ के कतिपय विश्वविद्यालयों में बंगला, गुजराती, सिंहली, तमिल तथा कन्नड़ की भी पढ़ाई का प्रबन्ध है। विदेशी भाषाओं में पहले वहाँ के लोग फ्रेंच, जर्मन तथा स्पैनिश को पसन्द करते थे, किन्तु इधर लोग रूसी भाषा की ओर विशेष रूप से आकृष्ट हो रहे हैं। यहाँ पुनः यह प्रश्न उठ सकता है कि जब अमेरिका के लोग विदेशी भाषाएँ सीखने में इतने उदार हैं तो वे स्पैनिश भाषा के क्षेत्र में अँग्रेजी को क्यों लादना चाहते हैं? इसका सीधा उत्तर यह है कि विश्वमैत्री के लिए जहाँ अमेरिका के लोग यूरोप, एशिया तथा अफ्रीका की विविध भाषाओं को सीखना चाहते हैं वहाँ आन्तरिक एकता के लिए वे अमेरिका के प्रत्येक नागरिक के लिए, मुख्यरूप से अँग्रेजी का ज्ञान आवश्यक समझते हैं।

भाषा के सम्बन्ध में लोगों में सब से बड़ी भ्रान्ति यह है कि वे इसे नैसर्गिक वस्तु माने बैठे हैं। किन्तु वास्तविक बात यह है कि भाषा पूर्णतया सामाजिक वस्तु है। यहाँ स्वाभाविक रूप में यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि जब भाषा समाज की चीज है तो जिसप्रकार हम समाज के नियंत्रण या विकास के लिए अधिनियम अथवा कार्यक्रम (प्लान) बनाते हैं उसी प्रकार क्या हम भाषा की गतिविधि को परिचालित करने अथवा उसे परिनिष्ठितरूप देने के लिए कोई कार्यक्रम बना सकते हैं? इसका उत्तर है, हाँ। और इसका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण यूरोप का नार्वे प्रदेश है। वहाँ राष्ट्रभाषा के रूप में, एक परिनिष्ठित भाषा को विकसित करने का, राष्ट्रीय धरातल पर किस प्रकार प्रयत्न हो रहा है, यह एक दिलचस्प कहानी है।

प्रायः चार शताब्दियों तक डेनमार्क की अधीनता में रहने के पश्चात्, सन् १८१४ ई० में नार्वे स्वतत्र हुआ। स्वतंत्रराष्ट्र के रूप में नार्वे के निवासी अपने उस सांस्कृतिक सूत्र की खोज में संलग्न हुए जिससे वे मध्ययुग में ही विछिन्न हो चुके थे। राष्ट्रीय व्यक्तित्व के अनेक प्रतीकों में उन्हें सर्वप्रथम नार्वेजियन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भाषा का सूत्र हाथ लगा। स्वतंत्रता के जोश में चारों ओर से आवाजें आईं— नार्वेजियन भाषा का उद्धार करो। बात यह थी कि यद्यपि नार्वे की भाषा डेनमार्क की भाषा से भिन्न थी तथापि वर्षों की परतंत्रता के कारण, शिष्टभाषा के रूप में नार्वे में डैनिश भाषा ही प्रचलित हो गई थी। स्वतंत्रता-प्राप्ति के समय नार्वे की भाषा-विषयक समस्या इस प्रकार थी —

(१) डेनमार्क से आकर नार्वे में बसे हुए सरकारी कर्मचारी तथा व्यापारी प्रायः डैनिश भाषा का ही प्रयोग करते थे। रंगमंच की भाषा भी डैनिश ही थी क्योंकि पात्र प्रायः डेनमार्क के ही होते थे।

(२) परिनिष्ठित साहित्यिक-भाषा के रूप में डैनिश भाषा ही प्रचलित थी, यद्यपि इस पर नार्वेजियन भाषा के उच्चारण का स्पष्ट प्रभाव था। यही भाषा स्कूली शिक्षा के लिए भी स्वीकृत थी।

(३) डैनिश भाषा का एक साधारण परिनिष्ठित रूप भी था जिसका व्यवहार सरकारी कर्मचारी करते थे। भाषा के इस रूप पर भी नार्वेजियन उच्चारण का प्रभाव था।

(४) विभिन्न नगरों में जो डैनिश भाषा प्रचलित थी उस पर पड़ोस की नार्वेजियन भाषा का अत्यधिक प्रभाव था।

(५) विभिन्न क्षेत्रों में स्थानीय बोलियाँ प्रचलित थीं। रंगमंच की भाषा तथा इन क्षेत्रीय बोलियों में इतना अधिक अन्तर था कि ये परस्पर दुर्बोध्य थीं।

भाषा-सम्बन्धी इस विकट समस्या को सुलझाने के लिए १९वीं शताब्दी के मध्य में दो व्यक्तियों ने प्रयत्न किया इनमें से एक कुड् कुडसेन (Knud knudsen सन् १८१२ से १८९५ ई०) थे। आपका जन्म गाँव में हुआ था तथा आप एक साधारण स्कूल के अध्यापक थे। आपने लिखित डैनिश भाषा को बोलचाल की डैनिश नार्वेजियन भाषा के निकट लाने का आन्दोलन किया। आप समझते थे कि इस प्रकार धीरे-धीरे अन्त में, नार्वेजियन भाषा डैनिश भाषा का स्थान ग्रहण कर लेगी। सन् १८५६ ई० में आपने इस भाषा का व्याकरण लिखा, तथा सन् १८८१ ई० में एक कोश भी तैयार किया जिसमें विदेशी शब्दों के स्थान पर देशी शब्दों को रखा। भाषा-विषयक दूसरे आन्दोलनकर्त्ता इवार आसेन (Ivar Aasen सन् १८१३ से १८९६ ई०) नामक एक स्वयं शिक्षित किसान थे। आपने नार्वेजियन ग्रामीण भाषा को प्रतिष्ठापित करने का आन्दोलन किया। आपने सन् १८६४ ई० में इस भाषा का व्याकरण तथा सन् १८७३ ई० में इसका कोश लिखा। आपने इसका नामकरण लैंड-मल अथवा ग्रामीण भाषा किया।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दोनों आन्दोलनकर्ताओं का अन्तिम लक्ष्य यद्यपि नार्वेजियन भाषा की प्रतिष्ठा थी किन्तु दोनों के ढंग अलग-अलग थे। इनमें से कुड्सेन तो क्रमशः सुधार के पक्ष में थे किन्तु आसेन क्रान्तिकारी सुधारवादी थे। चूंकि दोनों का अन्तिम ध्येय एक था, अतः सन् १८८४ में जब वामपक्षीय उदार राष्ट्रीय दल की विजय हुई तो उन्होंने दोनों के विचारों का स्वागत किया। सन् १८८५ ई० में नार्वे की सरकार ने आसेन 'लैंडमल' को डैनिश भाषा के बराबर स्थान दिया तथा इसके दो वर्ष बाद स्कूल के अध्यापकों को इस बात का आदेश दिया कि बालकों को पढ़ाते समय वे डैनिश की उच्चारण-पद्धति का परित्याग कर कुड्सेन द्वारा आविष्कृत डैनिश-नार्वेजियन पद्धति को अपनायें। इस आज्ञा के बाद से इन दोनों भाषाओं में एक विचित्र प्रतिस्पर्धा की भावना उत्पन्न हो गयी क्योंकि जनता में दोनों के पक्षपाती मौजूद थे। इधर सन् १९५१ ई० में नार्वे-सरकार ने भाषा-विषयक इस समस्या को सुलझाने के लिए इन दोनों भाषाओं के १५-१५ प्रतिनिधियों के एक बोर्ड का निर्माण किया है जिसमें विश्व-विद्यालयों तथा स्कूलों के अध्यापक, लेखक एवं सम्पादक हैं। इनकी सहायता तथा भाषा-सम्बन्धी अनुसन्धान के लिए इस बोर्ड में दो भाषा-शास्त्री भी हैं। बोर्ड के सदस्य नियमित रूप से कार्यालय में मिलते हैं, तथा सरकारी आदेश से दोनों भाषाओं के समन्वय से नार्वे के लिए राष्ट्रभाषा का निर्माण कर रहे हैं।

अरब राष्ट्रों तथा इजराइल में जो मनमुटाव है उससे भारत के लोग प्रायः परिचित हैं। संसार के राष्ट्रों में इजराइल नया है। इसने अपनी राष्ट्रभाषा आधुनिक हिब्रू कैसे प्राप्त की, यह भी एक रोचक कहानी है। इसके पूर्व, संक्षेप में, इजराइल का इतिहास जानना आवश्यक है। वस्तुतः इजराइल के निवासी, यहूदी, संसार की सर्वाधिक विताड़ित जातियों में से है। आज से शताब्दियों पूर्व, उस जाति के लोगों को अपना मूल स्थान फिलिस्तीन (पैलेस्टाइन) छोड़कर पूर्वी यूरोप में बसना पड़ा था। इनकी मूल भाषा हिब्रू थी, जिसका सम्बन्ध सामी परिवार की अरबी से है। यद्यपि अपने धार्मिक कृत्यों में यहूदी लोग हिब्रू का प्रयोग करते थे किन्तु बोलचाल की भाषा के रूप में ये 'यिडिश' का व्यवहार करते थे। वस्तुतः 'यिडिश' जर्मन की एक उपभाषा है जो १५वीं शताब्दी में मूल भाषा से विच्छिन्न होकर अस्तित्व में आयी। यहूदी लोगों ने इसे लिखने के लिए गाथिक अथवा रोमन लिपि के बजाय हिब्रू लिपि को ही अपनाया। हिब्रू की, अरबी की भाँति ही, अपनी लिपि है, जो दाएँ से बाईं ओर लिखी जाती है। मध्ययुग में, यहूदी लोग, यूरोप की सामन्तवादी परम्परा में विलीन हो जाने के लिए तत्पर थे, किन्तु यूरोप के सामन्त उन्हें अपने में सम्मिलित करने के लिए तैयार न हुए। इधर ईसाई लोगों में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2
इनके प्रति इतनी अधिक घृणा थी कि समय-समय पर इन्हें एक देश से निष्कासित होकर दूसरे देश में जाना पड़ा। इस परिस्थिति का दुःखद परिणाम चाहे जो कुछ रहा हो, किन्तु इसका सुखद पक्ष यह रहा कि इसने यहूदी जाति को नितान्त आत्मनिर्भर बना दिया। इसका शुभ परिणाम यह हुआ कि ज्ञान के क्षेत्र में यहूदी लोग संसार के उत्कृष्टतम लोगों की श्रेणी में आ गये और इस जाति ने कार्लमार्क्स जैसा विचारक तथा आइन्स्टाइन जैसा गणितज्ञ पैदा किया। आज भी यूरोप तथा अमेरिका में, ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में, यहूदी लोग अग्रगण्य हैं।

फ्रांस की राज्यक्रान्ति के वाद यहूदी लोगों को इस वात की आशा हुई कि कदाचित् ईसाई राष्ट्र उन्हें अपने में सम्मिलित कर लें क्योंकि इस राज्य-क्रान्ति का आरम्भ समानता, एकता तथा भ्रातृभाव के नारों से हुआ था। किन्तु अन्त में उन्हें निराश होना पड़ा। इसकी प्रतिक्रिया में यहूदी लोगों में 'ज़िओनिस्ट' आन्दोलन चल पड़ा जिसका नारा यह था कि अपने मूल स्थान फिलिस्तीन चलो। कतिपय उत्साही छात्र एवं युवक फिलिस्तीन गये भी। वहाँ ये पारस्परिक व्यवहार में यिडिश भाषा का ही व्यवहर करते थे। इसी वीच सन् १९१४ ई० का विश्व का प्रथम महायुद्ध आ पहुँचा। इस युद्ध में यहूदी लोगों ने अँग्रेजों का साथ दिया तथा वे तुर्कों के विरुद्ध इस युद्ध में लड़े भी। इनके एक वड़े विज्ञानी 'खाइम लाइट्ज़मैन' ने युद्धकाल में अँग्रेजों के लिए अनेक लाभदायक अनुसन्धान भी किये। इसका परिणाम यह हुआ कि अँग्रेजों ने यहूदी लोगों को फिलिस्तीन देने का वादा किया, किन्तु वे इसे पूरा न कर सके। अन्त में सन् १९४८ ई० में, संयुक्तराष्ट्र ने, जनसंख्या के आधार पर, फिलिस्तीन को, अरव तथा यहूदी लोगों में विभाजित कर दिया। इस प्रकार इजराइल राष्ट्र अस्तित्व में आया।

इजराइल राष्ट्र के अस्तित्व में आने के वाद, फिलिस्तीन में, यूरोप तथा अमेरिका से यहूदियों के दल पहुँचने लगे। इनमें से यूरोप के यहूदी तो यिडिश वोलते थे किन्तु अन्य स्थानों से आये हुए लोग इससे अपरिचित थे। अतः स्वाभाविक रूप में इनके सामने यह प्रश्न आया कि इजराइल की राष्ट्रभाषा क्या हो? कतिपय लोग 'यिडिश' के पक्ष में थे किन्तु अन्य लोग हिब्रू के पक्षपाती थे। इस प्रकार राष्ट्रभाषा के प्रश्न को लेकर इजराइल में घोर विवाद छिड़ गया। हिब्रू के सम्वन्ध में सव से वड़ी कठिनाई यह थी कि धार्मिक कृत्यों के अतिरिक्त यह दैनिक-जीवन की भाषा न थी। यह वात दूसरी थी कि कतिपय यहूदी लेखक अपनी कृतियों में इसका व्यवहार करते थे। ऐसे लेखकों में 'यलिएज़रमेन यहूदा' अग्रगण्य था। वह हिब्रू का घोर पक्षपाती था। वह फिलि-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्तीन गया और उसने प्रतिज्ञा की कि वह अपने परिवारवालों तथा मित्रों से हिब्रू के अतिरिक्त अन्य किसी भाषा में वार्तालाप न करेगा। यलिएज़रमेन यहूदा का यह रुख लोगों को पसन्द आया तथा उसके विचार के पोषकों की संख्या में अभिवृद्धि हुई। बाहर से आये हुए यहूदी पति-पत्नी भी टूटी-फूटी हिब्रू में ही अपने विचार प्रकट करने लगे। बच्चों के सामने वे हिब्रू के अतिरिक्त किसी अन्य भाषा का व्यवहार न करते थे। उधर स्कूलों में भी हिब्रू पढ़ाई जाने लगी। इसका परिणाम यह हुआ कि राष्ट्रभाषा के रूप में, इजराइल में, हिब्रू भाषा प्रचलित हो गयी। इसमें कुछ समय लगा। उधर आरम्भ में कतिपय वर्षों तक मुख्य राजभाषा के रूप में अँग्रेजी तथा सहायक भाषाओं के रूप में हिब्रू तथा अरबी व्यवहृत होती रहीं; किन्तु जैसे-जैसे लोगों में राष्ट्रीय तथा सांस्कृतिक भावना आती गयी वैसे-वैसे हिब्रू भाषा प्रतिष्ठापित होती गयी। इस प्रकार केवल दस वर्षों (१९४८-१९५८) के बीच ही, हिब्रू, इजरायल की समर्थ राष्ट्रभाषा बन गयी। आज वह प्राइमरी से लेकर विश्व-विद्यालय तक की शिक्षा का माध्यम है। अब यिडिश के प्रति भी लोगों का द्वेष नहीं है क्योंकि वह हिब्रू की प्रतिस्पर्धी भाषा नहीं। यह सच है कि हिब्रू में आधुनिक विज्ञान के शब्दों का अभाव है और उसका साहित्य भी विशाल नहीं है, किन्तु यहूदी जाति प्राणवान् तथा शक्तिशाली है; जिस प्रकार अपने परिश्रम के स्वेद से उन्होंने, रेगिस्तान में, इजराइल की भूमि को हरा-भरा बनाया है, उसी प्रकार वे हिब्रू भाषा को महान् बनाने के लिए प्रयत्नशील हैं। अब यहाँ राष्ट्रभाषा के सम्बन्ध में न तो कोई विवाद है और न कोई विरोध। यहाँ भी पारिभाषिक शब्दों के गढ़ने में विद्वानों को काफी कठिनाई है, किन्तु हिब्रू भाषा की प्रकृति के अनुकूल ऐसे शब्द बनते जा रहे हैं। अँग्रेजी का 'मशीन' शब्द हिब्रू ध्वनि के अनुसार 'मेखाना' बन गया है, और बिजली के लिए तो हिब्रू का अपना शब्द 'खश्मल' है। पाठ्य-पुस्तकों में, कभी-कभी लेखक एक ही शब्द के लिए विभिन्न पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग करते हैं, किन्तु कुछ ही दिनों में, घिस-पिटकर, इनमें से एक शब्द सर्वमान्य बन जाता है।[1]

[1]इस लेख की नार्वे-भाषा सम्बन्धी सामग्री प्रो० एनार हौगन के एक अप्रकाशित लेख तथा हिब्रू भाषा-सम्बन्धी सामग्री मित्रवर श्री लिओनार्डग्लेशियर से प्राप्त हुई है। श्री ग्लेशियर पेन्सिलवानिया वि० वि० में पीएच० डी० के छात्र हैं। लेखक इन सज्जनों का आभारी है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

राष्ट्रभाषा हिन्दी : कुछ विचार

हिन्दी आज संकटकाल में होकर गुजर रही है। बुझते हुए दीपक की लौ की तरह अपने अँग्रेजी-भक्त देशवासी मृतप्राय अँग्रेजी को संजीवनी देने का पूर्ण प्रयत्न कर रहे हैं। जिस प्रकार अराष्ट्रीय मनोवृत्ति के लोगों ने गांधीजी के जन-आन्दोलन का विरोध किया था, उसी प्रकार की मनोवृत्ति के लोग जन-भाषा हिन्दी एवं भारतीय भाषाओं का विरोध कर रहे हैं तथा जिस प्रकार के लोग इस देश में अँग्रेजों के बने रहने में ही राष्ट्र का कल्याण समझते थे उसी प्रकार की मनोवृत्ति के लोग विदेशी भाषा अँग्रेजी के बने रहने में ही देश का हित समझते हैं। इनका भारतीयता एवं राष्ट्रीयता के प्रति तनिक भी मोह नहीं है।

जिस समय भारत का संविधान बना था उस समय सद्यः प्राप्त स्वतंत्रता के कारण देश में राष्ट्रीयता की भावना प्रबल थी। जो अँग्रेजी और हिन्दुस्तानी के समर्थक थे, वे उस समय हतप्रभ थे। वस्तुतः स्वाधीनता-संग्राम केवल राजनैतिक स्वतंत्रता मात्र के लिए नहीं लड़ा गया था, यह 'स्वदेश' का, 'राष्ट्रीयता' का एवं आत्म-सम्मान का प्रश्न था। महात्मा गांधी का स्वाधीनता-संग्राम केवल राजनैतिक स्वतंत्रता तक ही सीमित नहीं था, अपितु उसका सम्बन्ध स्वदेशी वस्त्रों के प्रयोग, राष्ट्रभाषा हिन्दी की स्थापना, अँग्रेजी सभ्यता, एवं विदेशी वस्त्र एवं भाषा के बहिष्कार से था। वस्तुतः भारतीय संस्कृति के उत्थान एवं भारत में नवजागरण के इतिहास के साथ राष्ट्र-भाषा हिन्दी के विकास का इतिहास भी सम्बद्ध है। प्रार्थना-समाज एवं स्वामी दयानन्द सरस्वती का आर्यसमाज आदि संस्थाओं की ओर से हिन्दीभाषा का प्रचार होता था। बाद को भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम के उदय के साथ ही हिन्दी को राष्ट्रभाषा की स्वीकृति मिली। महाराष्ट्र के प्रसिद्ध क्रान्तिकारी डॉ० पांडुरंग सदाशिव खानखोज ने सन् १९०० ईस्वी में अँग्रेजी शृंखला से देश को मुक्त करने के लिये निर्मित 'बाल बांधव समाज' के बारे में लिखा है—

"हम लोगों के मन में परराज्य के प्रति घृणा और स्वातंत्र्य के लिए प्रेम था। इसका परिणाम 'बाल बांधव समाज' के रूप में हुआ और अँग्रेजी शृंखला से भारत को मुक्त करने का ध्येय इस 'बाल बांधव समाज' का हुआ। सन् १९०० में बांधव समाज की शाखायें नागपुर, वर्धा, अमरावती, यवतमल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आदि महाराष्ट्र के अन्य शहरों में स्थापित हुईं। और कुछ दिनों में बंगाल में कलकत्ता, पंजाब में लाहौर वगैरह शहरों में ये शाखायें पहुँचीं। वहाँ पर कार्य बढ़ने लगा, इस कार्य को करते-करते यह विश्वास दृढ़ हो गया कि हिन्दी ही एकमात्र राष्ट्रभाषा है और राष्ट्र-कार्य के लिए सब से सुलभ साधन है। लाहौर और गुरुकुल कांगड़ी में गुप्तरूप से बाल बांधव समाज की शाखायें स्थापित हुईं और वहाँ पर हिन्दी भाषा के जरिये हम लोगों के कार्य का प्रचार शुरू हुआ। लाला हंसराजजी, भाई परमानन्दजी, लाला लाजपतरायजी, सूफी अम्बाप्रसाद जी, अजीतसिंहजी आदि देशभक्तों एवं क्रान्तिकारियों का हमारे इस गुप्त कार्य में सम्पूर्ण सहयोग मिलने लगा।" इस प्रकार सम्पूर्ण भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा हिन्दी होने के कारण यह सब से अच्छा सुलभ साधन था। इस प्रकार बांधव समाज, अनुशीलन समिति और अन्य क्रान्तिकारी संस्थाएँ एक दूसरे से ऐसे समय मिलकर परिचय बढ़ाया करती थीं और सुलभ मार्ग से हिन्दी भाषा का प्रचार बढ़ता था।

समय-समय पर बंगाल के सभी राष्ट्र-प्रेमी एवं मनीषियों ने यह घोषणा की थी कि भारत में एक ऐसी राष्ट्रभाषा की आवश्यकता है जो सम्पूर्ण भारत में एकता ला सके तथा वह भाषा हिन्दी ही हो सकती है। बंगाल के समस्त नेताओं एवं समाज-सुधारकों ने यह आवाज बुलन्द की थी। माइकेल मधुसूदनदत्त, राजा राममोहन राय, महान् साहित्यकार श्री बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय, न्यायमूर्ति शारदाचरण तथा महान् नेता सुभाषचन्द्र बोस आदि सभी ने हिन्दी को राष्ट्र-भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने के संबंध में एक स्वर से अपनी वाणी मुखरित की थी। देवनागरी लिपि के प्रेमी, न्यायमूर्ति शारदाचरण ने कहा था—"हिन्दी समस्त आर्यावर्त की भाषा है—यद्यपि मैं बंगाली हूँ तथापि मेरे दफ्तर की भाषा हिन्दी है। इस वृद्धावस्था में मेरे लिए वह गौरव का दिन होगा जिस दिन मैं हिन्दी में स्वच्छता के साथ बोलने लगूँगा और प्लेटफार्म के ऊपर खड़ा होकर हिन्दी में वक्तृता दूंगा। उसी दिन मेरा जीवन सफल होगा जिस दिन मैं सारे भारतवासियों के साथ-साथ हिन्दी में वार्तालाप करूँगा।"

भारत के महान् सपूत नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने इस बारे में कहा था—'सब से पहले मैं एक गलतफहमी दूर कर देना चाहता हूं। कितने ही सज्जनों का ख्याल है कि बंगाली लोग या तो हिन्दी-विरोधी होते हैं या उसके प्रति उपेक्षा करते हैं। यह बात भ्रमपूर्ण है और इसका खंडन करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ। मैं व्यर्थ अभिमान नहीं करना चाहता, पर इतना तो अवश्य कहूँगा कि हिन्दी साहित्य के लिए जितना कार्य बंगालियों ने किया है, उतना हिन्दी-भाषी प्रान्तों को छोड़कर और किसी प्रान्त के निवासियों ने शायद ही

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

किया हो। मैं इस बात को मानता हूँ कि वंगाली लोग अपनी मातृभाषा से एकान्त प्रेम करते हैं और यह कोई अपराध नहीं है। शायद हममें से कुछ ऐसे आदमी भी हैं जिन्हें इस बात का डर है कि हिन्दीवाले हमारी मातृभाषा वंगला को छुड़ाकर उन पर हिन्दी रखवाना चाहते हैं, यह भ्रम भी निराधार है। हिन्दी-प्रचार का उद्देश्य यही है कि जो काम अँग्रेजी से लिया जाता है वह आगे चलकर हिन्दी से लिया जाय।"

सन् १९०१ से १९१० के वीच का इतिहास वस्तुतः भारतीय नवजागरण का इतिहास है। इसी समय में लॉर्ड कर्जन ने वंग-भंग किया जिसके कारण वंगाल में 'स्वदेशी आन्दोलन' का सूत्रपात हुआ। इस युग में राष्ट्रीयता की जो लहर उठी उसने राष्ट्रभाषा की ओर भारतीय तरुणों का ध्यान आकर्षित किया और उसके फलस्वरूप राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी राष्ट्रीयता का अविभाज्य अंग वनने लगी। उत्तरी भारत में हिन्दी को समुन्नत करने तथा उसे राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन करने का आन्दोलन चल पड़ा। कचहरियों एवं सरकारी कार्यलयों में उत्तरभारत की जनता की मातृभाषा हिन्दी को उचित स्थान प्राप्त कराने के लिए महामना पं० मदनमोहन मालवीयजी ने आन्दोलन छेड़ा। इस कार्य में राष्ट्रकर्मी वावू पुरुषोत्तमदासजी टंडन ने भी मालवीयजी की सहायता की। सन् १८९३ में स्थापित नागरी प्रचारिणी सभा काशी ने भी इस आन्दोलन में मालवीयजी का हाथ वँटाया। आगे चलकर, १० अक्टूबर सन् १९१० को हिन्दी साहित्य सम्मेलन की स्थापना हुई।

सन् १९१४ में गांधीजी दक्षिणी अफरीका से भारत आए। एक वार उन्होंने वावू पुरुषोत्तमजी टंडन को अपने एक पत्र में लिखा—"मेरे लिए हिन्दी का प्रश्न तो स्वराज्य का प्रश्न है।" महात्मा गांधीजी की प्रेरणा से सम्मेलन के तत्त्वावधान में दक्षिण में हिन्दी का प्रचार-कार्य आरम्भ हुआ और 'दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचार सभा' की नींव पड़ी। उस समय राष्ट्रपिता महात्मा गांधीजी की वाणी गूँज उठी थी—"मुझे पक्का विश्वास है कि किसी दिन द्रविड भाई वहन गम्भीर भाव से हिन्दी का अभ्यास करने लग जायेंगे, हम हिन्दी के जरिये ही दूसरी प्रान्तीय भाषाओं से परिचय प्राप्त कर सकते हैं, उनकी उन्नति कर सकते हैं। मैं आप से प्रार्थना करता हूँ कि आप हिन्दी को भारत की राष्ट्र-भाषा वनने का गौरव प्रदान करें। हिन्दी सब समझते हैं।"

उसी समय उन्होंने एक हुंकार भरी थी—"यदि मैं तानाशाह होता तो विदेशी माध्यम द्वारा शिक्षा तुरन्त वन्द कर देता, जो अध्यापक उस परिवर्तन के लिए तैयार न होते उन्हें वर्खास्त कर देता, पाठ्य-पुस्तकों के तैयार किये जाने का इन्तजार न करता।"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गांधीजी ने सर्वप्रथम हिन्दी का प्रचार दक्षिण भारत में आरम्भ किया और राजाजी के घर को हिन्दी-प्रचार का केन्द्र बनाया था। दक्षिण की राष्ट्रीय ऐक्य भावना राष्ट्रभाषा हिन्दी से जागृत हुई। गांधीजी ने हिन्दी के ही सहारे सम्पूर्ण भारत में भ्रमण किया। आवश्यकतानुसार उनके हिन्दी भाषणों का अनुवाद प्रादेशिक भाषाओं में हो जाता था। बाद में सारे नेताओं ने हिन्दी का सहारा लिया और कांग्रेस की प्रधान भाषा हिन्दी मानी जाने लगी।

जिस समय संविधान बनाया गया था उस समय देश में स्वतंत्रता-आन्दोलन की गर्मी थी। यद्यपि अँग्रेजी-प्रेमी उस समय भी हिन्दी के विरोधी थे, तथापि उस समय जनमत हिन्दी के पक्ष में इतना था कि वे बोल न सके। किन्तु संविधान स्वीकृत होने के पश्चात् राष्ट्रीय जोश क्रमशः ठण्डा पड़ता गया तथा दृष्टि प्रान्तवाद, भाषावाद एवं व्यक्तिगत स्वार्थों तक सीमित होती गयी।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् भले ही किन्हीं स्वार्थों के वशीभूत होकर अथवा विभ्रम में पड़कर राजाजी आज हिन्दी का विरोध करें, किन्तु भारत में जब राष्ट्रीय आन्दोलन चल रहा था उस समय उनके हृदय में आज की भाँति प्रादेशिकता का उन्माद नहीं था, राष्ट्रीयता की पवित्र भावना थी; इसी कारण उस समय उन्होंने कहा था—

"यदि हम प्रजातंत्र को उसके वास्तविक रूप में देखने की अभिलाषा रखते हैं तो व्यापक निमंत्रण को वास्तविक बनाने के लिए राज्य की एक ऐसी भाषा होनी चाहिए जो जनता के बहुत बड़े भाग द्वारा बोली तथा समझी जाती हो। केन्द्रीय सरकार तथा कानून की भाषा और प्रान्तीय सरकारों के तथा भारत सरकार के साथ परस्पर व्यवहार की भाषा हिन्दी अवश्य ही होगी। शिक्षा के मामले में यदि हमें शक्ति के अपव्यय को रोकना है और सम्पूर्ण पीढ़ी को दंडित होने से बचाना है तो हमें कुछ ही वर्षों में वस्तु का पूर्व ज्ञान कर लेना चाहिए। अतः वर्तमान पीढ़ी के लड़के को हिन्दी तुरन्त ग्रहण कर लेनी चाहिए, चाहे वह उनके विद्यालय के पाठ्यक्रम में पढ़ाई जाती हो अथवा नहीं।"

संविधान बनने के बाद हमारी सरकार को इस बात की तैयारी करनी थी कि सम्पूर्ण कार्य धीरे-धीरे हिन्दी में होने लगे तथा १९६५ तक इस स्थिति में पहुँच जाये कि सम्पूर्ण राजकाज केवल हिन्दी में ही हो सके। किन्तु वह ऐसा न कर सकी। हमारे नेता, जो राष्ट्रीय आन्दोलन में स्वराज्य की बात कहते थे, राष्ट्रीयता की बात कहते थे, शासन हाथ में आते ही सब भूल गये। अँग्रेजीपरस्त अफसर ही शासन करते रहे। ये नेतागण उनके हाथों की कठपुतली बने रहे। केन्द्र में हिन्दी-विरोधी और अँग्रेजी के अनन्य भक्त सत्ताधारियों का प्रभाव बढ़ता गया। भारतीय संविधान में हिन्दी को राष्ट्रभाषा स्वीकार कर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लेने के अनन्तर देश के प्रशासनिक क्षेत्रों में हिन्दी की जो प्रगति होनी चाहिए थी वह स्वल्पांश में भी न हो सकी। इन्हीं सब परिस्थितियों के बीच, अन्ततोगत्वा अप्रैल १९६३ में श्री लालबहादुर शास्त्री ने संसद में १९६५ के बाद भी अँग्रेजी को राजकाज की भाषा बनाए रखने के लिए राजभाषा सम्बन्धी विधेयक रखा।

श्री शास्त्रीजी का यह कार्य प्रधानमंत्री श्री नेहरू की इच्छा के अनुकूल ही था। यद्यपि हिन्दी राज्यों ने इसका समर्थन नहीं किया, फिर भी राष्ट्रीय एकता के नाम पर वे चुप रहे। संविधान के अनुसार सन् १९६५ तक सम्पूर्ण देश का सभी कार्य हिन्दी में होना चाहिए था, किन्तु ऐसा न हो सका। अहिन्दी भाषा-भाषियों को भूतपूर्व प्रधानमंत्री स्वर्गीय नेहरू ने यह आश्वासन दिया था कि अहिन्दी, भाषी राज्य केन्द्र से अँग्रेजी में पत्र व्यवहार कर सकते हैं। इसी आश्वासन की पुष्टि श्री लालबहादुर शास्त्री ने भी की। किन्तु इन स्पष्ट घोषणाओं के बावजूद दक्षिण में हिन्दी-विरोध की आड़ में जो ध्वंसात्मक एवं हिंसापूर्ण कार्य हुए हैं वे सभी लोगों को ज्ञात हैं। जिन लोगों ने यह कार्य किया है अथवा जिन व्यक्तियों या दलों ने ऐसे कार्य करने के लिए भोली-भाली जनता को उत्तेजित किया है, निश्चित ही वे अराष्ट्रीय प्रवृत्तियों के लोग हैं। आज भाषा के प्रश्न को लेकर सम्पूर्ण देश की मनःस्थिति में तनाव आ गया है। हिन्दी-विरोधी कृत्यों पर सन्त विनोबाजी इतने क्षुब्ध हुए कि उन्होंने अनिश्चित काल तक के लिए उपवास का व्रत ले लिया। जब उनकी तीन शर्तें केन्द्रीय सरकार एवं राज्य के सभी मुख्यमंत्रियों ने मान लीं तभी उन्होंने अपना उपवास तोड़ा है। उनकी तीन शर्तें इस प्रकार हैं—

(१) भाषा के प्रश्न को लेकर हिंसा का कोई प्रयोग न हो।
(२) दक्षिण पर हिन्दी नहीं थोपी जानी चाहिए।
(३) उत्तर भारत पर अँग्रेजी नहीं लादी जानी चाहिए।

आज हमें हिन्दी विरोधी कृत्यों के कारण देश में उत्पन्न विकट तनाव की स्थिति को बदलना होगा। सम्प्रति इस दिशा में निम्नलिखित कार्य आवश्यक हैं—

(१) हिन्दी-भाषी राज्यों का सम्पूर्ण सरकारी कार्य केवल हिन्दी भाषा के ही माध्यम से होना चाहिए।
(२) हिन्दी-भाषी प्रदेशों के सभी विश्वविद्यालयों के सभी विषयों के अध्यापन का माध्यम हिन्दी भाषा होनी चाहिए।
(३) हिन्दी-भाषी प्रदेश के सभी स्तर के न्यायालयों का सम्पूर्ण कार्य केवल हिन्दी में ही होने चाहिए तथा जनता के हितों को ध्यान में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रखते हुए न्यायाधीशों को इसके लिए बाध्य करना चाहिए कि वे अपने फैसले हिन्दी में ही दें।

(४) हिन्दी-भाषी राज्यों का केन्द्र से एवं केन्द्र का हिन्दी-भाषी राज्यों से पत्र-व्यवहार हिन्दी भाषा के माध्यम से होना चाहिए।

(५) सम्पूर्ण देश की सभी भाषाओं को लिखने के लिए यथासाध्य देवनागरी लिपि का अधिकाधिक प्रयोग होना चाहिए।

(६) सम्पूर्ण हिन्दीतर राज्यों में वहाँ की भाषाओं की ही प्रतिष्ठा होनी चाहिए तथा इन राज्यों का सम्पूर्ण कार्य वहाँ की भाषा के माध्यम से ही होना चाहिए।

(७) संघीय लोकसेवा आयोग की सभी परीक्षाओं का माध्यम राष्ट्रभाषा हिन्दी अथवा वैकल्पिक रूप में संविधान में स्वीकृत राजभाषाएं होनी चाहिए। किन्तु जो प्रत्याशी हिन्दी को अपनी परीक्षा का माध्यम नहीं बनाते उनके लिए सामान्य हिन्दी का एक अतिरिक्त प्रश्नपत्र होना चाहिए।

(८) देश की एकता के लिए हिन्दीक्षेत्र में अन्य स्वदेशी भाषाओं का आवश्यक रूप से प्रचार एवं प्रसार होना चाहिए।

वस्तुतः आज केवल हिन्दी की ही प्रतिष्ठा का प्रश्न नहीं है, अपितु सम्पूर्ण भारतीय भाषाओं की प्रतिष्ठा का प्रश्न है। अँग्रेजी को किसी भी रूप में बनाए रखने का अर्थ देश के अभिमान पर आघात, जनता से द्रोह एवं विघटन-कारी प्रवृत्तियों को प्रश्रय देना है।

वास्तव में जब तक हम देश में पूर्णरूप से राष्ट्रभाषा की प्रतिष्ठा नहीं कर लेते हैं तब तक हमारी स्वतंत्रता सदैव खतरे में रहेगी। देश की सुरक्षा एवं एकता की दृष्टि से भी यह आवश्यक है कि यथासम्भव सम्पूर्ण भारत में राष्ट्रभाषा हिन्दी का उसी रूप में प्रचार एवं प्रसार करें जिस रूप में अमेरिका एवं इंगलैण्ड में अँग्रेजी, रूस में रूसी, चीन में चीनी एवं जापान में जापानी भाषाओं की प्रतिष्ठा है। किन्तु यह कार्य तभी संभव है जब हम सम्पूर्ण देश में ४० प्रतिशत प्रचलित हिन्दी को पूर्ण रूप से प्रतिष्ठापित कर लेंगे। जब तक हिन्दी अपने घर में ही पूर्णरूप से आदृत न होगी तब तक अन्य राज्यों के लोग उसे कैसे ग्रहण कर सकेंगे? अतएव हमें जागरूक होकर आज भी हिन्दी के प्रचार एवं प्रसार में उसी प्रकार संलग्न हो जाना चाहिए जिस प्रकार संविधान में हिन्दी के स्वीकृत होने के पूर्व हम जागरूक थे। हमें इस बात का दुःख है कि आज कुछ स्वार्थी लोगों के कुचक्र के कारण पिछले कुछ वर्षों पूर्व से हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन निष्क्रिय हो गया है। इसी प्रकार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हमारे विभिन्न हिन्दी राज्यों के सम्मेलन भी प्रगाढ़ निद्रा में सो रहे हैं। काशी की नागरी प्रचारिणी सभा भी धीरे-धीरे नागरी-हिन्दी के प्रचार से उदासीन हो रही है।

लेकिन इसमें संदेह नहीं कि अभी भी यदि हम अस्सी प्रतिशत जनता में हिन्दी को पूर्णरूप से प्रतिष्ठित कर लेंगे तो सम्पूर्ण भारत में उसकी प्रगति में कोई बाधक न बन सकेगा। हिन्दी केवल भारत को ही नहीं, अपितु निकट भविष्य में वह एशिया की एक सफल माध्यम-भाषा के रूप में आनेवाली है। इसकी प्रगति को कोई रोक नहीं सकता।

● ●

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

साम्यवादी चीन की भाषा-समस्या

कहीं-कहीं एक ही देश में विभिन्न परिवारों की भाषाएँ बोली जाती हैं। उदाहरण के लिए यदि हम भारत को ही लें तो इसके उत्तरी भाग में भारोपीय परिवार की, पंजाबी, हिन्दी, पहाड़ी, राजस्थानी, बिहारी, बंगला, उड़िया, गुजराती, मराठी तथा असमिया आदि, बिहार तथा मध्यप्रदेश में मुण्डा परिवार की कोल, कुरकू, हो आदि बोलियाँ, हिमालय के पर्वतीय पूर्वी अंचल में तिब्बती-चीनी परिवार की गुरुँग, लेपूचा, रोंग आदि बोलियाँ तथा दक्षिणी भारत में तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम आदि, भाषाएँ एवं बोलियाँ प्रचलित हैं। ऐसे देश में अन्तर्प्रान्तीय व्यवहार के लिए एक राज्य अथवा राष्ट्रभाषा आवश्यक होती है। इसके विपरीत संसार में कतिपय ऐसे भी देश हैं जहाँ भाषा तो केवल एक ही परिवार की बोली जाती है किन्तु इसकी बोलियों में इतना अधिक अन्तर रहता है कि एक बोली के बोलनेवाले दूसरी बोली के बोलनेवालों से विचार-विनिमय नहीं कर पाते। ऐसी अवस्था में देश की एकता तथा राजनैतिक सुविधा के लिए किसी एक बोली को राज्यभाषा के रूप में स्वीकार करना पड़ता है। इसका सर्वोत्तम उदाहरण चीनी भाषा है। यद्यपि चीन में एकमात्र चीनी भाषा ही प्रचलित है, तथापि इसकी उपबोलियों में अत्यधिक अन्तर है। इस अन्तर का प्रमाण ईसापूर्व दो सौ इक्कीस (२२१ ई० पू०) से ही उस समय से मिलता है जब चीन एक साम्राज्य में परिणत हुआ था। चीन की जनसंख्या ६० करोड़ है। इनमें से साढ़े तीन करोड़ लोगों को छोड़कर शेष सभी लोग चीनी बोलते हैं, किन्तु चीन के पेकिंग तथा कैंटन नगरों की बोलियों में उतना ही अन्तर है जितना अँगरेजी तथा जर्मन में।

इसमें सन्देह नहीं कि समस्त चीन में लिखित भाषा का रूप एक ही है, किन्तु बोलियों में उच्चरित रूप से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। इसके अतिरिक्त लिखित भाषा में इतने अधिक चिह्नों का व्यवहार होता है कि केवल कुछ प्रतिशत शिक्षित लोग ही इनसे परिचित हैं। साम्यवाद के प्रचार के पूर्व, अनुमानतः ऐसे लोगों की संख्या अधिक से अधिक १५ प्रतिशत थी।

बोलियों की विभिन्नता का चीन में एक परिणाम यह हुआ कि भाषा-सम्बन्धी एकता के कारण एक ही देश के विभिन्न प्रदेशों में जो आर्थिक एवं सामाजिक उन्नति होती है उससे प्रायः वह शताब्दियों तक वंचित रहा। अनेक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

राजवंशों ने इस भिन्नता की भित्ति को तोड़ने का प्रयत्न किया किन्तु उन्हें सफलता न मिली। इधर जब से चीन में साम्यवादी सरकार की स्थापना हुई है तब से बराबर भाषा-सम्बन्धी एकता लाने के लिए वहाँ प्रयत्न चल रहा है। बात यह है कि किसी देश का पूर्ण औद्योगीकरण तब तक संभव नहीं है जब तक उस देश की समस्त जनता शिक्षित न हो जाय। टेक्निकल काम के लिए मजदूरों का प्रशिक्षित होना आवश्यक है। इधर चीन, एशिया में, औद्योगिक क्षेत्र में, सब से आगे बढ़ना चाहता है। अतः मजदूरों की शिक्षा की समस्या उसके सामने है। इस मार्ग में सब से अधिक बाधक है—चीन की बोली-सम्बन्धी विभिन्नता। चीन आज इस बात के लिए प्रयत्नशील है कि समस्त देश में एक भाषा और एक लिपि का प्रचार हो जाय किन्तु इस मार्ग में अनेक बाधाएँ भी हैं। वह अपनी भाषा-समस्या को भविष्य में किस प्रकार हल कर सकेगा, यह कहना कठिन है, किन्तु इस सम्बन्ध में वहाँ जो प्रयत्न हो रहे हैं उनका संक्षेप में यहाँ दिग्दर्शन कराया जाता है।

चीन की बोलियों को, मोटे तौर पर, निम्नलिखित पाँच वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

(१) यूएह—इसे लोग प्रायः कैंटनी नाम से जानते हैं।

(२) मिन—यह फुकियन नाम से प्रसिद्ध है। इसे केवल फुकियन प्रदेश के लोग ही नहीं बोलते अपितु सिंगापुर, मलाया, फार्मोसा तथा फिलीपाइन्स में बसे हुए चीनी लोग भी बोलते हैं। इसके अन्तर्गत तीन बोलियों का समावेश है जो परस्पर अबोधगम्य हैं।

(३) हक्का—यह वस्तुतः मंडारिन, कैंटनी तथा फुकियन बोलियों के सम्मिश्रण से निर्मित बोली है। चूँकि इस बोली के बोलनेवाले कैंटनी तथा फुकियन लोगों के बाद आये अतएव इन्हें अतिथि कहकर सम्बोधित किया गया।

(४) वु—इसके अन्तर्गत शंघाइ, हाँगचाउ, निंगपो, सुचाउ की बोलियाँ आती हैं। यद्यपि इन शहरों में से किसी की भी एक दूसरे से दूरी २०० मील से अधिक नहीं है तथापि एक शहर के लोग दूसरे शहर के लोगों की बोली को बिलकुल नहीं समझते।

ऊपर के चारों वर्गों की बोलियों के बोलनेवालों की संख्या १८॥ करोड़ है। शेष ४० करोड़ चीनी जनता 'कुओयु' बोलती है। यही एक प्रकार से यहाँ की राष्ट्रभाषा है और इसे ही मण्डारिन नाम से अभिहित किया जाता है। मण्डारिन की विभिन्न बोलियों में कहीं-कहीं पर सुर (टोन tone) का भेद है। किन्तु यह इतना अधिक नहीं है कि एक बोली बोलने वाले दूसरे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

की बोली न समझ सकें। इसके अतिरिक्त गत बीस वर्षों से बच्चों को यही भाषा पढ़ाई जा रही है।

एक वर्ग की ही विभिन्न बोलियों में पारस्परिक कितना अन्तर है इसके लिए 'वु' वर्ग की बोलियों से एक उदाहरण दिया जा सकता है। अन्यपुरुष एकवचन के सर्वनाम वह को शंघाई में 'यि', हाँगचाऊ' में 'ता', निंगपो में 'जि' तथा सुचाउ' में 'लि' बोलते हैं।

लिखित भाषा

चीन की उपबोलियों की विभिन्नता का एक परिणाम यह हुआ कि वहाँ उच्चारण के अनुसार लिखित भाषा का आविर्भाव न हो सका और वहाँ बहु-चिह्नों की एक ऐसी लिपि प्रचलित हो गयी जो गत तीन सहस्र वर्षों से अब तक चल रही है। प्रत्येक चीनी की लिखित भाषा का रूप तो एक है किन्तु उसका उच्चारण सर्वथा भिन्न है। इसका एक फल यह है कि जब दो विभिन्न बोलियों के बोलनेवाले चीनी एक दूसरे से मिलते हैं तो वे लिखकर ही परस्पर बातचीत करते हैं।

यदि सामासिक शब्दों को छोड़ दें तो चीनी-कोश में लगभग ५० हजार शब्द हैं। केवल साक्षर होने के लिए प्रत्येक चीनी को ६ हजार प्रतीकों या चिह्नों को सीखने की आवश्यकता होती है और साधारणरूप से प्रशिक्षित

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

होने के लिए तो उन्हें बारह हजार प्रतीकों को जानना पड़ता है। अँगरेजी तथा हिन्दी भाषा-भाषी बालक अँगरेजी के २६ अक्षरों तथा हिन्दी के ४३ अक्षरों (३३ व्यंजन, १० स्वर) को एक अवस्था के बाद कुछ ही महीनों में सीख लेते हैं, किन्तु चीनी बालक को चीनी प्रतीकों के सीखने में कम से कम पाँच वर्ष और अधिक लग जाते हैं। और तब भी वह चीनी समाचार-पत्र को पढ़ने में असमर्थ रहता है।

जिन लोगों ने केवल यह सुन रखा है कि चीनी लोग लिखने में चित्रलिपि का प्रयोग करते हैं उन्हें ऊपर की बातें अतिशयोक्तिपूर्ण लगेंगी। किन्तु जहाँ तक चीनी भाषा को चित्र-लिपि में लिखने की बात है वह केवल आंशिक रूप में ही सत्य है। यह सत्य है कि चीनी भाषा के अनेक प्रतीक मूलतः चित्र ही थे, किन्तु बाद में जब भाववाचक शब्दों के निर्माण की आवश्यकता पड़ी तो उन प्रतीकों में उनके समान ध्वनि वाले अन्य प्रतीक भी जोड़े गये।

चीनी भाषा की एक अन्य कठिनाई है—उसके शब्दों का अति लघुरूप। हिन्दी तथा अँगरेजी की अपेक्षा इसमें एकाक्षर शब्द अत्यधिक मात्रा में हैं और तीन अक्षर के शब्दों का तो इसमें एक प्रकार से अभाव-सा है। इसका एक परिणाम यह हुआ है कि इसमें अनेक शब्दों का उच्चारण प्रायः एक ही है, फिर भी किंचित् सुर (टोन) परिवर्तन से ही उनके अर्थ में महान् परिवर्तन हो जाता है। लिखित प्रतीकों में कभी-कभी इस अर्थ भेद को नवीन प्रतीकों द्वारा स्पष्ट किया जाता है। उदाहरणस्वरूप 'उसका' और 'टोकरी' दोनों का उच्चारण चीनी में पहले एक ही था; और इसलिए इनका प्रतीक भी एक ही था, किन्तु चूँकि टोकरी बाँस से बनती है अतएव मूल प्रतीकों में दो बाँसों का प्रतीक देकर टोकरी का अर्थ द्योतित किया गया।

आगे 'घोड़ा' शब्द को विभिन्न वर्गों के चीनी प्रतीकों में लिखा जा रहा है। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि समय की प्रगति से ये प्रतीक किस रूप में परिवर्तित होते रहे हैं—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(क) बल्कल तथा अस्थि शैली (१४वीं शताब्दी ई० पू०)

(ख) कांस्य शैली (१३वीं से ४थी शताब्दी ई० पू०)

(ग) महान् मुद्रा शैली (८वीं से ३री शताब्दी ई० पू०)

(घ) क्षुद्रमद्रा शैली (३री शताब्दी ई० पू०)

(ङ) लिपिक शैली (३री शताब्दी ई० पू०)

(च) घावित शैली (३री शताब्दी ई०)

(छ) घास शैली (३री शताब्दी ई०)

(ज) मुद्रण शैली (३री शताब्दी ई० से १९५६ ई०)

(झ) साम्यवादी शैली (१९५६ ई० से. . . .)

चीन का प्राचीनतम प्रतीकात्मक लेख ई० पू० १४वीं सदी का है। इस समय तक चीनी प्रतीक पूर्ण रूप से विकसित हो चुके थे। इसके बाद कांस्य तथा महान् मुद्रा शैलियों का युग आया। इन दोनों शैलियों में चीनी प्रतीक अत्यधिक कलात्मक बन गये। एक वार सन्त कन्फ्यूशस (ई० पू० ५५१-४७८) ने अपने शिष्यों से कहा था कि पर्वतों पर लिखित चीनी के ऐसे अनेक प्रतीक हैं जिन्हें पढ़ने में वे असमर्थ हैं।

चीन के प्रथम सम्राट् (ई० पू० २२१-२१०) ने यह घोषणा-पत्र निकाला कि देश के लिए क्षुद्रमुद्रा शैली को परिनिष्ठित माना जाय और सभी लोग उसका प्रयोग करें। चित्रों पर हस्ताक्षर करने के लिए आज भी समस्त चीन में इसी शैली के प्रतीकों का प्रयोग होता है। चूँकि यह शैली नितान्त कलात्मक थी इसलिए सम्राट् ने इसे सरल करके, इसके स्थान पर, लिपिक शैली को प्रचलित किया। ईसा की प्रथम शताब्दी में, चीन में, कागज का आविष्कार हुआ अतएव लिखने की शैली में पुनः परिवर्तन हुआ। ऐसा प्रतीत होता है कि लोग अब अधिक लिखने लगे थे इसके फलस्वरूप घावित शैली प्रचलित हुई।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आगे चलकर यह घास शैली में परिवर्तित हो गयी जो पहले की अपेक्षा अस्पष्ट थी। इसके बाद ही मुद्रण शैली का आविर्भाव एवं प्रचार हुआ। साम्यवादियों के आगमन के पूर्व तक स्कूलों, समाचारपत्रों तथा सरकारी घोषणाओं में मुद्रण शैली ही प्रयुक्त होती थी। यह दूसरी बात है कि व्यक्तिगत पत्र-व्यवहार में लोग इच्छानुसार प्रतीकों का ही व्यवहार करते हैं।

गत तीन हजार वर्षों से, इस प्रकार, लिखने के लिए चीन में प्रतीकों का प्रयोग होता रहा किन्तु इधर सौ वर्षों से इनमें सुधार का प्रयत्न चल रहा है। बात यह है कि साधारण रूप से शिक्षित होने के लिए, चीन में कम से कम ६ हजार प्रतीकों को लिखने का अभ्यास करना आवश्यक है। इसमें पर्याप्त समय और परिश्रम की आवश्यकता है जो आज के औद्योगिक एवं व्यस्त जीवन में संभव नहीं है।

सुधार के सम्बन्ध में एक बात यह भी उल्लेखनीय है कि एक शती के बाद दूसरी शती में केवल प्रचलित प्रतीकों में ही सुधार करने का प्रयत्न किया गया, इनके स्थान पर वर्णों को प्रयुक्त करने का किसी ने यत्न नहीं किया। सर्वप्रथम, सन् १५८८ ई० में विदेशी मिशनरियों ने चीनी भाषा पढ़ाने के लिए प्रतीकों के स्थान पर वर्णों का प्रयोग किया, किन्तु सन् १८९२ ई० के पूर्व चीनी विद्वानों का ध्यान इस ओर आकर्षित न हो सका। इसी समय लूकनचैंग नामक एक चीनी विद्वान् ने अपनी मातृभाषा 'अमॉया' (फुकियन की एक बोली) को उच्चारणानुसार लिखने के लिये वर्णों का प्रयोग किया। आगे चलकर इन वर्णों में ऐसे सुधार किये गये ताकि इनसे मण्डारिन चीनी भी लिखी जा सके। सन् १९०३ में एक अन्य चीनी विद्वान् ने वर्णों के द्वारा चीनी लिखने के लिए पेंकिंग में एक स्कूल खोला। सन् १९०३ वस्तुतः चीन के इतिहास में तूफानी साल था। इसी साल च्याँग वंश का अन्त हुआ था और जनता में राष्ट्रीयता की लहर दौड़ने लगी थी। इसका एक परिणाम यह हुआ कि स्वदेशी प्रतीकों के स्थान पर लोगों ने विदेशी वर्णों को अस्वीकार कर दिया। इस प्रकार प्रतीकों के स्थान पर चीन में ध्वन्यात्मक वर्णों को प्रचलित करने का जो प्रयत्न चल रहा था, वह स्थगित हो गया।

इस सम्बन्ध में दूसरा प्रयत्न, सन् १९१३ में, चीनी प्रजातंत्र की स्थापना के एक वर्ष बाद हुआ। इस समय विभिन्न प्रदेशों के विद्वानों का एक सम्मेलन हुआ जिसमें चीनी भाषा की उच्चारण-एकता पर विचार किया गया तथा इस सम्बन्ध में किंचित् कार्यवाही भी हुई। इसके पाँच वर्ष बाद चीनी सरकार ने प्रतीकों के आधार पर राष्ट्रीय-ध्वन्यात्मक प्रतीकों (National Phonetic Symbols) की स्वीकृति की घोषणा की। यथा—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

3 = न्, Y = अ, 3Y = न

इसके उच्चारण का आधार पेकिंग की मण्डारिन उपवोली थी। अन्य मण्डारिन उपवोलियों को लिखने के लिए इनके अतिरिक्त तीन और अधिक प्रतीकों का निर्माण किया गया। इसके वाद चीनी भाषा का एक कोश भी तैयार किया गया और चीनी प्रतीकों के साथ ही ध्वन्यात्मक प्रतीकों को देकर स्कूली पाठ्य-पुस्तकें तैयार की गयीं। इस तरह चीन के प्रारम्भिक कक्षाओं में मण्डारिन की पढ़ाई होने लगी, किन्तु अव तक के प्रयत्नों का उद्देश्य चीनी प्रतीकों को समाप्त करना न था अपितु नये प्रतीक वनाकर उनके उच्चारण में सहायता देना था।

प्रथम विश्वयद्ध के अवसर पर जेम्स वाई० सी० यन० ने एक हजार आधारभत चीनी प्रतीकों (शब्दों) का संग्रह किया और पारस्परिक व्यवहार के लिए इन्होंने यूरोप स्थित चीनी सैनिकों को सिखाया। ये शव्द इतने अधिक महत्वपूर्ण सिद्ध हुए कि वाद में चीन के ग्रामीण दूकानदार तथा किसान भी इनका प्रयोग करने लगे।

सन् १९२८ में, चीन में रोमन वर्णमाला को प्रचलित करने का प्रयत्न हुआ और उसे वैज्ञानिक एवं ध्वन्यात्मक वनाने के लिए अनेक चिह्नों का प्रयोग भी किया गया किन्तु यह प्रयोग सफल न हो सका। क्योंकि जनता ने उसे स्वीकार नहीं किया।

इसके वाद चीनी प्रतीकों के सुधार में रूसी विचारधारा का प्रभाव प्रारम्भ हुआ। सन् १९३१ में च० च्युपाई०, वू० यू० चंग तथा रूस स्थित साम्यवादी अनेक कार्यकर्त्ताओं ने चीनी-लेखन के लिए लैटिन वर्णों का प्रयोग आरम्भ किया। इस कार्य में अनेक रूसी विशेषज्ञों ने भी इनकी सहायता की। चु० प्राय० यह कहा करता था—"मैं नूतन लेखन-प्रणाली से अत्यधिक प्रभावित हूँ। मेरी इस समस्या में इसलिए दिलचस्पी है कि मैं करोड़ों चीनी जनता को साक्षर वनाना चाहता हूँ। जव तक मजदूर तथा किसान साक्षर नहीं होंगे तव तक चीन में मार्क्स तथा लेनिनवाद का पूर्णतया प्रचार न हो सकेगा।"

इसी समय जनता विश्वविद्यालय तथा लिखित भाषा सुधार-समिति के अध्यक्ष श्री वू०यू० चंग ने अपने सरकारी वक्तव्य में नूतन प्रणाली सम्वन्धी तेरह सिद्धान्तों को प्रकाशित किया जो इस प्रकार थे 'प्राचीन चीन की लेखन प्रणाली का सम्वन्ध सामन्ती परम्परा से है। यह मजदूरों, किसानों तथा कमेरों को पददलित करने का उपकरण वन गयी है। वास्तव में इसके द्वारा जनता को साक्षर वनाना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नितान्त कठिन है और आधुनिक युग के लिए यह उपयक्त भी नहीं है। अतएव इस चित्रात्मक लेखन-प्रणाली को अब समाप्त कर देना चाहिए और इसके स्थान पर ध्वन्यात्मक लेखन-प्रणाली को प्रचलित करना चाहिए।"

सन् १९५५ की अप्रैल में श्री वू० यू० चंग ने अपनी ऊपर की बातों को पुनः दोहराया।

लैटिन वर्णवाली नूतन लेखन-प्रणाली का आरम्भ सन् १९३२ में रूस में हुआ था। इसका मुख्य उद्देश्य रूस में स्थित चीनी लोगों को साक्षर बनाना था और उसका शुभ परिणाम यह हुआ कि सन् १९३८ तक अधिकांश चीनी साक्षर बन गये। इस नूतन लेखन-प्रणाली के साथ-साथ चीनी लोगों को चीनी प्रतीक भी दिखाये जाते थे। सन् १९३४ ई० में साक्षरता के इस आन्दोलन का समाचार चीन में पहुँचा और इस प्रणाली के अध्ययन के लिए वहाँ अनेक समितियों का निर्माण हो गया।

चूँकि इस नूतन प्रणाली का आविष्कर्त्ता मार्क्सवादी था अतएव इसके लिए जिन समितियों का चीन में निर्माण हुआ उन्हें चीनी सरकार शंका की दृष्टि से देखने लगी। फिर भी चीनी-जापानी युद्ध के फलस्वरूप शांघाई में शरणार्थियों के लिए जो अन्तर्राष्ट्रीय शिविर बने, उसके लगभग पाँच हजार चीनियों ने इस प्रणाली से लिखना-पढ़ना सीखा। सन् १९३८ में, अन्ततोगत्वा, उस समय की चीनी सरकार ने इस नवीन लेखन-प्रणाली को स्वीकार कर लिया, किन्तु आगे चलकर न तो चांग काई शेक की सरकार ने और न तो चीन के साम्यवादी-दल ने ही इस प्रणाली को प्रचलित करने में सहायता की।

साम्यवादी लालचीन की एक भाषा?

ध्वन्यात्मक वर्णों के द्वारा चीनी भाषा को लिखने के लिए जो भी प्रयत्न हुए उनकी असफलता का मुख्य कारण यह था कि सम्पूर्ण चीन की भाषा में एकरूपता न थी। जब-तक चीन की समस्त जनता प्रायः एक प्रकार से भाषा का उच्चारण न करे तब तक उसे ध्वन्यात्मक रूप में लिखना असंभव था। भाषा को एक रूप देने में वास्तव में चीन की प्रतीकोंवाली प्राचीन लेखन-प्रणाली की यह विशेषता थी कि समस्त चीन में एक ही प्रतीक का प्रयोग होता था। यह दूसरी बात है कि विभिन्न बोलियों में इन प्रतीकों की उच्चारण-संबंधी एकता का अभाव था। यद्यपि लोग बोलते समय एक दूसरे की बोली को नहीं समझ पाते थे, किन्तु जब वे प्रतीकों द्वारा उसे लिखते थे तो वे तत्काल समझ लेते थे। अतएव बोलियों की विभिन्नता की उन्हें चिन्ता न थी। किन्तु राष्ट्रीय सरकार एक कदम और आगे बढ़ी। वह लेखन की एकता के साथ-साथ उच्चारण की एकता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के लिए भी प्रयत्न करने लगी। उसने चीन के सभी स्कूलों में मण्डारिन वोली को सिखाना प्रारम्भ किया।

जनसंख्या की दृष्टि से मण्डारिन को राज्य अथवा राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन करना उचित ही था क्योंकि इसके वोलनेवालों की संख्या सव से अधिक थी। किन्तु दक्षिणी चीन के लोग सव से अधिक साक्षर थे, अतएव वहाँ मण्डारिन का प्रवेश न हो सका। एक वात और है। यदि कोई विद्वान् मण्डारिन द्वारा अपना विचार व्यक्त न कर पाता था तो यह वुरा भी न माना जाता था। सच वात तो यह है कि उस समय के अनेक सरकारी कर्मचारी दक्षिणी चीन के थे। इस प्रकार स्कूलों में मण्डारिन द्वारा शिक्षा प्रचलित होने पर भी लगभग वीस साल वाद तक, जव तक चीन-जापान का युद्ध न छिड़ा, तव तक, दक्षिण-पूर्व के चीनी लोगों ने मण्डारिन के सीखने में विशेष अभिरुचि न दिखलाई। जव चीन में साम्यवादी सरकार की स्थापना हुई तो उसने भी रूस की नीति का अनुकरण करते हुए विभिन्न वोलियों को सुरक्षित रखना ही उचित समझा।

फिर भी चीन में जनराज्य-स्थापना के प्रथम मास में ही, पेकिंग में चीन के सभी प्रदेशों के प्रतिनिधि भाषा-सुधार-अधिवेशन में भाग लेने के लिए आमंत्रित किये गये। इसमें विदेश में रहनेवाले चीनी लोगों ने भी भाग लिया और चीन की अल्पसंख्यक जातियों के प्रतिनिधि भी इसमें सम्मिलित हुए। अधिवेशन का मुख्य उद्देश्य समस्त चीन के लिए एक वोली को चुनना, उसके प्रतीकों को सरल वनाना तथा चीनी भाषा लिखने के लिए ध्वन्यात्मक प्रणाली का आविर्भाव करना था। यह कार्यभार समितियों तथा उपसमितियों को सौंपा गया। इनमें भी लिखित भाषा का सुधार करनेवाली समिति को सव से अधिक अधिकार दिया गया। सन् १९५४ ई० में केन्द्रीय सरकार के अन्तर्गत इस समिति का निर्माण हुआ था और आज शिक्षा-मंत्रालय के तत्त्वावधान में भाषा-सम्वन्धी सुधार का यह समस्त कार्यभार वहन कर रही है।

भाषा की एकता की ओर

एक भाषा के उद्देश्य को इष्ट मानकर सरकार ने सभी स्कूलों, सैनिक-शिविरों तथा सरकारी कागज-पत्रों में मण्डारिन का प्रचार आरम्भ कर दिया। आकाशवाणी में भी यही भाषा प्रचलित थी। इसके उच्चारण का आधार पेकिंग की वोली को वनाया गया और इसके व्याकरण का ढाँचा सामान्य वोलचाल की लिखित भाषा को माना गया। वीसवीं शताब्दी के पूर्व इस भाषा का प्रयोग कथा-साहित्य के सर्जन के लिए किया गया था। यह 'पाई-हुआ' के नाम से प्रख्यात थी। कथा-साहित्य के अतिरिक्त चीन में अन्य साहित्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

की रचना के लिए परिनिष्ठित साहित्यिक भाषा का प्रयोग किया जाता था।

सन् १९१७ ई० में साहित्य की भाषा में जो क्रान्ति हुई थी उसी के परिणामस्वरूप 'पाई-हुआ' अस्तित्व में आयी थी। चीन में इसे प्रचलित करने में कतिपय अमेरिका से लौटे हुए चीनी छात्रों का हाथ था। इनमें से मुख्य हुशी था, जो द्वितीय विश्व-युद्ध के अवसर पर संयुक्त राज्य अमेरिका में राजदूत था। कतिपय अँगरेजी लेखकों से प्रभावित होकर उसने साधारण बोलचाल की मण्डारिन में साहित्य लिखना प्रारम्भ किया था। यद्यपि इस युग के नये लेखक, बोलचाल में, विभिन्न भाषाओं का प्रयोग करते थे जिसमें दक्षिणी चीन की भाषा प्रमुख थी तथापि साहित्य में ये जिस भाषा का प्रयोग करते थे उसकी शैली प्रायः एक थी। यह यत्किंचित् साहित्यिक तथा कुछ-कुछ मण्डारिन थी। इसका आदर्श मिंग-चिंग वंशों के युग के उपन्यासों की माँग भाषा थी। उस युग में चीन में उपन्यासों की गणना साहित्य के अन्तर्गत नहीं होती थी।

प्रायः चालीस वर्षों तक इस नूतन भाषा में साहित्य-सर्जन का काम चलता रहा। अनेक नये लेखकों के प्रयोग से यह भाषा मँज गयी और इसमें काफी साहित्य-रचना भी हुई। इसके बाद यह साम्यवादियों के हाथ आयी। इस भाषा को स्वीकार करने में साम्यवादी दल की बहुत बड़ी चाल थी। वस्तुतः 'पाई-हुआ' भाषा का उस समय आविर्भाव हुआ था जब चीन पश्चिमी देशों के अनुकरण में व्यस्त था और जब चीनी भाषा में पश्चिमी साहित्य एवं विचारधारा अनूदित होकर स्वच्छन्दता से आ रही थी। अधिकांश चीनी इसी भाषा में अपने विचार व्यक्त करने लगे थे अतएव इसे स्वीकार करने में किसी प्रकार के विरोध की आशंका न थी। इस भाषा के प्रचार और प्रसार के लिए जो योजना बनी है उसके अनुसार सन् १९७० तक उच्च ज्ञान के लिए कार्य करनेवाले प्राध्यापकों को छोड़कर सभी अन्य प्राध्यापक तथा छात्र इस भाषा को सीख लेंगे तथा व्यवहार में लाने लगेंगे। इसी प्रकार प्रायः सभी सरकारी कर्मचारी तथा अन्य लोग भी तबतक इस भाषा में निपुण हो जायेंगे।

इस भाषा के प्रचार-प्रसार के लिए ग्रामोफोन के रेकार्ड तैयार किये गये हैं। चलचित्रों द्वारा भी इसका प्रचार किया जा रहा है। ग्रीष्मकालीन स्कूलों में भी वयस्क तथा मजदूरों एवं किसानों को यही भाषा पढ़ाई जा रही है। इसे पढ़ानेवाले अध्यापकों के प्रशिक्षण के लिए भी अनेक केन्द्र खोले गये हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रतीकों का सरलीकरण

सन् १९५० के ग्रीष्म में लिखित भाषा के संक्षिप्त प्रतीकों के सम्बन्ध में विचार करने के लिए एक अनुसंधान-समिति का निर्माण किया गया गया। सब से पहले समाचार-पत्रों में संक्षिप्त प्रतीकों का रूप प्रकाशित कर दिया गया और लोगों से उनके सम्बन्ध में सम्मतियाँ माँगी गयीं। लगभग दो लाख व्यक्तियों ने इनके विषय में अपने विचार प्रकट किये। सन् १९५५ ई० में भाषा-सुधार समिति का पुनः अधिवेशन हुआ जिसके फलस्वरूप सरकार द्वारा स्वीकृत संक्षिप्त प्रतीक प्रकाशित कर दिये गये। निम्नलिखित तीन सिद्धान्तों के आधार पर ही सरकार ने इन प्रतीकों को स्वीकार किया—

(१) व्यक्तियों द्वारा संक्षिप्त किये गये प्रतीकों को सरकार ने वैधानिक रूप से स्वीकार किया; यथा—

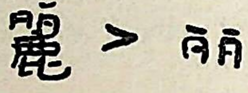

(२) एक ही प्रतीक के विभिन्न रूपों का परित्याग करके केवल एक रूप को ही स्वीकार किया गया; यथा—

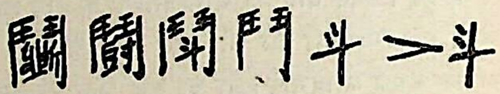

(३) व्यक्तियों द्वारा संक्षिप्त किये गये प्रतीकों के कतिपय लघुरूपों के टुकड़ों को अन्य रूपों में संयुक्त करके, भाव-प्रकाशन के लिए, नये प्रतीक बनाये गये; यथा—

यह सब इस आशा से किया गया कि सन् १९५९ तक तीन हजार संक्षिप्त प्रतीक तैयार हो जायें, जिसके द्वारा लोग आसानी से समाचार-पत्रों को पढ़ने लगें। यहाँ यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि इसके पहले समाचार-पत्रों के पढ़ने के लिए छह हजार प्रतीकों की जानकारी आवश्यक थी और वे भी संक्षिप्त प्रतीक न थे।

वर्ण अथवा अक्षर का प्रयोग

सन् १९५५ ई० की फरवरी में उच्चारण के अनुसार चीनी भाषा लिखे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के लिए एक उपसमिति का संगठन किया गया। इस समिति ने तीन सौ वर्षों से प्रचलित समस्त ध्वन्यात्मक लिपियों तथा इस प्रकार की नवनिर्मित ६५५ लिपियों—कुल वारह सौ लिपियों का परीक्षण किया। अक्तूवर तक इन्होंने प्रस्तावित ध्वन्यात्मक लिपियों का छह ड्राफ्ट तैयार किया। इनमें से चार चीनी प्रतीकों के आधार पर, एक सिरिलिक C एक प्रकार की लिपि जिसका प्रयोग पूर्वी चर्च के स्लाव लोग करते हैं) के आधार पर तथा एक लैटिन लिपि के आधार पर तैयार किया गया। परीक्षण के बाद अन्ततोगत्वा लैटिन लिपि को ही समिति ने स्वीकार किया। इसके बाद सन् १९५६ ई० में राज्य-सभा ने इसे जनता के समक्ष रखा। इस लिपि में अँगरेजी के वी (v) वर्ण को छोड़कर शेष सभी वर्ण थे। इनके साथ ही पाँच सिरिलिक वर्ण भी स्वीकार किये गये किन्तु यह लिपि जनता में चल न सकी और सन् १९५८ की ६ फरवरी को जनता की राष्ट्रीय काँग्रेस ने केवल एकमात्र लैटिन वर्णों को ही स्वीकार किया।

लैटिन लेखन-प्रणाली की स्वीकृति से चीनी भाषा के लिखावट में कितनी भयानक क्रान्ति हो गयी इसे निम्नलिखित उदाहरण द्वारा प्रकट किया जा सकता है। लैटिन लिपि में इन सभी प्रतीकों को केवल यस्-आई (SI) द्वारा लिखा जा सकता है। ये प्रतीक इस प्रकार हैं—

रेशम, मरना, चार,

सोचना, मठ

लिखावट की इस प्रणाली का शिक्षित तथा अशिक्षित दोनों प्रकार के लोगों ने विरोध किया। इनमें शिक्षित लोगों के विरोधी तर्कों में काफी बल था। उनका यह कथन बिलकुल सत्य है कि चीनी भाषा को लैटिन लिपि में लिखकर उसके साहित्य-सौन्दर्य की रक्षा नहीं की जा सकती। सच तो यह है कि चीनी भाषा में अनेक ऐसे भाव हैं जिन्हें किसी भी ध्वन्यात्मक लिपि के द्वारा स्पष्ट नहीं किया जा सकता। उदाहरणस्वरूप चीन में शान्ति का प्रतीक 'छत के नीचे खड़े स्त्री' है। भद्रता के भाव का प्रतीक स्त्री तथा बच्चा है। इन प्रतीकों के द्वारा चीनी लोगों के हृदय में जो भाव उदय होते हैं उन्हें ध्वन्यात्मक लैटिन लिपि द्वारा भला कैसे द्योतित किया जा सकता है?

एक बात और है। निरक्षर चीनी जनता का विद्या के प्रति इतना आदर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है कि किसी लिखे हुए कागज पर पैर रखना वेब हुत बुरा मानते हैं। चीन में सर्वत्र छोटे-छोटे बक्सों पर लिखा रहता है—सि-ज, (HSI IZU) अर्थात् लिखे हुए प्रतीकों का समादर करो। चीनी लोगों के लिए लिखावट के सभी प्रतीक पवित्र हैं। ये लोग इन प्रतीकों के लिखने के लिए ही पढ़ते हैं अन्यथा वे विलकुल नहीं पढ़ते। अन्य देशों के कृषकों की भाँति चीनी किसान भी घोर अपरिवर्तनवादी हैं। इसका फल भी प्रत्यक्ष है। यद्यपि चीन की आधुनिक साम्यवादी सरकार ने सन् १९५५ ई० में ही इस बात की घोषणा की थी कि चीन में व्यवहृत प्रतीकों के स्थान पर क्रमशः लैटिन अक्षरों का प्रयोग किया जायगा किन्तु जनता के विरोध के कारण सरकार को अपनी इस नीति में परिवर्तन करना पड़ा है। इधर बार-बार जनता को इस बात का आश्वासन दिया जा रहा है कि चीनी प्रतीक सदैव रहेंगे और इनका कभी भी उच्छेद नहीं किया जायगा। इसके अतिरिक्त इन प्रतीकों को केवल चीनी 'ब्रश' से ही लिखा जायगा, विदेशी फाउण्टेनपेन से नहीं।

इसके साथ-ही-साथ आज चीन में लैटिन अक्षरों को प्रचलित करने का अत्यधिक प्रयत्न किया जा रहा है। चाऊ एन लाई ने लैटिन अक्षरों के पक्ष में भाषण करते हुए एक राजनैतिक सभा में कहा था, "वर्त्तमान युग में साठ से अधिक राष्ट्र यत्किंचित् परिवर्द्धन के साथ लैटिन अक्षरों का प्रयोग कर रहे हैं अतएव इन्हें प्रचलित करना देशद्रोह नहीं है।"

आज चीन के प्रत्येक गाँव तथा झोंपड़ों में ध्वन्यात्मक लैटिन अक्षरों के महत्त्व के प्रचार के लिए प्रशिक्षित कार्यकर्त्ता भेजे जा रहे हैं। वे जनता के समक्ष निम्नलिखित तर्क उपस्थित करते हैं—लैटिन अक्षरों का प्रयोग चीन में व्यवहृत प्रतीकों के विनाश के लिए नहीं है अपितु इनके ध्वन्यात्मक उच्चारण के लिए ही इन अक्षरों का प्रयोग किया जा रहा है। इन अक्षरों के प्रयोग से एक ओर लोगों को जनसाधारण की भाषा सीखने में सहायता मिलेगी तो दूसरी ओर उनकी अपनी-अपनी बोलियाँ भी सुरक्षित रहेंगी। लैटिन अक्षरों को स्वीकार करने का एक परिणाम यह भी होगा कि ध्वन्यात्मक लेखन-प्रणाली से परिचित परदेशी भी चीनी भाषा को सरलता से सीख लेंगे। इनके द्वारा इंजीनियरिंग गणित तथा अन्य टेक्निकल विषयों के प्रतीकों को समझने में आसानी होगी। इसके अतिरिक्त तार भेजने, अनुक्रमणिका तैयार करने तथा चीनी कोश के निर्माण में भी लैटिन अक्षर वरदान सिद्ध होंगे।

इस संदर्भ में लोगों को यह भी समझाया जाता है कि इन अक्षरों के प्रचार से साढ़े तीन करोड़ गैर चीनी जनता भी शीघ्रता से चीनी भाषा सीख लेगी और उनके साथ व्यवहार करने में सुविधा होगी। अन्त में लोगों के सामने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यह तर्क रखा जाता है कि विश्व की साठ करोड़ जनता आज लैटिन का व्यवहार कर रही है और एक प्रकार से यह लिपि अन्तर्राष्ट्रीय-संस्कृति को वहन करने-वाली बन गयी है।

आज चीन की प्रारम्भिक कक्षाओं तथा वयस्कों एवं जनसाधारण के पढ़ने योग्य पुस्तकें लैटिन अक्षरों में ही प्रकाशित होने लगी हैं। किन्तु उनके सामने ही चीनी प्रतीक भी दिये रहते हैं। चीनी सरकार तो सभी महत्त्वपूर्ण कागज-पत्रों का प्रकाशन ध्वन्यात्मक लिपि में करने लगी है।

चीन में भाषा-सुधार की यह योजना असाधारण है, किन्तु चीनी साम्यवादियों के लिए कोई भी वस्तु असाधारण नहीं है। सच तो यह है कि माओत्सेतुंग भाषा की शक्ति से पूर्णतया परिचित हैं। सन् १९४२ में ही यूनान प्रदेश में, साम्यवादी कार्यकर्त्ताओं को चेतावनी देते हुए उन्होंने कहा था—"यह बात कदापि न भूलनी चाहिए कि भाषा एक महान् अस्त्र है और चीन के साम्यवादियों को किसानों, मजदूरों, सैनिकों एवं साधारण जनता के लिए साहित्य-सर्जन करना है। उन्हें ऐसे साहित्य की रचना करनी चाहिए जिससे सर्वहारा संस्कृति की उन्नति हो और जो सामन्तवादी परम्परा की विध्वंसक हो।" इसका परिणाम यह है कि आज चीन के साम्यवादी दल के कार्यकर्ता अपने विचार के लिए प्राचीन मूल्यों की नवीन व्याख्या कर रहे हैं और जनसाधारण को आकर्षित करने के लिए वे नवीन शब्दावली का भी प्रयोग कर रहे हैं।

प्रत्येक व्यक्ति को संघर्ष करने दो

इसमें सन्देह नहीं कि आज चीन में शिक्षित लोगों की संख्या में वृद्धि हुई है और आज के चीनी अतीत के लोगों की तरह अब एकान्तसेवी नहीं रह गये हैं अपितु शिक्षा के प्रसार के कारण अब उन तक पहुँचना तथा उन्हें प्रभावित करना आसान हो गया है, किन्तु यहाँ यह बात भी उल्लेखनीय है कि आज की चीनी जनता पर साम्यवादी दल का अत्यधिक प्रभुत्व है और अतीत तथा वर्तमान के उसी साहित्य को जनता पढ़ सकती है जिसे साम्यवादी लोग प्रकाशित करते हैं।

सन् १९५६ ई० में माओ ने 'शतपुष्प' वाले प्राचीन चीनी सिद्धान्त को पुनर्जीवित करने का प्रयत्न किया जिसका तात्पर्य यह है कि देश में प्रचलित सैकड़ों विचारधाराओं को संघर्ष करने दो तथा जिस प्रकार प्रत्येक ऋतु में अनेक पुष्प विकसित होते हैं, उसी प्रकार लोग स्वतंत्रतापूर्वक अपने विचारों को प्रकट करें। माओ के इस भाषण ने लोगों को स्वतंत्र वायुमण्डल में श्वास लेने का सुअवसर दिया। लोगों ने इस संदर्भ में चीनी सरकार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के भाषा-सुधार नीति की भी आलोचना की। स्वतंत्रता का यह वातावरण बहुत थोड़े दिनों तक रहा और आलोचकों का नाम विरोधियों की सूची में लिखा जाने लगा। फिर भी इसका एक परिणाम यह हुआ कि सरकार ने प्राचीन चीनी प्रतीकों के स्थान पर लैटिन अक्षरों के प्रयोग का जो कदम उठाया था उसे पीछे कर लिया। अब तो भाषा-सुधार पर अधिक बल न देकर चाऊ एन लाई ने भी यह कहना प्रारम्भ किया है कि विश्व की सभी भाषाओं में परिवर्तन ध्रुव है और चीनी भाषा भी एक दिन परिवर्तित होकर साम्यवादी जनता के योग्य बन जायगी। उन्होंने यह भी कहा कि चाहे लैटिन अक्षर प्राचीन प्रतीकों को स्थानान्तरित करें अथवा न करें, यह आज के चीन की समस्या नहीं है; आज तो प्रत्येक व्यक्ति के लिए संघर्ष आवश्यक है।

●●

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

टर्की भाषा में सुधार

टर्की की भाषा में जो सुधार हुआ है वह एक सांस्कृतिक समस्या है और भाषा-शास्त्रियों के सम्मुख असाधारण प्रश्न उपस्थित करता है। सच तो यह है कि विश्व के इतिहास में भाषा के सम्बन्ध में, आज तक राज्य ने कभी इस प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया है। यही कारण है कि भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन करनेवाले आज भी इसकी आलोचना-प्रत्यालोचना में व्यस्त हैं। भाषा स्वतः विकासोन्मुख वस्तु है और उसकी विकास की धारा में हस्तक्षेप करना, वास्तव में, जनता के लिए अरुचिकर होता है। प्राहा के प्रसिद्ध भाषाशास्त्री फर्निडनेण्ड डी० सस्योर ने एक स्थान पर लिखा है : "प्रायः प्रत्येक भाषा-भाषी अपनी परम्परागत भाषा से सन्तुष्ट रहता है। यह परम्परा भाषा को इस प्रकार से बाँधे रहती है कि कोई भी व्यक्ति भाषा के प्रयोग में स्वच्छन्दता नहीं प्रदर्शित कर सकता।" टर्की की भाषा के सम्बन्ध में डी० सस्योर का यह कथन सर्वथा असिद्ध हो गया है, क्योंकि अपनी परम्परागत भाषा से असन्तुष्ट होकर राज्य ने उसमें स्वच्छन्दतापूर्वक परिवर्तन किया है। कुछ लोग तो आज टर्की का उदाहरण देते हुए यह स्पष्टरूप से कहने लगे हैं कि सरकार की अधिकार-सीमा का कहीं अन्त नहीं है और वह जो चाहे कर सकती है।

टर्की के भाषा-सम्बन्धी सुधार तथ्या उसके सामाजिक एवं सांस्कृतिक सुधारों में अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। इस लेख में, तथ्य रूप में, भाषा-सम्बन्धी सुधारों का तो उल्लेख किया जाएगा, किन्तु उनकी वैज्ञानिकता के पक्ष-विपक्ष में कोई विचार नहीं उपथित किया जाएगा क्योंकि धर्म की भाँति भाषा का सम्बन्ध भी हृदय की भावना से ही अधिक है। जो हो, टर्की भाषा-सम्बन्धी सुधार का प्रत्यक्ष परिणाम यह हुआ है कि उसके शब्द-समूह में अत्यधिक परिवर्तन हो गया है।

टर्की भाषा में सुधार का प्रथम प्रयत्न

अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से, भाषा-शास्त्रियों ने, संसार की भाषाओं को कुलों एवं उपकुलों में बाँटा है। इस्लाम धर्मावलम्वी देशों में अरबी, फारसी, ताजिकी, पश्तो, बंगला आदि अनेक भाषाएँ प्रचलित हैं। इनमें से अरबी सामी कुल की, फारसी, ताजिकी, बंगला, भारोपीय परिवार के भारत-ईरानी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कुल की भाषाएँ हैं। तुर्की का इन परिवारों से सम्बन्ध नहीं है और उसका पृथक् परिवार है। किन्तु तेरहवीं शताब्दी में जब 'ओटो-मन तुर्की भाषा' साहित्यिक रूप में प्रतिष्ठित हुई तो इसमें इस्लाम-धर्म की संस्कृतिवाहिनी भाषाएँ, अरबी-फारसी के अनेक शब्द आ गये। यदि अरबी-फारसी के ये शब्द केवल धर्म एवं संस्कृति के क्षेत्र तक ही सीमित रहते तो समें कोई हर्ज न था। किन्तु धीरे-धीरे तुर्की भाषा में इनकी संख्या इतनी अधिक हो गयी कि इन्होंने दैनिक-जीवन के तुर्की शब्दों को निकालकर उनका स्थान ले लिया। यही नहीं, अरबी-फारसी के व्याकरण तथा वाक्य-सम्बन्धी अनेक नियम भी तुर्की भाषा में आ गये। पन्द्रहवीं शती के अन्तिम चरण में इसके विरुद्ध प्रतिक्रिया हुई किन्तु इससे विदेशी अरबी-फारसी शब्दों की भीड़ न रुक सकी। सोलहवीं शती में, जब टर्की अपनी शक्ति के उच्च शिखर पर विराजमान था तथा इसकी राजधानी इस्तम्बोल थी, तो साहित्यिक भाषा में तुर्की शब्दों की संख्या न्यूनतम थी। जनसाधारण के लिए यह भाषा सर्वथा अबोधगम्य थी और इस युग में अरबी-फारसी के ज्ञान के बिना साहित्य-रचना का कार्य असम्भव था। इस युग में, टर्की में, अरबी-फारसी की इतनी अधिक प्रतिष्ठा थी कि उनके सामने विशद्ध तुर्की गँवारू भाषा मानी जाती थी और शिक्षित लोग उसे घृणा की दृष्टि से देखते थे।

१९वीं शताब्दी में, टर्की पर पश्चिमी सभ्यता एवं ज्ञान-विज्ञान का प्रभाव पड़ना प्रारम्भ हुआ। इसके फलस्वरूप चतुर्दिक परिवर्तन अवश्यम्भावी था। टर्की के बड़े नगरों में अब पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित मध्यवित्त के लोगों की शक्ति बढ़ने लगी और उनमें राष्ट्रीय भावना का उदय हुआ। इसके कारण नवीन ज्ञान-विज्ञान के ग्रहण के लिए, लोगों को, तुर्की भाषा में, परिवर्तन की आवश्यकता का अनुभव हुआ। सन १८६८ ईस्वी में जिया पाशा ने साहित्यिक तुर्की की कृत्रिमता की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया और जनसाधारण की भाषा में साहित्य-रचना की अपील की। इसी प्रकार शासन-सम्बन्धी शब्दों को सफल बनाने पर भी उन्होंने जोर दिया। जिया पाशा के मित्र एवं सहायक तथा उस युग के श्रेष्ठ साहित्यिक श्री नेमिक केमाल (१८४०—१८८८) ने भी तुर्की में विदेशी शब्दों के प्रयोग की प्रवृत्ति की अत्यधिक निन्दा करते हुए एक स्थान पर लिखा—भला, इसमें कौन गौरव है कि आज तुर्की भाषा के केवल दो पृष्ठों के लेख को समझने के लिए सैकड़ों बार अरबी-फारसी का कोश उलटना पड़ता है।

इसका स्पष्ट प्रभाव तुर्क जनता एवं साहित्य पर पड़ा और इस युग में भाषा के जो कोश बने उनमें से अरबी-फारसी के कठिन शब्दों को निकाल दिया गया। इसी प्रकार इनमें अरबी-फारसी शब्दों का मूल अर्थ न देकर, उस अर्थ को महत्त्व

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दिया गया जो परिवर्तन रूप में तुर्की में प्रचलित हो गये थे। इन शब्दों की अखरौटी (Spelling) में भी तुर्की उच्चारण का ध्यान रखा गया। इसका एक परिणाम यह हुआ कि अब साहित्यिक भाषा अपनी परम्परागत लीक छोड़कर नवीन पथ पर चलने के लिए वाध्य हुई। प्रयोग के क्षेत्र में भाषा का मानदण्ड अब विदेशी अरबी-फारसी न थी किन्तु इसका स्थान अब स्वदेशी तुर्की ने ले लिया। अब धीरे-धीरे जनता की बोलचाल की भाषा स्पृहणीय एवं आदरणीय बनने लगी और उसके स्वागत के लिए तुर्की साहित्य ने अपना द्वार उन्मुक्त कर दिया।

ओटोमन तुर्की-भाषा के शब्द-समूह में, तीन सर्वथा भिन्न भाषाओं के शब्द सम्मिलित थे। ये तीन भाषाएँ थीं—अरबी, फारसी एवं तुर्की। परम्परा से अरबी-फारसी शब्द तुर्की शब्दों की अपेक्षा अधिक सम्मान की दृष्टि से देखे जाते थे किन्तु अब लोगों के मन में यह भावना आयी कि तुर्की शब्दों को प्रमुख एवं सर्वोच्च स्थान मिलना चाहिए। सन् १८७४ ई० में सुलेमान पाशा ने 'सर्फे-तुर्की' नामक तुर्की-भाषा का व्याकरण लिखा जिसमें उन्होंने यह सुझाव उपस्थित किया कि भाषा का नाम 'ओटोमन तुर्की' के बजाय केवल तुर्की होना चाहिए। तुर्की भाषा के सम्बन्ध में अपने हृदय के उद्‌गार प्रकट करते हुए श्री पाशा ने इसी पुस्तक में यह भी लिखा—"वस्तुतः तुर्की अपढ़ किसानों की भाषा नहीं है अपितु वह संस्कृतिवाहिनी भाषा है और वह ओटोमन साम्राज्य से पुरानी है।"

तुर्की भाषा-सम्बन्धी ऊपर की राष्ट्रीय विचारधारा का प्रथम प्रवर्त्तक शेम्सेद्दीन सामी था। वह कोशकार था और अल्बैनिया का निवासी था। उसने सन् १८८१ के अपने एक महत्वपूर्ण लेख में लिखा था—"ओटोमन तुर्की, पूर्वी तुर्की से कोई भिन्न भाषा नहीं है। पूर्वी तुर्की, उच्चारण में, यद्यपि कठोर भाषा है तथापि उसमें तुर्की भाषा के मूल तत्त्व प्रभूत मात्रा में सुरक्षित हैं और इस प्रकार वह अधिक पूर्ण भाषा है। ओटोमन तुर्की में सुधार एवं उसे समृद्ध बनाने के लिए इस बात की आवश्यकता है कि इसमें अरबी के स्थान पर पूर्वी तुर्की के शब्द लिये जायँ। पूर्वी तुर्की के अनेक शब्द ओटोमन साहित्य में सुरक्षित हैं और ये आज भी अनातोलिया की बोली में व्यवहृत होते हैं। चूँकि अरबी-फारसी के अनेक शब्द, आज भी ओटोमन तुर्की में, अपने विदेशी रूप में ही हैं अतएव उनके स्थान पर तुर्की के दैनिक जीवन के शब्दों को व्यवहृत करना उचित है।"

शेम्सेद्दीन के ऊपर के विचारों का, टर्की के उच्च वर्ग के लोगों पर बहुत कम प्रभाव पड़ा। कतिपय लेखकों तथा समाचार-पत्रों के सम्पादकों ने सुधार की ओर कदम तो बढ़ाया किन्तु अन्ततोगत्वा भाषा-सुधार-सम्बन्धी यह आन्दोलन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सफल न हो सका। बात यह है कि अभी सुधार के लिए उपयुक्त अवसर न था। इस युग के अधिकांश कवि प्रायः सुधार के विपक्ष में थे। उनके अनुसार बोलचाल की तुर्की भाषा मानव-हृदय के सूक्ष्म भावों को प्रकट करने में असमर्थ थी। इन कवियों ने अरबी-फारसी के अनेक नये अप्रचलित शब्दों का व्यवहार आरम्भ किया तथा फारसी के अनेक नये सामासिक शब्दों का निर्माण किया। इस प्रकार साहित्यिक ओटोमन भाषा एक बार पुनः बोलचाल की भाषा से दूर हटकर अपने पुराने स्थान पर जा पहुँची।

यह अवस्था बहुत दिनों तक न रह सकी। सन् १८९७ में मेहमत एमिन ने बोलचाल की तुर्की में अपनी राष्ट्रीय कविताएँ प्रकाशित कीं जिसमें अरबी-फारसी शब्द अत्यल्प मात्रा में थे। सन् १९०८-९ की क्रान्ति से तुर्की भाषा के सुधार का दूसरा युग आरम्भ होता है। इस समय साम्राज्य के नये शासक जनता में, राजनीतिक जागरण उत्पन्न करने के लिए उत्सुक थे। इस कार्य के लिए समाचार-पत्रों का सहयोग आवश्यक था। वस्तुतः जनसाधारण तथा अल्प शिक्षित सैनिकों से सहायता प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक था कि समाचार-पत्रों की भाषा बोलचाल की भाषा हो। क्रान्ति के फलस्वरूप समाचार-पत्रों की भाषा में बहुत-कुछ सुधार हो गया। इसी युग में, अन्य आदर्शों पर, टर्की राष्ट्रीयता के आदर्श की विजय हुई। इसका परिणाम यह हुआ कि लोग टर्की के इतिहास तथा इस्लाम धर्म के पूर्व की संस्कृति एवं लोक-साहित्य के अध्ययन में विशेष रूप से प्रवृत्त हुए। उधर रूस छोड़कर जो तुर्क इस्तम्बोल में बसने के लिए आये थे उन्होंने भी ज्ञान-विज्ञान की धारा की प्रगति में सहायता दी। किन्तु चूँकि अभी तक लोगों पर धर्म का काफी प्रभाव था और उनका अगुआ खलीफा था, अतएव तुर्क लोग इस्लामी संस्कृति एवं सभ्यता से अपने को पृथक् न कर सके।

भाषा-सुधार-सम्बन्धी योजना को सर्वप्रथम कार्यरूप में परिणत करनेवाले कतिपय युवक थे जो सलोनिका से प्रकाशित होनेवाले 'गेन्श कालेम्लेर' (युवक लेखक) पत्र के लेखक थे। इसमें मुख्य, लघु-कथाकार—ओमेर सेयफेद्दीन तथा समाजशास्त्री ज़िया गोकल्प थे। कुछ तर्क-वितर्क के पश्चात् इन्होंने तुर्की भाषा से, अरबी-फारसी-व्याकरण के नियमों एवं इनके अनावश्यक शब्दों को निकालने का प्रस्ताव किया। दूसरी ओर अरबी-फारसी के जो शब्द बोलचाल की तुर्की में घुल-मिल गये थे उन्हें भाषा में सुरक्षित रखने का भी इन्होंने सुझाव दिया। प्राचीन तुर्की के अप्रचलित शब्दों के प्रचलन एवं परिवार की अन्य भाषाओं से शब्द उधार लेने का इन्होंने विरोध किया। पारिभाषिक शब्दों के सम्बन्ध में इनका यह स्पष्ट मत था कि जो शब्द तुर्की में न हों, उन्हें

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अरबी धातुओं से बना लेना चाहिए (किन्तु सामासिक रूप में नहीं) और आवश्यकतानुसार यूरोपीय भाषाओं से भी ये शब्द ले लेने चाहिए।

इन सुधारवादियों का मुख्य उद्देश्य एक नवीन, किन्तु सजीव भाषा का निर्माण करना था। इनकी इस भाषा का आधार, इस्तम्बोल की भाषा—विशेष रूप से स्त्रियों की भाषा थी जिसमें विदेशी-तत्त्व न्यूनतम मात्रा में विद्यमान थे। व्यावहारिकरूप में इन युवक लेखकों ने जनसाधारण की भाषा का प्रयोग नहीं किया। इनकी भाषा वस्तुतः शिक्षित लोगों की दैनिक-जीवन की भाषा थी जिस पर प्राचीन साहित्यिक भाषा का पर्याप्त प्रभाव था। भाषा के सुधार के सम्बन्ध में इन युवक-लेखकों के विचार न तो मौलिक थे और न नवीन ही। इनके पूर्व के सुधारवादियों ने भी इन सभी बातों की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया था, किन्तु सच बात यह है कि इस समय सुधार के लिए उपयुक्त वातावरण था, टर्की के युवक नेता तथा शासनाधिकारी भी इस सुधार के पक्ष में थे। इस समय लोकसभा (पार्लियामेंट) के लिए सुल्तान के जो भाषण तैयार किये जाते थे उनकी भाषा सरल होती थी। रक्षामंत्रालय ने भी अब अरबी-फारसी के कठिन शब्दों के स्थान पर सरल तुर्की शब्दों का व्यवहार आरम्भ किया। कविता में भी अब अरबी-फारसी के छन्दों के स्थान पर प्राचीन तुर्की छन्दों का प्रयोग होने लगा। वास्तव में पुरातन पंथियों के घोरविरोध करने पर भी सुधार की धारा न रुक सकी और प्रथम विश्वयुद्ध के अन्त में 'ओटोमन तुर्की' के स्थान पर नवीन तुर्की भाषा प्रतिष्ठापित हो गयी।

सन् १९२८ ई० में, तुर्की भाषा ने अतातुर्क कमाल पाशा का ध्यान आकर्षित किया। इसी समय से तुर्की भाषा के सुधार का नया अध्याय आरम्भ हुआ। ओटोमन तुर्की भाषा में अरबी-फारसी के शब्दों का अस्तित्व अतातुर्क के लिए घोर लज्जा की बात थी। उनके अनुसार देश तथा स्वतंत्रता की रक्षा में तत्पर तुर्क राष्ट्र के लिए यह आवश्यक था कि वह जनता की भाषा, तुर्की को भी विदेशी शब्दों की गुलामी से मुक्त करे। अतातुर्क तथा उनके सहकर्मी पुरातन पंथियों की इस विचारधारा से सहमत न थे कि विदेशी शब्दों के बिना तुर्की भाषा उच्च भावों को प्रकट करने में असमर्थ है। कमालपाशा ने इस बात का अनुभव किया कि टर्की की सांस्कृतिक उन्नति में इस्लाम धर्म बाधक है; अतएव धर्मनिरपेक्ष गणतंत्र राज्य की स्थापना को उन्होंने अपना ध्येय बनाया। साहित्यिक तथा बोलचाल की तुर्की भाषा के बीच जो खाई थी, वह अतातुर्क के लिए असह्य थी। सम्पूर्ण देश को साक्षर बनाने के लिए इस बात की आवश्यकता थी कि देश की भाषा एक हो। यह कार्य असाधारण था और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इसके लिए समय की अपेक्षा थी किन्तु अतातुर्क मन्द गति से सुधार के विरोधी थे। उनके अनुसार नूतन भाषा के निर्माण के लिए न तो तुर्की भाषा के परम्परागत इतिहास पर दृष्टिपात करने की जरूरत थी और न पुराने लोगों की असुविधा पर ही ध्यान देने की आवश्यकता थी, चूंकि देश की उन्नति के लिए उस समय नवीन भाषा की आवश्यकता थी। अतः उसका तत्काल निर्माण भी अत्यावश्यक था। अतातुर्क का यह स्पष्ट मत था कि जिसप्रकार देश के आर्थिक तथा सामाजिक सुधार का उत्तरदायित्व राज्य पर है, उसीप्रकार भाषा के सुधार की जिम्मेदारी भी राज्य पर ही है, कवियों और लेखकों पर नहीं। इसके लिए अतातुर्क ने 'तुर्की भाषा परिषद्' की स्थापना की जो शिक्षा-मंत्रालय तथा अन्य सांस्कृतिक परिषदों के सहयोग से भाषा के सुधार-कार्य में प्रवृत्त हुई।

नवीन लिपि

सन् १९२८ के अप्रैल में टर्की की लोकसभा ने विधान की दूसरी धारा में संशोधन किया। अब तक यह इस रूप में थी—"टर्की राज्य का धर्म इस्लाम तथा इसकी राज्य भाषा तुर्की है।" लोकसभा ने इस धारा से धर्म को बिल्कुल उड़ा दिया। इसके अगले महीने में अरबी अंकों के स्थान पर उसने रोमक अंकों का प्रचलन स्वीकार किया। सन १९२८ के जून में, धार्मिक कृत्यों के लिए तुर्की भाषा के उपयोग का कार्यक्रम प्रकाशित हुआ। अभी तक धार्मिक कार्यों के लिए अरबी का प्रयोग होता था। इसी समय तुर्की भाषा के लिए रोमन-लिपि-निर्मात्री समिति संगठित की गयी और उसकी सिफारिश, पर, नवम्बर में, देश के लिए, लोकसभा द्वारा यह लिपि स्वीकार भी कर ली गयी। समिति का यह सुझाव था कि स्कूलों में, अरबी के स्थान पर, इस नवीन लिपि को प्रचलित करने के लिए पाँच वर्ष आवश्यक हैं; किन्तु अतातुर्क को समिति का यह सुझाव पसन्द न आया और उन्होंने आदेश दिया कि कुछ महीनों के भीतर ही लिपि-परिवर्तन सम्बन्धी यह कार्य सम्पन्न हो जाना चाहिए।

लिपि के इस परिवर्तन का तुर्की भाषा पर गहरा प्रभाव पड़ा। अरबी लिपि में तुर्की के शब्द बेगाने-से लगते थे, इनकी अखरौटी (Spelling) कठिन थी और समय-समय पर यह बदलती भी रहती थी। इसके विपरीत अरबी-फारसी के हजारों शब्द, अरबी-लिपि के कारण, अपनी मूल अखरौटी में ही सुरक्षित थे। लिपि-परिवर्तन के कारण अब स्थिति विपरीत हो गयी। अब तुर्की के शब्द इस नवीन लिपि में, उच्चारण के अनुसार लिखे जाने लगे।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उधर पुरानी अखरौटी के आधार पर जब अरबी-फारसी शब्दों को रोमक-लिपि में लिखा गया तो उनका विदेशी रूप स्पष्टतया दिखाई देने लगा। लिपि-परिवर्तन का एक यह भी प्रभाव पड़ा कि नवीन पीढ़ी के युवकों को अब अरबी-फारसी शब्दों की व्युत्पत्ति, उनके रूपों तथा ढाँचे को समझना कठिन होने लगा; क्योंकि सन् १९२९ के सितम्बर के बाद से, स्कूलों से अरबी-लिपि एकदम बहिष्कृत कर दी गयी। रोमक-लिपि में लिखे जाने के कारण अरबी के **दुआ** (प्रार्थना), **दावेत** (निमंत्रण), **तेदाइ** (एक दूसरे को बुलाना, विचार विनिमय), **इद्दिआ** (अधिकार), तथा **मुद्दइ** (वादी) शब्दों के रूप अब बिलकुल बदल गये और लोगों के लिए यह पहचानना अब कठिन हो गया कि ये सभी शब्द एक ही धातु से प्रसूत हुए हैं।

लिपि-सुधार-समिति ने अरबी की 'क', 'ख', 'ग', जैसी ध्वनियों के लिए कतिपय नवीन प्रतीकों की व्यवस्था की थी, किन्तु केवल प्राचीन ग्रंथों के सम्पादन के अतिरिक्त, कमाल पाशा ने, इन प्रतीकों का व्यवहार अस्वीकार कर दिया। इस सम्बन्ध में, स्पष्टरूप से, अपने विचार प्रकट करते हुए अतातुर्क ने कहा था—"विदेशी शब्दों के लिए नवीन प्रतीक (अक्षर) स्वीकार कर मैं तुर्की के वर्णों की संख्या में वृद्धि करना उचित नहीं समझता। ये विदेशी शब्द तुर्की-भाषा में जबरदस्ती घुस आये हैं और ये थोड़े ही दिनों के मेहमान हैं।"

भाषा-परिषद् की स्थापना

सन् १९३१ में कमाल पाशा ने 'तुर्की इतिहास परिषद्' की स्थापना की जिसका मुख्य उद्देश्य यह था कि लोग केवल 'ओटोमन इतिहास' का अध्ययन न कर, तुर्कजाति के इस्लाम के पूर्व के इतिहास का अध्ययन करें। इतिहास-परिषद् का प्रथम अधिवेशन सन् १९३२ की जुलाई में अँकारा में हुआ। इस अधिवेशन की समाप्ति के दिन कमाल पाशा ने इसके कतिपय विशिष्ट सदस्यों से भेंट की और 'तुर्की-भाषा-परिषद्' की स्थापना का सुझाव दिया। इसके परिणामस्वरूप, दूसरे दिन, (१२ जुलाई सन् १९३२ को) 'तुर्की-भाषा-परिषद्' (तुर्क दिल कुरुम) की नियमितरूप से स्थापना हुई। भाषा-परिषद् की नियमावली की दूसरी धारा के अनुसार, इस परिषद् का उद्देश्य तुर्की भाषा को समृद्ध बनाना तथा उसे संसार की श्रेष्ठतम भाषाओं की पंक्ति में बैठाना था। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए एक समिति संगठित की गयी जिसे तुर्की भाषा एवं व्याकरण के अनुसार, पारिभाषिक शब्दों के निर्माण एवं प्रचलित शब्दों के चयन का भार सौंपा गया।

तुर्की-भाषा-परिषद् का प्रथम अधिवेशन, सन् १९३२ में पुराने सुल्तान

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के राजभवन, इस्तम्बोल में हुआ। इसे महत्वपूर्ण राष्ट्रीय पर्व के रूप में विज्ञापित किया गया और इसमें कमाल पाशा स्वयं उपस्थित थे। यहाँ एक केन्द्रीय समिति का संगठन हुआ। समिति ने भाषा-विषयक सुधारों को सफल वनाने के लिए, परिभाषेतर साधारण शब्दों के सम्वन्ध में निम्नलिखित योजना प्रस्तुत की—

१. प्राचीन ग्रंथों एवं जनता में प्रचलित तुर्की शब्दों का चयन एवं प्रकाशन किया जाय।
२. तुर्की भाषा के शब्द-गठन-सम्वन्धी नियमों को निश्चित किया जाय तथा इन नियमों के अनुसार ही तुर्की धातुओं से शब्द वनाये जायँ।
३. विदेशी-शब्दों के लिए जो तुर्की-शब्द उपलब्ध हों उन्हें संकलित किया जाय तथा प्रयोग के लिए उन्हें प्रचारित किया जाय।

ऊपर की योजना के प्रथम मन्तव्य के कार्यान्वित करने में, भाषा-परिषद् को, शासन का पूर्ण सहयोग प्राप्त था। सन् १९३२ के नवम्वर में सरकार ने एक विज्ञप्ति प्रकाशित की, जिसमें विभिन्न शासनाधिकारियों को यह आदेश दिया गया कि जनता में प्रचलित जो शब्द अभी तक कोश में नहीं आ सके हैं, उन्हें तुरन्त संकलित किया जाय। इसके लिए प्रत्येक प्रान्त में, सरकारी भाषा-समिति का संगठन किया गया। इस समिति के सदस्य, प्रान्त के राज्यपाल, भाषा-परिषद् के स्थानीय सदस्य, मेयर, कमांडर-चीफ़, शिक्षा तथा स्वास्थ्य-विभागों के डाइरेक्टर एवं कालेजों तथा माध्यमिक स्कूलों के हेडमास्टर थे। इसी प्रकार से स्थानीय उच्च कर्मचारियों की समिति का संगठन प्रत्येक जिले में किया गया। ये समितियाँ स्कूलों तथा गाँवों में 'शब्द-चयन-केन्द्रों' का संगठन एवं उनके कार्यों का निरीक्षण करती थीं। शब्द-चयन के वाद, शब्दों के अर्थ, उनके प्रयोग एवं उनके विलोम शब्द लिखे जाते थे। शब्दों के प्रयोग एवं जिन स्थानों से ये शब्द लिये जाते थे उनका भी उल्लेख रहता था। इसके साथ ही लोकोक्तियों एवं मुहावरों, लोककथाओं तथा प्रचलित रस्म-रिवाजों के सम्वन्ध में भी, शब्द-चयनकर्त्ता विवरण तैयार करते थे। ये सभी विवरण प्रान्तीय समिति के पास भेज दिये जाते थे और ये समिति इन्हें भाषा-परिषद् के पास भेज देती थी। भाषा-समिति प्रत्येक विवरण का अध्ययन करके अनावश्यक तत्त्वों को पृथक् कर देती थी। सन् १९३३ में इस कार्य के प्रथम चरण की समाप्ति हुई थी और तव तक एक लाख पच्चीस हजार विवरण भाषा-परिषद् के कार्यालय में प्राप्त हो चुके थे।

यद्यपि शब्द-चयन-सम्वन्धी कार्य अति उत्साह के साथ सम्पन्न हुआ किन्तु अधिकांश चयनकर्त्ताओं को भाषाशास्त्र का ज्ञान न था और उन्हें शब्द-चयन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

की शिक्षा भी नहीं दी गयी थी। इसका एक परिणाम यह हुआ कि उनके कार्य में अनेक अशुद्धियाँ रह गयी थीं। चूंकि अनेक शब्द कई विवरणों में उपलब्ध थे, अतएव कुछ सीमा तक तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा इन्हें शुद्ध कर लिया गया। वैज्ञानिक दृष्टि से इस कार्य में सब से बड़ी त्रुटि अखरौटी की थीं। शब्द-चयन-सम्बन्धी सम्पूर्ण कार्य नवीन (रोमक) लिपि में किया गया था; और अनेक स्थलों में, चयनकर्त्ता, नवीन लिपि के वर्णों को, उन ध्वनियों के लिए भी प्रयुक्त करते थे जो वस्तुतः उनके द्वारा द्योतित नहीं हो पाती थीं।

बोलचाल के शब्दों के अतिरिक्त परिषद् ने तुर्की भाषा-भाषी अन्य देशों के प्राचीन साहित्य में उपलब्ध शब्दों का चयन भी प्रारम्भ किया। सब से पहले १५० पुस्तकों तथा हस्त-लिखित प्रतियों से शब्द-चयन-सम्बन्धी यह कार्य किया गया। ये शब्द प्रायः आधुनिक तुर्की से लुप्त हो गये थे, किन्तु प्राचीन शिला-लेखों, विविध तुर्की भाषाओं के कोशों, अरबी-फारसी की प्राचीन पुस्तकों के अनुवादों, कुरान की टीकाओं, प्राचीन दीवानों, सन्त काव्यों एवं ऐतिहासिक ग्रन्थों में उपलब्ध थे।

बोलचाल की तुर्की भाषा की सामग्री को, भाषा-परिषद् ने, सन् १९३९-५१ में, चार खण्डों (तुर्किये दे हाल्क अग्जन्दाज सोज़ डेर्लेमे डेर्गिसि) में प्रकाशित किया है। परिशिष्ट रूप में पाँचवाँ खण्ड प्रकाशित हो रहा है। लोक-साहित्य सम्बन्धी सामग्री का प्रकाशन सन् १९५२ ई० में हुआ था। कतिपय त्रुटियों के होते हुए भी, गाँव की बोलचाल की भाषा के ये सर्वोत्कृष्ट कोश हैं। आज-कल भाषा-परिषद् प्रकाशित सामग्री के संशोधन एवं उसे पूर्ण बनाने में संलग्न है। यह कार्य कई वर्षों तक चलेगा और कई हजार आदमी अत्यन्त तत्परता एवं उत्साह से यह कार्य कर रहे हैं। इस समय यह कार्य इस दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है कि रेडियो, सिनेमा एवं शिक्षा-प्रसार के कारण जनता की भाषा में परिवर्तन हो रहा है और लोग धीरे-धीरे स्थानीय बोलियों का परित्याग कर परिनिष्ठित भाषा को ग्रहण कर रहे हैं।

प्राचीन साहित्य से सामग्री-संकलन का कार्य आज भी पूर्ववत् चल रहा है और उपलब्ध सामग्री से दो महत्वपूर्ण कोश तैयार किये जा रहे हैं। इनमें से एक है 'तुर्की बोलियों का कोश' तथा दूसरा है 'तुर्की भाषा कोश'। भाषा-कोश में, प्रत्येक शब्द का, १३वीं शताब्दी से आज तक के विकास का इतिहास एवं प्रयोग दिया जा रहा है। भाषा-कोश के अभी तक केवल तीन खण्ड प्रकाशित हुए हैं जिनमें १०० प्राचीन ग्रन्थों से संकलित सामग्री हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तुर्की भाषा में शुद्धीकरण की धारा

सन् १९३३-३४ में तुर्की भाषा को विशुद्ध बनाने का कार्यक्रम चला। सन् १९३३ के मार्च से, भाषा-परिषद् ने इस कार्य को आरम्भ किया था। तीन महीने तक, प्रतिदिन, शेम्सेद्दीन सामी के 'कौमुसे तुर्की कोश' से १०-२० अरबी-फारसी के शब्द, समाचार-पत्रों के मुखपृष्ठ पर प्रकाशित कर दिये जाते थे और जनता से माँग की जाती थी वह इन शब्दों के तुर्की प्रतिशब्द, सुझाव रूप में प्रकाशित करें। जनता, प्रेस तथा रेडियो के सहयोग से, इस प्रकार, १४०० तुर्की पर्यायवाची शब्द प्रकाशित किये गये। किन्तु यह कार्य सफल सिद्ध नहीं हुआ। बात यह है कि केवल १४०० विदेशी शब्दों के तुर्की पर्याय से ही यह कार्य पूरा होनेवाला न था क्योंकि तुर्की-भाषा में अरबी-फारसी शब्दों की संख्या बहुत थी। तब विदेशी शब्दों के तुर्की-पर्याय के लिए एक लाख पच्चीस हजार संकलित शब्दों की छान-बीन की गयी। यह कार्य विविध स्कूलों के उत्साही अध्यापकों ने किया और इसे पाँच सप्ताह में ही पूरा कर डाला। काम के सिलसिले में इस बात का अनुभव हुआ कि तुर्की भाषा में जातिवाचक संज्ञा शब्द तो हैं किन्तु भाववाचक शब्दों का अभाव है। इस अभाव की पूर्ति प्राचीन-साहित्य एवं पुराने कोषों के उपलब्ध इसप्रकार के शब्दों से की गयी। सन् १९३४ के ग्रीष्म में विदेशी शब्दों के तुर्की पर्याय-वाची कोश 'तरमादेर्गिसि' (Tarma dergisi) का प्रकाशन हुआ। इसमें सात हजार विदेशी शब्दों के तीस हजार तुर्की-पर्यायवाची शब्द दिये गये।

'तरमादेर्गिसि' के प्रकाशन से तुर्की भाषा के शुद्धीकरण का कार्य अपने सर्वोच्च शिखर पर पहुँच गया। यह ठीक वही समय था जब तुर्की में इस्लाम धर्म के विरुद्ध जोरों से प्रचार-कार्य चल रहा था। सन् १९३३-३५ में इस्तम्बोल विश्वविद्यालय के धर्म फैकल्टी (Theological faculty) को 'इस्लामिक रिसर्च इंस्टिट्यूट' में बदल दिया गया। लोगों को आदेश दिया गया कि वे धार्मिक अवसरों पर पहने जानेवाले वस्त्र अन्य स्थानों तथा अवसरों पर न पहनें। धर्म से सम्बन्ध रखनेवाली उपाधियाँ समाप्त कर दी गयीं। प्रसिद्ध 'आयासोफिया' (हैगिया सोफिया) को म्युजियम में परिणत कर दिया गया तथा अन्य अनेक मस्जिदें बन्द कर दी गयीं। इसी समय शुक्रवार के बजाय रविवार को छुट्टी दी जाने लगी तथा स्कूलों में धार्मिक-शिक्षा बन्द कर दी गयी।

शुद्धीकरण की प्रवृत्ति इस समय कितने जोरों पर थी इसका अनुमान गालाटासरिय माध्यमिक स्कूल एवं इस्तम्बोल विश्वविद्यालय के छात्रों की सन् १९३३ की उस घोषणा से मिलता है जब उन्होंने भाषा-परिषद् के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पास इस आशय का प्रस्ताव भेजा था कि विदेशी शब्दों के साथ किसी प्रकार के समझौते की जरूरत नहीं। उनके अनुसार तुर्की भाषा के भद्दे से भद्दे शब्द भी विदेशी भाषा के सरस शब्दों से श्रेष्ठ हैं। इस युग के लोगों के मनोभाव की तुलना १९वीं शताब्दी के मध्य भाग के ओटोमन के लेखकों से की जा सकती है जिनके लिए अरबी-फारसी का प्रत्येक शब्द तुर्की शब्दों से श्रेष्ठ था। अब अनातोलिया के गाँव में प्रचलित साधारण तुर्की शब्द अथवा सुदूर साइबेरिया की तुर्की बोली में उपलब्ध शब्द की कदर होने लगी। इसके विपरीत दैनिक-जीवन में परम्परा से प्रयुक्त होनेवाले अरबी-फारसी शब्द विदेशी एवं निकृष्ट माने जाने लगे और उन्हें तुर्की भाषा से निकालकर उनके स्थान पर तुर्की शब्दों को बिठाने का प्रयत्न होने लगा।

इस युग के लोगों की मानसिक स्थिति का पता उन खोज-विवरणों में मिलता है जहाँ दैनिक जीवन के 'सज़ा', 'दफ्तर', 'दौलत', 'दीन', (धर्म), 'दोस्त', 'क़बूल' (स्वीकार), 'क़ानून', 'ज़रर' (हानि) जैसे अरबी-फारसी के शब्द संकलित किये गये हैं। ये शब्द तुर्की के प्रायः अशिक्षित लोगों में भी प्रचलित थे। भाषा-परिषद् ने इन शब्दों के लिए भी तुर्की पर्याय दिया है जिससे स्पष्टरूप से प्रतीत होता है कि इन शब्दों के भी बहिष्कार के वह पक्ष में है। 'तरमादेर्गिसि' में भी अनेक ऐसे विदेशी शब्दों के तुर्की-पर्याय दिये गये हैं जो जनसाधारण द्वारा प्रयुक्त होते थे।

उदार-नीति की ओर

'तरमादेर्गिसि' में प्रत्येक विदेशी शब्द के अनेक तुर्की पर्याय दिये गये थे। इसके प्रकाशन के बाद पुनः भाषा-परिषद् ने जनता से इस बात की अपील की कि वह उपयुक्त शब्दों के चुनाव के सम्बन्ध में अपना मन्तव्य प्रकाशित करे। अनेक लोगों ने अपने सुझाव भेजे। इसकी छानबीन की गयी। अगस्त, सन् १९३४ के भाषा-परिषद् के द्वितीय अधिवेशन में, इस सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय करने का मन्तव्य स्वीकृत हुआ। सन् १९३५ (मार्च-मई) में सर्व-सम्मति से स्वीकृत शब्द समाचार-पत्रों में प्रकाशित कर दिये गये तथा इनके सम्बन्ध में जनता को अपने सुझाव भेजने का एक मास का समय दिया गया। अन्ततोगत्वा, सन् १९३५ (सितम्बर-नवम्बर) में, इन प्रयत्नों के फल-स्वरूप दो पॉकेट कोश तैयार किये गये—१. 'आटोमन टर्किश पॉकेट कोश,' जिसमें अरबी-फारसी शब्दों के तुर्की पर्यायवाची शब्द थे, २. 'टर्किश ओटोमन पॉकेट कोश' जिसमें तुर्की शब्दों के अरबी-फ़ारसी पर्याय उपलब्ध थे।

'तरमादेर्गिसि' के प्रकाशन के कतिपय वर्ष बाद भाषा-परिषद् के मनोभाव

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। सन् १९३३-३४ के अति-शुद्धीकरण के वाद, परिषद् को इस वात का अनुभव हुआ कि अरवी-फ़ारसी के उन शब्दों को जो जन-साधारण के जीवन में घुलमिल गये हैं, निकाल फेंकना नितांत कठिन है। इसके वाद परिषद् ने अपने शुद्धीकरण की नीति की गति को किंचित् मन्द कर देना उचित समझा। 'किलावुज़' के अवसर पर परिषद् ने यह वक्तव्य प्रकाशित किया—"इस ग्रंथ के प्रकाशन का उद्देश्य उन विदेशी शब्दों को प्रकाशन में लाना है जो केवल साहित्यिक अथवा लिखित भाषा में प्रयुक्त होते हैं किन्तु जो वोलचाल की भाषा में व्यवहृत नहीं होते। तुर्की भाषा में सुधार करने का उद्देश्य उसे विशुद्ध वनाना नहीं है अपितु साहित्य एवं शिक्षा की भाषा को वोलचाल की भाषा के निकट लाना है।" जैसा कि 'किलावुज़' की भूमिका में लिखा है—"इस पुस्तक की रचना व्यावहारिक दृष्टिकोण से की गयी है और इसका कार्य लेखकों का मार्ग-दर्शन करना है ताकि साहित्य की भाषा को वे जन-भाषा के निकट ला सकें।"

सुधार-सम्वन्धी परिवर्तित-मनोवृत्ति के कारण अरवी-फारसी के सैकड़ों शब्द 'किलावुज़' में सुरक्षित रखे गये, किन्तु ध्वन्यात्मक दृष्टि से वे तुर्की रूप में ढाल दिये गये थे। इनके दो-एक तुर्की पर्याय भी दिये गये थे। खोज-विवरणों में, जन-साधारण में प्रचलित अरवी-फारसी शब्दों को भी विदेशी मानकर अलग रखा गया था किन्तु 'किलावुज़' में उन्हें तुर्की शब्दों की श्रेणी में ही रखा गया। इसी प्रकार अरवी फारसी के जिन साधारण शब्दों के लिए तुर्की पर्याय देने की जरूरत नहीं थी उन्हें 'किलावुज़' में स्थान नहीं दिया गया।

इस नूतन उदार नीति का यह सैद्धान्तिक कारण दिया गया कि 'शब्द-व्युत्पत्ति-समिति' के अनुसार अरवी-फारसी के अनेक शब्द जिन्हें विदेशी माना गया है, मूलतः तुर्की-भाषा के हैं और तुर्की से ही वहाँ गये हैं। 'किलावुज़' के प्रकाशन के समय ही तुर्की में 'पुत्र-भाषा सिद्धान्त' (गुनेश्-दिल त्योरिसि) का प्रादुर्भाव हुआ। इसके अनुसार जिस प्रकार तुर्कों का प्राचीन स्थान, 'मध्य एशिया' मानव सभ्यता का मूल स्थान है, उसी प्रकार तुर्की भाषा, विश्व की सभी भाषाओं की जननी है। सन् १९३५ के सितम्वर-नवम्वर के वाद इस सिद्धान्त की पुष्टि में अनेक पत्रक एवं लेख प्रकाशित हुए जिनमें यह सिद्ध किया गया कि ओटोमन में प्रयुक्त अरवी-फारसी तथा यूरोपीय भाषाओं के शब्द मूलतः तुर्की से ही प्रसूत हुए हैं। यह नूतन सिद्धान्त इतना प्रवल एवं महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ कि भाषा-परिषद् को अव किसी शब्द को विदेशी कहकर वहिष्कृत करने की जरूरत ही न रह गयी। तर्क से यह वात विलकुल ठीक थी। जव तुर्की से ही विश्व की सभी भाषाएँ प्रसूत हुई हैं तो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इन भाषाओं के शब्द भी मूलतः उसी के हैं, अतएव उसका शुद्धीकरण निरर्थक एवं व्यर्थ है।

तुर्की भाषा के आधुनिक लेखकों के अनुसार जब अतातुर्क की भाषा-सुधार-सम्बन्धी नीति सफल न हुई तब उन्होंने भाषा-विषयक नवीन सिद्धान्त को परिचालित किया। इसका परिणाम यह हुआ कि साहित्य में विदेशी शब्दों के बदले तुर्की-शब्दों को प्रचलित करने की गति मन्द पड़ गयी। इस सम्बन्ध में अतातुर्क ने लोगों के सामने आदर्श उपस्थित किया। सन् १९३४ के नवम्बर में उन्होंने 'हकिमियेते-मिल्लिये' समाचार-पत्र का नाम बदलकर 'उलुस' (राष्ट्र) रखा था। 'उलुस' शब्द तुर्की भाषा से बहुत पहले लुप्त हो चुका था और उसे समझने में लोगों को बहुत कठिनाई हो रही थी। अतातुर्क ने पुनः इसे बदलकर इसका नामकरण 'मिल्लत' (अरबी) किया। 'तरमादेर्गिसि' में नित्य के व्यवहार में आनेवाले अरबी-फ़ारसी शब्दों के भी तुर्की पर्याय दिये गये किन्तु 'किलावुज़' में ये शब्द बिना पर्याय के रखे गये। वस्तुतः यह अतातुर्क की भाषा-सम्बन्धी नीति का दूसरा उदाहरण था। सन् १९३५ में अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो गयी कि अतातुर्क को उधर ध्यान देना आवश्यक हो गया। अतएव उन्होंने भाषासुधार की अपनी क्रान्तिकारी नीति में परिवर्तन कर दिया, किन्तु पारिभाषिक शब्दों के निर्माण का कार्य पूर्ववत् चलता रहा।

भाषा-परिषद् का तीसरा अधिवेशन सन् १९३६ के अगस्त में हुआ। उधर परिषद् पारिभाषिक शब्दों के निर्माण में संलग्न थी। परिषद् का प्रथम उद्देश्य प्राइमरी तथा मिडिल तक के छात्रों के लिए पारिभाषिक शब्द तैयार करना था। सन् १९३३-३४ में तीस हजार विदेशी शब्दों की सूची तैयार की गयी और उनका तुर्की प्रतिरूप देने के लिए उन्हें विशेषज्ञों के पास भेज दिया गया। विशेषज्ञों द्वारा गढ़े गये तुर्की शब्दों की छान-बीन की गयी और इसके बाद गणित एवं भौतिक-विज्ञान के पारिभाषिक शब्दों की अस्थायी सूची तैयार की गयी। सन १९३७ में परिषद् ने यह सूची शिक्षा-मंत्रालय के पास भेज दी। मंत्रालय ने अध्यापकों तथा अन्य लोगों से अनुरोध किया कि वे इन शब्दों के आवश्यक सुधार के सम्बन्ध में अपने सुझाव उपस्थित करें। लोगों के सुझाव के बाद विविध समितियों ने इनके सम्बन्ध में पुनः विचार किया। इस प्रकार अन्त में पाँच हजार पारिभाषिक शब्दों की सूची तैयार हो गयी। सन् १९३९ में सरकार ने इन्हें स्वीकार कर लिया और पाठ्य-पुस्तकों में इन्हें चालू करने की आज्ञा दी।

सन् १९३८ के नवम्बर में अतातुर्क की मृत्यु हो गयी और इसके बाद

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तुर्की भाषा में सुधार अथवा क्रान्ति की गति और मन्द पड़ गयी। अर्द्धसरकारी पत्र 'उलुस' तक ने भाषा-सुधार के सम्बन्ध में अतिवाद का विरोध किया। सन् १९३४ में तुर्की के समाचार पत्र 'वक्त' का अरबी नाम बदलकर 'कुरुन' रखा गया था किन्तु सन् १९३९ में इसका नाम पुनः वक्त कर दिया गया। इसीप्रकार प्रान्त तथा जिले के लिए पहले अरबी शब्द 'विलायत' एवं 'काजा' प्रयुक्त होते थे किन्तु बाद में इन्हें तुर्की 'इल' एवं 'इल्शे' में परिणत कर दिया गया। अतातुर्क की मृत्यु के पश्चात् पुनः पुराने शब्दों—विलायत एवं काजा— का ही प्रयोग होने लगा। यद्यपि 'पुत्र-भाषा' सम्बन्धी सिद्धान्त अब समाप्त हो गया था तथापि भाषा-परिषद् ने अपनी नीति उदार रखी। सन १९४० में परिषद् के महामंत्री ने अपने इस मन्तव्य को पुनः दुहराया कि जो विदेशी शब्द तुर्की भाषा में घुल-मिल गये हैं उन्हें नागरिकता प्राप्त हो गयी है और कुछ शर्तों के साथ उन्हें तुर्कीभाषा के शब्द-समूह में सम्मिलित कर लेना चाहिए।

शुद्धीकरण का पुनः प्रयत्न

जिस समय भाषा-सुधार-सम्बन्धी आन्दोलन प्रायः समाप्त हो चुका था उसी समय अतातुर्क के उत्तराधिकारी ने शुद्धीकरण का आन्दोलन पुनः चलाया। इस्तमत इनोनु भाषा-सुधार आन्दोलन में सदैव दिलचस्पी लेते रहे। अपने प्रधान मंत्रित्वकाल में, सन् १९२९ की फरवरी में, उन्होंने विद्वानों एवं अध्यापकों के समक्ष भाषण देते हुए कहा था—"आधुनिक तुर्की भाषा में ऐसे कोश का निर्माण होना चाहिए जिसकी भाषा सरल एवं शुद्ध हो।" सन् १९४१ में, भाषा-सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए प्रेसिडेंट इनोनु ने कहा—"अतातुर्क ने तुर्की को शुद्ध करने तथा उसे राष्ट्रभाषा बनाने के लिए जो प्रयत्न किया था उसे जारी रखना चाहिए।" इसके एक महीने बाद इनोनु ने लोकसभा के समक्ष विशुद्ध तुर्की में भाषण देकर लोगों के सामने आदर्श उपस्थित किया।

राष्ट्रपति इनोनु ने अपने एक भाषण में, जनता से, विदेशी शब्दों के बहिष्कार के लिए अनुरोध किया था। भाषा-परिषद् ने तुर्की भाषा के शुद्धीकरण के लिए इसे अपना नारा बनाया। राष्ट्रपति की विचारधारा की पुष्टि में, सन् १९४१-४२ में, 'उलुस' ने अनेक लेख प्रकाशित किये। समाचार-पत्रों, प्रेस के प्रतिनिधियों तथा रेडियो ने भी तुर्की भाषा के शुद्धीकरण में योगदान दिया। इस आन्दोलन का मन्तव्य यह न था कि विदेशी शब्दों के तुर्की-पर्याय ढूंढ़े जायँ अपितु इसका मुख्य उद्देश्य यह था कि भाषा-परिषद् जिस रूप में तुर्की-भाषा में सुधार करना चाहती थी, लोग उसे स्वीकार करें।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तुर्की में भाषा-परिवर्तन-सम्बन्धी इस आन्दोलन का सूत्रपात ठीक उस समय हुआ जब सरकार अतातुर्क के धर्म-निरपेक्ष सुधारों को परिचालित करने में दृढ़ता-पूर्वक कार्य कर रही थी। सन् १९४१ की २ जून को लोक-सभा ने तुर्की के फौजदारी के कानून की ५२६वीं धारा को संशोधित किया जिसके अनुसार तुर्की टोपी पहनने तथा अरबी अक्षरों के प्रयोग करने के लिए सजा की मियाद बढ़ा दी गयी। इसी प्रकार अरबी में 'एज़ान' (नमाज के पूर्व की घोषणा) के प्रयोग के लिए तीन महीने का जेल दण्ड निर्धारित किया गया। सन् १९३२ के प्रथम भाषा-परिषद् के समय ही नमाज़ (प्रार्थना) को तुर्की में अनूदित कर दिया गया था और लोग प्रायः तुर्की में ही प्रार्थना करने लगे थे।

तुर्की भाषा के शुद्धीकरण के प्रयत्न का व्यावहारिक रूप वस्तुतः भाषा-परिषद् के सन् १९४२ के प्रकाशनों में स्पष्टरूप से दृष्टिगोचर होता है। इस वर्ष परिषद् ने दर्शन, शिक्षा, समाजशास्त्र तथा व्याकरण-सम्बन्धी शब्दों की सूचियों का प्रकाशन किया था। सन् १९३९ में परिषद् की ओर से जो शब्द-सूची प्रकाशित की गयी थी, उससे परिषद् की उदारनीति का पता चलता है क्योंकि इनमें अनेक अन्तर्राष्ट्रीय शब्दों को भी स्थान मिला था, किन्तु सन् १९४२ में परिषद् ने अपनी नीति बिल्कुल बदल दी। अब पारिभाषिक शब्दों की सूची से बहुप्रचलित विदेशी शब्द भी निकाल दिये गये और उनका स्थान शुद्ध तुर्की-शब्दों ने ले लिया।

भाषा-परिषद् की ऊपर की नीति लोगों को पसन्द न आयी। यह प्रथम अवसर था जब लोगों ने परिषद् की नीति का विरोध किया। इस नीति की सब से कड़ी आलोचना शिक्षा-संस्थाओं ने की। इस्तम्बोल विश्वविद्यालय के प्राध्यापकों ने वैज्ञानिक शब्दों के निर्माण में, परिषद् की प्रामाणिकता अस्वीकार कर दी। बात यह थी कि विश्वविद्यालय तथा कई अन्य शिक्षा-संस्थाएँ पारिभाषिक शब्दों के निर्माण का कार्य स्वयं कर रही थीं। सन् १९४१ में, विश्वविद्यालय की केन्द्रीय-समिति ने पारिभाषिक शब्दों के सम्बन्ध में कतिपय सिद्धान्त बनाये किन्तु भाषा-परिषद् ने इन्हें अस्वीकार कर दिया। विश्वविद्यालय के अधिकारी प्रगतिशील राष्ट्रों द्वारा स्वीकृत अन्तर्राष्ट्रीय पारिभाषिक शब्दों को तुरन्त चालू करने के पक्ष में थे किन्तु परिषद् के मतानुसार धीरे-धीरे इनके लिए विशुद्ध तुर्की शब्दों का गढ़ना आवश्यक था।

विश्वविद्यालय के प्राध्यापकों का कथन था कि अन्तर्राष्ट्रीय पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग से यह लाभ होगा कि तुर्की के छात्र पश्चिमी देशों के वैज्ञानिक अनुसन्धानों को सरलतया हृदयंगम कर सकेंगे। इनके मतानुसार प्रत्येक विदेशी पारिभाषिक शब्द के लिए तुर्की पर्याय ढूँढ़ना कठिन एवं अनावश्यक था।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2
भाषा-परिषद् के सदस्य जिनमें श्री इस्माइल हाक्किवाल्त चिग्लु भी थे, प्राध्यापकों के विचार से सहमत न थे। श्री इस्माइल ने इस सम्बन्ध में जर्मन, जापानी, फिन्नीय तथा हुंगेरीय लोगों का उदाहरण देते हुए कहा कि इन राष्ट्रों ने अपनी-अपनी भाषाओं में पारिभाषिक शब्दों का निर्माण किया है। श्री इस्माइल के मतानुसार ग्रीक तथा लैटिन से बने हुए पारिभाषिक शब्द भारोपीय परिवार की भाषाओंवाले देशों में प्रचलित हो सकते हैं किन्तु तुर्की में इन्हें चालू करना ठीक नहीं; क्योंकि तुर्कीभाषा अन्य परिवार की है। परिषद् के अन्य सदस्य भी अन्तर्राष्ट्रीय पारिभाषिक शब्दों के इसलिए विरुद्ध थे कि ग्रीक-लैटिन भाषाएँ तुर्की के स्कूलों में नहीं पढ़ाई जातीं।

विश्वविद्यालय के प्राध्यापकों का एक यह भी तर्क था कि पारिभाषिक शब्दों के अभाव में न तो विविध विषयों का अध्ययन-अध्यापन ही बन्द किया जा सकता है और न नवीन पुस्तकों का प्रकाशन ही। दूसरी ओर भाषा-परिषद् पारिभाषिक शब्दों के तत्काल निर्माण करने में असमर्थ थी। कार्य अत्यधिक गुरुतर था। उदाहरणस्वरूप एक लाख पच्चीस हजार जर्मन पारिभाषिक शब्दों के तुर्की पर्याय देने के लिए, तीन सौ तुर्क वैज्ञानिक सन् १९३८ से सन् १९४९ तक व्यस्त रहे। यद्यपि विश्वविद्यालय से किसी प्रकार का समझौता न हो सका तथापि भाषा-परिषद् अपने कार्य में व्यस्त रही और सन् १९४८-४९ में उसने कानून, प्राणि-शास्त्र, वनस्पति-शास्त्र, साहित्य एवं भाषा-शास्त्र तथा कृषि-शास्त्र के पारिभाषिक शब्दों की सूचियाँ प्रकाशित कीं।

नवीन कोश तथा संविधान का नूतन संस्करण

सन् १९४१ से तुर्की भाषा के शुद्धीकरण की जो धारा चली थी उसका प्रभाव इस युग में निर्मित तुर्कीकोश पर भी पड़ा। सन् १९३९ में ही भाषा-परिषद् ने इस कोश के निर्माण का कार्य अपने हाथों में लिया था। इसके निर्माण का उद्देश्य यह था कि भाषा-सुधार-आन्दोलन के फलस्वरूप जितने नवीन शब्द तुर्की में चालू हो गये हैं उन्हें इस कोश में एकत्र कर दिया जाय। अनेक वर्षों के अनुसन्धान एवं कठिन परिश्रम के परिणामस्वरूप 'तुर्कशे सोज्लुक' (तुर्की-तुर्की-कोश) का प्रकाशन हुआ।

कई दृष्टियों से यह कोश पूर्व प्रकाशित कोशों से महत्त्वपूर्ण है। पारिभाषिक शब्दों के अतिरिक्त, इस कोश में बोलचाल में प्रयुक्त होनेवाले विदेशी शब्द भी हैं। इसकी एक विशेषता यह भी है कि भविष्य में प्रयुक्त करने के लिए नये शब्द भी इसमें दिये गये हैं। बहुत वाद-विवाद के बाद भाषा-परिषद् ने यह निश्चय किया था कि जो विदेशी शब्द, बोलचाल की तुर्की भाषा में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नहीं प्रयुक्त होते उन्हें इस कोश में स्थान नहीं मिलना चाहिए। 'सोज़लुक' की भूमिका में विदेशी शब्दों के सम्बन्ध में यह विचार प्रकट किया गया था— "इस कोश में आ जाने से ही विदेशी शब्दों को तुर्की भाषा में सम्मिलित होने का अधिकार प्राप्त नहीं हो सकता। इस बात के लिए सदैव यत्न होना चाहिए कि इनके तुर्की-पर्याय मिलें ताकि अगले संस्करण में इनके स्थान पर उन्हें दिया जा सके।" सच बात तो यह है कि विदेशी शब्दों से तुर्की भाषा को मुक्त करने के लिए ही 'सोज़लुक' का निर्माण हुआ था और इसके सम्पादकों को यह आशा थी कि विदेशी शब्द बहुत दिनों तक तुर्की भाषा में न रह सकेंगे।

भाषा के शुद्धीकरण के भाव का पूर्ण प्रतिबिम्ब वस्तुतः विधान के नूतन-संस्करण में मिलता है। विधान में प्रयुक्त शब्दावली का कानून तथा विज्ञान के पारिभाषिक शब्दों पर भी स्वाभाविक रीति से प्रभाव पड़ता है। इसी प्रकार प्रेस, रेडियो तथा शासन-सम्बन्धी शब्दावली पर भी विधान की भाषा का प्रभाव अवश्यम्भावी है। विधान की भाषा को ठीक करने में लगभग तीन वर्ष लगे। सर्वप्रथम इस्तम्बोल और अंकारा विश्वविद्यालयों के कानून विभाग के प्राध्यापकों तथा लोकसभा के सदस्यों एवं भाषा-शास्त्रियों ने विधान का प्रारूप तैयार किया। भाषा-परिषद् को इसकी भाषा में कुछ त्रुटियाँ मालूम पड़ीं, इसलिए उसने अपना अलग प्रारूप तैयार किया। इसी प्रकार अन्य लोगों ने भी विधान के अपने-अपने प्रारूप तैयार किये। अन्त में इन सभी प्रारूपों पर विचार कर विधान की प्रामाणिक प्रति तैयार की गयी जिसे सन् १९४५ की जनवरी में लोकसभा ने स्वीकार कर लिया। इस नूतन संस्करण में, विधान की भाषा में किस रूप में परिवर्तन हो गया, इसे स्पष्ट करने के लिए इसकी २६वीं धारा से, यहाँ उदाहरण दिया जाता है। सन् १९२४ के विधान के संस्करण में इस धारा में ६६ शब्द अरबी के तथा केवल ७ शब्द तुर्की के थे, किन्तु इसके १९४५ के संस्करण में (जिसमें दो शब्द कम थे) ३७ शब्द तुर्की के, १ शब्द फ्रेंच का तथा ३३ शब्द अरबी के हो गये। यदि इस धारा में अरबी के दो बार आये हुए शब्दों को केवल एक ही बार गिनें तो इनकी संख्या ५० से १५ रह गयी। विधान की कुल १०५ धाराओं में अरबी-फारसी शब्दों की संख्या केवल १४० है। इनमें वे शब्द सम्मिलित नहीं हैं जो विदेशी शब्दों में तुर्की-प्रत्यय जोड़कर बनाये गये हैं। यूरोपीय भाषाओं के तो इनमें केवल १० शब्द ही हैं। विधान में अरबी-फारसी के सैकड़ों शब्दों के स्थान पर तुर्की के शब्द दिये गये हैं और जो विदेशी शब्द हैं भी, उन्हें तुर्की ध्वनि एवं व्याकरण का जामा पहना दिया गया है। धार्मिक तथा राष्ट्रीय दृष्टि से महत्त्वपूर्ण विदेशी शब्दों को विधान में सुरक्षित रखा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गया है किन्तु इनके सम्बन्ध में टिप्पणी में यह भी कहा गया है कि ये शब्द तुर्की भाषा में चन्द दिनों के मेहमान हैं। यह होते हुए भी विधान के इस नूतन संस्करण में समन्वयात्मक दृष्टिकोण ही प्रधान है। उदाहरणस्वरूप प्रान्त और जिले के लिए अरबी 'विलायत' और 'कजा' शब्द तो इस विधान से वहिष्कृत कर दिये गये हैं किन्तु नगरपालिका, छोटे नगर तथा वड़े नगर के लिए इसमें 'वेलेदिये', 'कस्वा' तथा 'शहर' शब्द सुरक्षित रखे गये हैं।

भाषा-परिषद् का विरोध

शुद्ध तुर्की में विधान के नवीन संस्करण की स्वीकृति वस्तुतः भाषा-सुधार की चरम सीमा थी। उधर अतातुर्क तथा इनोनु ने राजनैतिक तथा धार्मिक क्षेत्रों में जो भी सुधार किये थे उनके परिणामस्वरूप अव तुर्क जाति प्रजासत्तात्मक शासन चलाने के योग्य हो चली थी। अतएव सन् १९४५ के नवम्बर में इनोनु ने अपनी नीति में परिवर्तन किया और लोगों को लोकसभा में प्रतिपक्षी अथवा विरोधी दल के निर्माण का अधिकार दिया। इस अधिकार के साथ ही तुर्की के राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास में एक नवीन अध्याय का आरम्भ हुआ। गत कई वर्षों से लोग भाषा-परिषद् की सुधार-योजनाओं से असन्तुष्ट थे किन्तु जब तक उसे एकतंत्र शासन का समर्थन प्राप्त था तव तक वे खुलकर उसकी आलोचना करने में असमर्थ थे। किन्तु शासन में प्रजासत्तात्मक-प्रणाली के प्रादुर्भाव तथा द्वितीय युद्ध के बाद लोग भाषापरिषद् का विरोध करने लगे। इन विरोधियों में इस्तम्बोल के समाचार-पत्र, विश्वविद्यालय के प्राध्यापक तथा माध्यमिक स्कूलों के अध्यापक प्रमुख थे। तुर्की की 'विचार स्वातंत्र्य-समिति' ने तो सन् १९४९ में, एक विशेष अधिवेशन बुलाकर भाषा-परिषद् की नीति की आलोचना की और यह प्रस्ताव स्वीकृत किया कि भाषा के सम्बन्ध में किसी भी संस्था का किसी प्रकार का हस्तक्षेप उचित नहीं है। उधर धर्म-निरपेक्षता के नाम पर अतातुर्क ने, स्कूलों तथा विश्वविद्यालयों में धार्मिक शिक्षा बहिष्कृत कर दी थी। किन्तु नवीन वातावरण में वह पुनः चालू की गयी।

भाषा-परिषद् के विरोध के अनेक कारण थे, जिनमें से पहला था लोगों का आलस्य। जिस भाषा को वड़े-बूढ़े तथा अधिकारीगण लड़कपन से वोलते आये थे उसे छोड़कर वे नये शब्द तथा नयी भाषा सीखने के लिए तैयार न थे। समाचार-पत्रों के सम्पादकों की यह आलोचना थी कि लोग दैनिक-पत्रों को जल्दी से जल्दी पढ़ना चाहते हैं, किन्तु नयी भाषा के कारण उन्हें इन पत्रों के पढ़ते समय कोश की आवश्यकता पड़ती है। कवियों, कहानी एवं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उपन्यास लेखकों तथा अन्य साहित्यिकों की यह आलोचना थी कि नवीन भाषा के द्वारा वे भाव तथा चित्र लोगों के सम्मुख नहीं आ पाते जो पुरानी भाषा के द्वारा आते हैं। इसके अतिरिक्त इन्हें इस बात का भय था कि भाषा में निरन्तर परिवर्तन के फलस्वरूप निकट भविष्य में लोग उनकी कृतियों को समझने में असमर्थ हो जायेंगे। यद्यपि अनेक अध्यापक भाषा-परिषद् की नीति के समर्थक थे तथापि ऐसे अनेक पुराने लोग भी थे जो इसके विरोधी थे। बात यह थी कि वे नूतन भाषा सीखने में असमर्थ थे।

भाषा-परिषद् की नीति के विरोध के अन्य कारण मनोवैज्ञानिक एवं आदर्शमूलक थे। पुराने लोगों को इस बात का भय था कि अरबी तथा फारसी शब्दों के बहिष्कार का यह परिणाम होगा कि लोग प्राचीन धार्मिक एवं सांस्कृतिक परम्परा से विच्छिन्न हो जायेंगे। उदार-दल के लोगों को भाषा-परिषद् की नीति में एकतंत्रवाद की गन्ध आ रही थी। उनके अनुसार भाषा-निर्माण का काम कवियों एवं लेखकों का है, सरकार का नहीं।

भाषा-विकास की दृष्टि से भी परिषद् की कम आलोचना नहीं हुई। कतिपय लोगों का यह कथन था कि भाषा के अपने नियम हैं और उनके अनुसार वह स्वतः परिवर्तित होती रहती है। अतएव किसी सरकार अथवा परिषद् को यह अधिकार नहीं है कि वह संगठित ढंग से भाषा को परिवर्तित करने का प्रयत्न करे। इनके अनुसार समय की प्रगति के साथ तुर्की भाषा स्वतः सरल एवं सम्पन्न हो रही थी किन्तु भाषा-परिषद् उसके मार्ग में बाधक बन गयी। इन आलोचकों का कथन था कि भाषा की विशिष्टता तथा मौलिकता वस्तुतः उसके रूप-तत्त्व (Morphology) तथा वाक्य-तत्त्व (Syntax) में रहती है, उसके शब्द-समूह (Vocabulary) में नहीं।

अन्य लोगों के मतानुसार सुधार के कारण तुर्की भाषा असम्पन्न हो रही थी और उसका सौन्दर्य नष्ट हो रहा था। वे बहु-प्रचलित अरबी-फारसी शब्दों के बदले अप्रचलित तुर्की शब्दों के चालू करने के प्रयास को व्यर्थ समझते थे। परिषद् ने भविष्य के लिए जो शब्द गढ़े थे उन्हें ये लोग ध्वनि, व्याकरण एवं अर्थ की दृष्टि से भद्दे एवं अशुद्ध मानते थे। इसी प्रकार अप्रचलित तुर्की शब्दों को प्रचलित करने तथा तुर्की के बाहर की तुर्की-भाषाओं से शब्द उधार लेने के भी ये विरोधी थे।

अनेक आलोचकों के अनुसार भाषा-परिषद् अपने प्रयास में असफल रही। वस्तुतः परिषद् का उद्देश्य तत्कालीन तुर्की भाषा को इस रूप में विकसित करना था ताकि वह जनसाधारण के विचारों के प्रकाशन का माध्यम बन सके, किन्तु यह कार्य छोड़कर भाषा-परिषद् एक नवीन कृत्रिम भाषा के निर्माण

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

में संलग्न हो गयी। यह कृत्रिम भाषा वस्तुतः प्राकृत भाषा से दूर होती गयी जिसका स्पष्ट परिणाम यह हुआ कि वह लोगों के लिए अबोधगम्य बन गयी। उनके अनुसार साक्षरों तथा निरक्षरों की भाषा में काफी अन्तर हो गया था और इसी प्रकार लिखित भाषा बोलचाल की भाषा से दूर होती जा रही थी।

यहाँ पर यह बात स्पष्टतया जान लेनी चाहिए कि सुधार के कट्टर से कट्टर विरोधी भी प्रतिक्रियावादी न थे। उनका भी यह मत था कि आधुनिक तुर्की का ओटोमन भाषा से पार्थक्य आवश्यक था, किन्तु इसके साथ ही ये लोग यह भी मानते थे कि सन् १९२८ तक तुर्की भाषा पर्याप्त रूप से विकसित हो चुकी थी और उसमें विशेष सुधार की जरूरत न थी। इन विरोधियों एवं आलोचकों की सब से बड़ी कमजोरी यह थी कि भाषा को सक्षम बनाने के लिए इनके पास कोई स्पष्ट कार्यक्रम न था। इसके अतिरिक्त भाषा-परिषद् की तरह विचारों के प्रचार के लिए न तो इनका कोई संगठन था और न इनके पास कोई साधन ही थे।

पुनः उदार नीति की ओर

आलोचना तथा विरोध के वातावरण में, सन् १९४९ के दिसम्बर में, भाषा-परिषद् का छठा अधिवेशन हुआ। इस अधिवेशन के सभापति एक ऐसे सज्जन हुए जो वस्तुतः भाषा के शुद्धीकरण के विरोधी थे। इसी समय परिभाषा समिति ने यह निश्चय किया कि कुछ शर्तों के साथ, विश्वविद्यालय में अध्यापन के लिए अन्तर्राष्ट्रीय पारिभाषिक शब्दों को चालू कर देना चाहिए।

सन् १९५१ की फरवरी में भाषापरिषद् का एक विशेष अधिवेशन हुआ। बात यह थी कि सन् १९५० के मई में जो चुनाव हुआ उसमें डेमोक्रेटिक दल की विजय तथा रिपब्लिकन दल की हार हो गयी। भाषापरिषद् का इस दूसरे दल से ही सम्बन्ध था। इसके हार के परिणामस्वरूप परिषद् के कतिपय नियमों में परिवर्तन आवश्यक हो गया। इस अधिवेशन में 'भाषा-परिषद्' को 'भाषा एकेडेमी' के रूप में परिवर्तित करने के प्रस्ताव पर खूब बहस हुई। लोग यह भी चाहते थे कि इस एकेडेमी के कतिपय विशेषज्ञ ही सदस्य हों। अन्त में प्रस्ताव स्वीकृत न हो सका किन्तु इस अधिवेशन का यह परिणाम हुआ कि परिषद् की सदस्यता तथा सभापतित्व आदि में बहुत अन्तर आ गया। अब भाषा में दिलचस्पी रखनेवाला प्रत्येक बालिग तुर्क भाषापरिषद् का सदस्य हो सकता था। इसी प्रकार अब तक परिषद् का सभापति कोई नेता या लोकसभा का सदस्य ही होता था किन्तु अब विद्वानों के लिए भी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इसका द्वार खुल गया। सन् १९५१ में परिषद् की कार्यकारिणी समिति में, विश्वविद्यालय के प्राध्यापकों, भाषाशास्त्र के पंडितों तथा माध्यमिक स्कूल के अध्यापकों का वहुमत हो गया। इस वार भाषा-परिषद् के जो सभापति तथा महामंत्री चुने गये वे भाषा-सुधार के सम्बन्ध में उदार मतवादी थे। परिषद् ने अव मध्यम मार्ग को अपनाया। इस मार्ग की पृष्ठभूमि जीवित भाषा वनी। परिषद् ने शव्द-ग्रहण की नीति इस रूप में निर्धारित की: सर्वप्रथम स्थान वोलचाल तथा साहित्य में प्रचलित शव्दों का रहेगा। इसके वाद अप्रचलित अथवा वोलियों के शव्द आयेंगे। तदुपरान्त तुर्की के वाहर की तुर्की भाषा के शव्द आ सकते हैं और अन्त में दूर की वोलियों के भी शव्द ग्रहण किये जा सकते हैं।

सन् १९५० के चुनाव के वाद भाषापरिषद् का अर्द्धसरकारी रूप समाप्त हो गया था। उसे सरकार की ओर से जो सहायता मिलती थी उसमें वहुत कमी कर दी गयी। सन् १९५२ की २४ दिसम्वर को लोकसभा ने सन् १९४५ वाली विधान की भाषा को अस्वीकार करके पुनः सन् १९२४ वाली भाषा स्वीकृत की। इस सम्वन्ध में लोकसभा का यह मत था कि नवीन भाषा अभी तक इतनी समर्थ नहीं वन सकी है कि विधान जैसी महत्त्वपूर्ण वस्तु के लिए उसका प्रयोग किया जा सके। डेमोक्रेटिक दल ने अव अरवी में नमाज पढ़ने तथा अंकारा रेडियो से कुरान के पाठ की भी आज्ञा दे दी।

नये शब्दों का कैसे प्रचार किया गया

अरवी-फारसी शव्दों के स्थान पर तुर्की शव्दों को कैसे प्रचारित किया गया, यह भी एक दिलचस्प कहानी है। पारिभाषिक शव्द तो स्कूल तथा कालेजों की पाठ्य-पुस्तकों द्वारा प्रचलित किये जा सकते हैं। इसी प्रकार विधान में प्रयुक्त शव्द भी सरकारी आज्ञा से चालू किये जा सकते हैं किन्तु पारिभाषेतर शव्दों को जनता में चालू करना सरल कार्य नहीं है। किन्तु यह कार्य भी तुर्की में सम्पन्न हुआ। भाषा-क्रान्ति के प्रथम युग (सन् १९३४-३५) में सरकार ने समाचारपत्रों को कम-से-कम दो लेख नवीन भाषा में प्रकाशित करने के लिए वाध्य किया। इन लेखों के अन्त में नये शव्दों की सूची तथा उनकी व्याख्या भी दी जाती थी। यह कार्य वहुत दिनों तक न चल सका। भाषा-परिषद् को तत्काल इस वात का अनुभव हुआ कि नये शव्दों को जनता पर लादना कठिन है। सन् १९३५ में परिषद् के महामंत्री ने अपने एक वक्तव्य में कहा—" 'किलावुज़' में विदेशी-शव्दों के स्थान पर, सुझाव रूप में, जो तुर्की शव्द रखे गये हैं उन्हें हम जनता पर जवर-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दस्ती लादना नहीं चाहते।" सन् १९४५ में पुनः यहीं बात दुहरायी गयी—"जनता पर नवीन शब्द लादने का हमें अधिकार नहीं है। ये शब्द केवल सुझाव रूप में दिये जा रहे हैं और यदि लेखकों को ये पसन्द आयें तो वे इसका प्रयोग करें।"

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, नये शब्दों के प्रयोग के लिए किसी प्रकार की कानूनी वाध्यता न थी। फिर भी इन्हें चालू करने के लिए परिषद् पूर्ण नैतिक वल का प्रयोग करती थी। अतातुर्क तथा इनोनु, वस्तुतः भाषा-सुधार के पक्ष में थे और वे अपने भाषणों तथा वक्तव्यों में सदैव विशुद्ध तुर्की शब्दों का प्रयोग करते थे। कई पनडुब्बियों का नामकरण अतातुर्क ने स्वयं किया और ये नाम विशुद्ध तुर्की के थे। गणित एवं ज्यामिति के लिए भी इन्होंने कई पारिभाषिक शब्द गढ़े। भाषा-परिषद् को आरम्भ के दो राष्ट्रपतियों का पूर्ण सहयोग प्राप्त था। सन १९३५ में स्कूलों की पाठ्य-पुस्तकें नयी भाषा में छापी गयीं। इसी प्रकार कई महत्त्वपूर्ण सरकारी कागज-पत्रों का प्रकाशन भी इस नवीन भाषा में ही हुआ। इस युग में जो नूतन तुर्की विश्व-कोष वना, उसके द्वारा भी अनेक नये तुर्की शब्द चालू हुए। सरकारी समाचार एजेन्सी तथा इस्तम्वोल एवं अंकारा की आकाशवाणियों ने भी विदेशी शब्दों के निष्कासन में, भाषा-परिषद् का साथ दिया।

भाषा-सुधार के मामले में तुर्की सेना ने भी परिषद् का साथ दिया। तुर्की सैनिकों को धर्म में कम तथा सुधार में अधिक दिलचस्पी थी। इसके अतिरिक्त सेनाधिकारी सामान्य शिक्षा में भी काफी रस लेते थे और इसके लिए वे भाषा एवं लिपि में सुधार आवश्यक समझते थे। सन् १९२५-२८ में फौजी-नियम सम्वन्धी पुस्तिका छापी गयी जिसमें अरवी-फारसी शब्दों के वदले तुर्की-शब्दों का व्यवहार किया गया। सन् १९३५ की फरवरी में 'सेना के मुख्य अधिकारी ने विदेशी सैनिक शब्दों के वदले विशुद्ध तुर्की शब्दों को व्यवहृत करने का आदेश दिया और इसके फलस्वरूप ऐसे शब्दों की एक सूची भी प्रकाशित की गयी।

ऊपर भाषा-परिषद् द्वारा प्रकाशित पुस्तकों का उल्लेख किया जा चुका है। इनके अतिरिक्त परिषद् ने अनेक अन्य ऐसी पुस्तकें प्रकाशित कीं, जिनका सम्वन्ध तुर्की ध्वनियों, भाषा एवं व्याकरण से था। साधारण जनता तक पहुँचने के लिए परिषद ने मनोरंजक पुस्तकों का भी प्रकाशन किया।

नये शब्दों के चालू करने में परिषद् को अत्यधिक कठिनाई हुई। परिषद् की शुद्धीकरण की नीति के लोग कितने विरुद्ध थे, यह पहले कहा जा चुका है। परिषद् ने जव एक साथ ही अनेक नये शब्दों को चालू करने का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रयत्न किया तो लोग और भी अधिक उसके विरुद्ध हो गये। जब नये और पुराने शब्द सन्दर्भ में साथ-साथ आते हैं तो नये शब्दों का समझना आसान होता है। किन्तु जहाँ सभी शब्द नये होते हैं वहाँ पाठकों की समझ में कुछ भी नहीं आता। एक बात और थी, जहाँ भाषा-परिषद् शीघ्रातिशीघ्र अपना कार्य सम्पन्न करना चाहती थी वहाँ यदा-कदा अपनी नीति भी वह बदल देती थी। इससे भी लोगों की कठिनाई बढ़ जाती थी।

आधुनिक तुर्की भाषा की कतिपय समस्याएँ

अरबी-फारसी के प्रचलित शब्द

तुर्की भाषा के सुधार के सम्बन्ध में आरम्भ से ही यह समस्या थी कि अरबी-फारसी के किन शब्दों को तुर्की में रखा जाय तथा किन्हें बहिष्कृत किया जाय। बहुत पहले भी अरबी-फारसी के अप्रचलित शब्दों को तुर्की से निकालने का प्रयत्न किया गया था। बाद के सुधारकों ने विदेशी व्याकरण के नियमों के अनुसार शब्दों की बनावट पर रोक लगा दी। इसके अतिरिक्त उन्होंने अरबी-फारसी के उन आवश्यक शब्दों को भी बहिष्कृत कर दिया जिनके पर्याय चलित तुर्की में उपलब्ध थे। भाषा-परिषद् ने एक कदम और आगे बढ़ाया। उसने शुद्धीकरण की सीमा निर्धारित नहीं की तथा प्रचलित एवं अप्रचलित विदेशी शब्दों के अन्तर को भी स्वीकार नहीं किया। इस सम्बन्ध में परिषद् समय-समय पर अपना मत बदलती भी रही। भाषा-सुधार के प्रथम चरण (सन् १९३२-३४) में परिषद् यथासम्भव प्रत्येक विदेशी शब्द को तुर्की भाषा से बहिष्कृत करना चाहती थी। बाद में उसने चालू विदेशी शब्दों को अस्थायी रूप में रखना स्वीकार कर लिया। 'सोलजुक' के प्रकाशन के पूर्व तथा उसके बाद परिषद् ने अपनी उदार नीति का त्याग कर दिया था, किन्तु छठें भाषा-परिषद् (सन् १९४९) के बाद उसने पुनः उदार नीति का अवलम्बन किया। सिद्धान्त रूप में परिषद् प्रत्येक विदेशी शब्द को बहिष्कृत करने के पक्ष में थी, किन्तु व्यवहार में वह उन गैर-तुर्की शब्दों को निकालने में असमर्थ थी जो शब्द तुर्की शब्द-समूह के अंग बन गये थे।

तुर्की भाषा में सब से अधिक विदेशी शब्द अरबी-फारसी के हैं। इन शब्दों को निम्नलिखित पाँच भागों में विभक्त किया जा सकता है:—

(क) ऐसे संज्ञावाची शब्द जिन्हें तुर्की भाषा में अनूदित नहीं किया जा सकता; यथा—बुलबुल, कहवा आदि।

(ख) दैनिक जीवन-सम्बन्धी वे शब्द जो इस्लामी संस्कृति के साथ तुर्की में आये हैं, यथा—दुकान, हमाम, पर्दा आदि।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(ग) प्रचलित धर्म-प्रबंधी तथा कानूनी शब्द; यथा—परी, नमाज आदि।
(घ) साधारण शब्द ; यथा—दोस्त, कबूल आदि।
(ङ) विशिष्ट शब्द; इनके सम्बन्ध में आगे लिखा जायेगा।

ऊपर के क, ख, ग तथा घ विभागों के शब्दों को भाषा-परिषद् ने अपने कोषों में किसी न किसी रूप में स्थान दिया है जिससे स्पष्ट हो जाता है कि परिषद् उन्हें तुरन्त वहिष्कृत करना नहीं चाहती। अब देखना यह है कि इन शब्दों की क्या विशेषता है जिससे ये शुद्धीकरण से वचे रहे हैं। सब से पहली बात इन शब्दों के सम्बन्ध में यह है कि (क) समूह के कतिपय शब्दों को छोड़कर इन चारों समूह के शब्द वहु-प्रचलित हैं। इस्तम्बोल की साधारण जनता इन शब्दों का प्रयोग करती है और इनमें से कई शब्द तो बोलचाल के मुहावरों में प्रयुक्त होते हैं। इसके अतिरिक्त ये प्रायः एक या दो अक्षरों (syllables) के संक्षिप्त शब्द हैं। इनमें से अनेक शब्दों के उच्चारण में भी काफी परिवर्तन हो गया है क्योंकि अरबी के 'से' तथा 'सीन' वर्ण तुर्की में एक ही प्रकार से उच्चरित होते हैं। जब से तुर्की रोमन-लिपि में लिखी जाने लगी है तब से इन दो वर्णों को पृथक् अखरौटी का भेद भी मिट गया है। इनमें से कई शब्दों में तो विदेशी द्वित्व वर्ण के स्थान पर केवल एक ही वर्ण रह गया है; यथा—हम्माल (कुली) तुर्की में हमाल हो गया है। इसी प्रकार कई शब्दों में स्वर का उच्चारण अपने मूल रूप में न होकर तुर्की की भाँति होता है; यथा—आदम > आदेम।

इन विभागों के कई विशेषण-शब्दों में, विशिष्ट भाव-द्योतन के लिए, तुर्की की भाँति ही आनुप्रासिक उपसर्गों का प्रयोग होता है; यथा—बेम्बेयाज अत्यधिक धवल, सिम् सियाह, अत्यधिक कृष्ण। कतिपय विदेशी शब्दों में तुर्की—लेमेक—सेमेक प्रत्ययों को जोड़कर उन्हें क्रिया पदों में परिवर्तित कर दिया जाता है; यथा—हाजिर-लमाक—तैयार करना; मुहिम सेमेक—महत्त्वपूर्ण समझना। इनमें से कई शब्द तो तुर्की में नये अर्थ में प्रत्युक्त होते हैं, यथा—तुर्की, फेना 'उच्छेद', अरबी, फना; तुर्की, पाजार, 'रविवार', फ़ारसी, बाजार। इनमें अधिकांश शब्द ऐसे हैं जिनके तुर्की में पर्याय नहीं मिलते और यदि मिलते भी हैं तो बहुत पहले से ही उनके स्थान पर ये विदेशी शब्द प्रयुक्त हो रहे हैं; यथा—तुर्की 'गोज़ु' के स्थान पर अरबी आइना, 'दर्पण'।

इन कारणों से ऊपर के चारों समूह के शब्द तुर्की शब्द-समूह के अंग हो गये हैं। किन्तु इससे यह न समझना चाहिए कि अरबी-फारसी के जिन शब्दों में ध्वन्यात्मक अथवा व्याकरण-सम्बन्धी परिवर्तन नहीं हुए हैं उन्हें विदेशी समझना चाहिए तथा जिनमें इस प्रकार के परिवर्तन हुए हैं उन्हें स्वदेशी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तुर्की शब्द मानना चाहिए। अन्य भाषाओं में विदेशी-स्वदेशी-सम्बन्धी सिद्धान्त है, वह तुर्की भाषाओं में नहीं लागू होता। सच तो यह है कि जिस प्रकार अँगरेजी में अन्य भाषाओं से अनेक शब्द उधार लिये गये हैं उसी प्रकार तुर्की में भी अनेक शब्द अरबी-फारसी से उधार लिये गये हैं। इसका एक परिणाम यह हुआ है कि तुर्की की मूल ध्वनि में किंचित् अन्तर आ गया है।

विशिष्ट विदेशी शब्द

यद्यपि (घ) तथा (ङ) समूह के शब्दों के बीच सीमा निर्धारित करना कठिन है तथापि इसमें सन्देह नहीं कि (ङ) समूह के शब्द, शेष चार समूह के शब्दों से भिन्न हैं। ये अधिकांश शब्द भाववाचक हैं और ये प्रायः अरबी-फारसी के तुर्की अनुवाद के साथ आये हैं। १९वीं शताब्दी तक सांस्कृतिक दृष्टि से ये शब्द महत्वपूर्ण माने जाते थे और तुर्की में इनके पर्याय होते हुए भी लोग इन्हें विशिष्ट मानकर व्यवहृत करते थे। (क), (ख), (ग), (घ) समूहों के शब्दों से ये इस बात में भी भिन्न हैं कि इनके शब्द-रूप अरबी-फारसी के व्याकरणानुसार हैं। इनमें से अनेक शब्द तीन अक्षरों के हैं और इनके मूल अर्थ में प्रायः बिल्कुल परिवर्तन नहीं हुआ है। अरबी अक्षरों में इनकी अखरौटी अरबी की भाँति ही है। इनमें से अनेक शब्द एक धातु से ही प्रसूत हुए हैं—यथा, इल्म (علم) से **इलिम्, उलूम, आलिम, उलेमा, अल्लामे, मालूम, मालुमात, मुअल्लिम, मुअल्लेम, तालिम, तालिमात, इलाम, ताल्लुम, इस्तिलाम** आदि।

अँगरेजी, फ्रेंच आदि भाषाओं में भी ग्रीक, लैटिन आदि भाषाओं से शब्द उधार लिये गये हैं और यह कहा जा सकता है कि अरबी-फारसी से तुर्की में लिये गये शब्द उसी प्रकार के हैं। किन्तु वास्तव में बात ऐसी नहीं है, और तुर्की में उधार लिये गये शब्दों तथा अन्य भाषाओं में उधार लिये गये शब्दों में बहुत अन्तर है। अँगरेजी तथा फ्रेंच में ग्रीक-लैटिन भाषाओं के जो शब्द उधार लिये गये हैं उनकी अखरौटी अँगरेजी-फ्रेंच के अनुसार ही है। इसके अतिरिक्त इनमें अँगरेजी-फ्रेंच प्रत्ययों का ही प्रयोग होता है, किन्तु तुर्की में अरबी-फारसी से उधार लिये गये शब्दों के सम्बन्ध में यह बात नहीं है। इन शब्दों की अखरौटी, इनके प्रत्यय तथा अर्थ आदि मूल अरबी-फारसी के ही रह गये हैं। यही कारण है कि राष्ट्रीयता के वातावरण में पले हुए युवक तुर्कों की इन शब्दों के प्रति तनिक भी सहानुभूति नहीं है।

अरबी-फ़ारसी के विशिष्ट शब्दों के विरुद्ध इस शताब्दी के आरम्भ में ही युद्ध-घोषणा हुई थी। सब से पहले सुधारकों की दृष्टि विदेशी प्रत्ययों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तथा विदेशी व्याकरण के अनुसार वने हुए रूपों की ओर गयी और उन्होंने मुख्यतया इजाफत तथा अरवी-फारसी ढंग से वने हुए बहुवचन वाले शब्दों को वहिष्कृत किया। इस प्रकार के शब्द वोलचाल की तुर्की में नहीं व्यवहृत होते थे किन्तु साहित्य तथा लिखित भाषा में ये प्रयुक्त होते थे। इस कार्य में सुधारकों को पर्याप्त सफलता मिली। इसका फल यह हुआ कि अरवी-फारसी के अनेक ऐसे शब्द तुर्की से वहिष्कृत हो गये। भाषा-परिषद् इस सम्बन्ध में और भी आगे बढ़ी। कतिपय इजाफतवाले साधारण शब्द (जैसे, 'दृष्टिकोण' के लिए 'नुकतए नज़र') तथा विदेशी ध्वनिवाले शब्द अभी भी तुर्की में रह गये थे। परिषद् ने इन्हें भी निकालने का प्रस्ताव किया। सच वात तो यह है कि भाषा-परिषद् को विदेशी व्याकरण के आधार पर वने हुए बोलचाल के साधारण शब्द भी असह्य थे। वस्तुतः इन शब्दों को, तुर्की में सुरक्षित रखने में, परिषद् राष्ट्र-भाषा का अपमान समझती थी। भाषा-परिषद् का एक यह भी तर्क था कि चूँकि अरवी-फारसी का अध्ययन-अध्यापन तुर्की में वन्द हो गया अतः नयी पीढ़ी के युवक इन्हें समझने में असमर्थ हैं। सुधारकों का यह स्पष्ट मत था कि जनभाषा तक पहुँचने में ये शब्द वाधक हैं। सर्वेक्षण से इस वात का भी पता चला कि अशिक्षित जनता अरवी-फारसी शब्दों का प्रयोग अत्यल्प मात्रा में करती है। अतएव ऐसे शब्दों से तुर्की भाषा को मुक्त करना ही श्रेयस्कर है।

तुर्की शब्दों के अरवी-फारसी पर्याय

हाल तक अनेक विदेशी शब्द तुर्की-शब्दसमूह के अंग रहे क्योंकि इनके तुर्की पर्याय उपलब्ध न थे, किन्तु कभी-कभी तुर्की में उपयुक्त पर्याय उपलब्ध होने पर भी ये शब्द व्यवहृत होते रहे। इस प्रकार के शब्द विशेष रूप से साहित्य में ही चलते रहे। जब बोलचाल की तुर्की को साहित्य का आधार बनाने का आन्दोलन परिचालित हुआ तो इन विदेशी शब्दों का स्वतः छूट जाना अनिवार्य हो गया। 'जल' के लिए तुर्की शब्द 'सु' है किन्तु लिखित भाषा में इसके स्थान पर अरवी 'मा' तथा फारसी 'आव' शब्द प्रयुक्त होते थे। भाषा-सुधार-आन्दोलन के परिणामस्वरूप अरवी-फारसी के ये शब्द तुर्की भाषा से स्वतः निकल गये।

विदेशी शब्दों के व्यवहार का एक कारण तुर्की काव्य-रचना के लिए अरवी-फारसी छन्दों का प्रयोग भी था। तुर्की में दीर्घ स्वर का अभाव है। इसके लिए कवियों को अरवी-फारसी के दीर्घ अक्षरवाले शब्द लेने पड़ते थे। सुधारकों ने जव तुर्की छन्दों का प्रयोग प्रारम्भ किया तव इन विदेशी शब्दों की आवश्यकता न रह गयी।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सुधारकों का कहना था कि बहुत से लोग तो अरबी-फारसी शब्दों का व्यवहार अपनी शिक्षा-दीक्षा तथा सुसंस्कृति प्रदर्शित करने के लिए करते हैं। ऐसे लोग साधारण तुर्की शब्दों को गँवारू और उन्हीं के पर्यायवाची अरबी-फारसी शब्दों को प्रतिष्ठावाची समझते थे। इस मत के माननेवाले लोगों का कहना था कि प्रत्येक देश के ललित-साहित्य की तथा बोलचाल की भाषा में प्रयुक्त होनेवाले शब्दों में अन्तर होता है। इसके अतिरिक्त पर्यायवाची शब्दों के प्रयोग से शैली में सम्पन्नता, सुन्दरता तथा विशेषता आ जाती है। अपने मत की पुष्टि में ये लोग अँगरेजों का उदाहरण देते थे। इनके अनुसार अँगरेजी की सम्पन्नता का मुख्य कारण यह था कि वह किसी भी विदेशी भाषा से आवश्यकतानुसार शब्द ग्रहण कर लेती है।

भाषा-परिषद् के आलोचकों के मतानुसार ओटोमन साहित्य के लेखक तथा सुधारवादी, दोनों दो छोरों पर थे। यदि ओटोमन के साहित्यिकों की यह गलती थी कि वे अपनी रचना में अन्धाधुन्ध अरबी-फारसी शब्दों का व्यवहार करते थे, तो दूसरी ओर सुधारकों का यह दोष था कि वे सभी विदेशी शब्द को तत्काल बहिष्कृत कर देना चाहते थे। इनके अनुसार इस प्रकार के जबरदस्ती सुधार का यह परिणाम था कि तुर्की से अनेक मूल्यवान् तथा सूक्ष्म भावों को व्यक्त करनेवाले शब्द बहिष्कृत हो रहे थे।

भाषा-परिषद् के मत के समर्थकों का कथन था कि अरबी-फारसी के एक-एक शब्द के लिए तुर्की में कई पर्यायवाची शब्द उपलब्ध हैं जो नितान्त सूक्ष्म भावों को प्रदर्शित करने में समर्थ हैं।

उदार मतवादियों के अनुसार भाषा की सम्पन्नता की दृष्टि से, तुर्की शब्दों के साथ-साथ बोलचाल में व्यवहृत विदेशी शब्दों को भी सुरक्षित रखना आवश्यक था। वे दैनिक जीवन तथा मुहावरों में प्रयुक्त होनेवाले विदेशी शब्दों के निष्कासन के विशेष रूप से विरोधी थे। उनके मतानुसार सांस्कृतिक दृष्टि से भी कतिपय विदेशी शब्दों को सुरक्षित रखना आवश्यक था। इसी प्रकार जहाँ नये तुर्की शब्द ठीक रूप से भाव-प्रकाशन में असमर्थ थे वहाँ अरबी-फारसी शब्दों को भी रखना जरूरी था।

इन आलोचनाओं का भाषा-परिषद् की कार्यवाही पर प्रभाव पड़े बिना रह न सका। सन् १९५१ के अपने एक वक्तव्य में इसके महामंत्री ने यह विचार प्रकट किया—जो विदेशी शब्द विशेष अर्थ द्योतित करते हैं उन्हें तुर्की पर्याय के साथ सुरक्षित रखना उचित है। सच बात तो यह है कि अब भाषा-परिषद् भी इस बात का अनुभव करने लगी थी कि तुर्की का शब्द-समूह क्रमशः संकुचित हो रहा है तथा शब्दों का प्रयोग करके अर्थ देने के अधिकारी कवि एवं लेखक ही होते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यूरोपीय भाषाओं से उधार लिये गये शब्द

ओटोमन तुर्की ने यूरोपीय भाषाओं से भी अनेक शब्द ग्रहण किये थे। इन शब्दों को दो मुख्य भागों में विभाजित किया जा सकता है—

(क) पुराने शब्द जिन्हें तुर्की भाषा ने अनातोलिया में राज्य स्थापित करने के समय से १९वीं शताब्दी तक ग्रहण किया था। इस युग में, तुर्की में, पड़ोस की भाषाओं से अनेक शब्द लिये गये थे। इनमें से मुख्य भाषाएँ ग्रीक, इतालीय, हुंगेरीय, स्लाव आदि हैं। इन शब्दों को तुर्की ने अपने पड़ोस की जातियों से सुनकर ग्रहण किया था। इनमें से अधिकांश शब्द विविध वस्तुओं के नाम हैं। ये शब्द प्रायः जन-साधारण तक में प्रचलित हैं और इसके फलस्वरूप इनमें पर्याप्त मात्रा में ध्वन्यात्मक-परिवर्तन भी हुआ है। आज ये शब्द तुर्की शब्द-समूह के अंग हो गये हैं और कोई भी सुधारक इन्हें वहिष्कृत करने की वात तक नहीं सोचता।

(ख) किन्तु तुर्की में अधिकांश शब्द फ्रेंच भाषा से उधार लिये गये हैं। ये शब्द गत डेढ़ सौ वर्ष में, टर्की के पश्चिमीकरण के साथ आये हैं। इनमें से अधिकांश शब्द पश्चिम के नये विचारों को व्यक्त करने के लिए ग्रहण किये गये हैं। किन्तु कतिपय शब्द अरबी-फारसी शब्दों के पर्याय रूप में भी आये हैं। इनके ध्वनि एवं अर्थ में काफी परिवर्तन हो गया है, और ये शब्द भी तुर्की शब्द-समूह में घुल-मिल गये हैं।

भाषा-परिषद् ने यूरोपीय भाषाओं से उधार लिये गये शब्दों की कभी भी चिन्ता न की। उसका एकमात्र लक्ष्य अरबी-फारसी शब्दों को वहिष्कृत करना था। एक ओर जहाँ अरबी-फारसी शब्द तुर्की भाषा से निकाले जा रहे थे, वहाँ दूसरी ओर योरोपीय भाषाओं से नये-नये शब्द ग्रहण भी किये जा रहे थे। वास्तव में यूरोपीय शब्दों की स्वीकृति अतातुर्क की पश्चिमीकरण-नीति के अनुकूल थी। अतएव ये शब्द तुर्की भाषा में प्रेम के साथ अपनाये जा रहे थे। इसके अतिरिक्त अरबी-फारसी शब्दों की भाँति यूरोपीय भाषाओं के शब्द तुर्की के लिए घातक भी न थे क्योंकि ये तुर्की-ध्वनि एवं व्याकरण के अनुकूल वन गये थे। रोमन-लिपि की स्वीकृति एवं पश्चिमी साहित्य तथा विज्ञान के प्रभाव के कारण भी तुर्की में अनेक यूरोपीय शब्दों का ग्रहण करना अनिवार्य-सा हो गया। एक वात और थी। नवीन विचारों एवं ज्ञान-विज्ञान को व्यक्त करने के लिए तुर्की में शब्दों का अभाव भी था। यद्यपि भाषा-परिषद् के विद्वान् यूरोपीय शब्दों की वाढ़ को भी रोकना चाहते थे तथापि इसमें वे असफल रहे। शासन एवं सेना के सुधार के साथ भी अनेक नये यूरोपीय शब्द तुर्की-भाषा में आये।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यूरोपीय शब्दों के ग्रहण करने के सम्बन्ध में अरब देशों, इजराइल तथा ईरान की टर्की से तुलना काफी दिलचस्प होगी। अरबी, हिब्रू तथा फारसी में जहाँ सायकिल, ड्राइवर, स्टेशन, फैक्टरी जैसे शब्दों के लिए भी प्रतिशब्द गढ़े गये हैं वहाँ तुर्की में निर्बाध गति से यूरोपीय भाषाओं के शब्द ग्रहण किये जा रहे हैं।

पारिभाषिक शब्द

भाषा के सुधार तथा विकास पर दृष्टि रखते हुए तुर्क लोग तुर्की शब्द-समूह को दो वर्गों में विभाजित करते हैं—(१) साधारण शब्द, (२) विशिष्ट अथवा पारिभाषिक शब्द। जहाँ तक प्रथम वर्ग के शब्दों का प्रश्न है, सुधारवादियों का मुख्य उद्देश्य तुर्कीकरण था। जैसे-जैसे अरबी-फारसी शब्दों के तुर्की प्रतिरूप मिलते गये, सुधारवादियों ने विदेशी शब्दों को निकालकर उनके स्थान पर इन्हें रखा। ये शब्द बोलचाल अथवा साहित्यिक तुर्की से लिये जाते थे। किन्तु दूसरे वर्ग के शब्दों की बात सर्वथा भिन्न थी। सुधारवादियों का कहना था कि किसी भी भाषा में पारिभाषिक शब्द विकसित होकर नहीं आते किन्तु उन्हें विद्वान् गढ़ते हैं। इन शब्दों की यह विशेषता होती है कि ये उपयुक्त तथा स्पष्ट होते हैं और निर्धारित सिद्धान्त के अनुसार गढ़े जाते हैं।

तुर्क लोगों ने जब इसलाम धर्म को ग्रहण किया था तो अन्य इस्लाम-धर्मावलम्बी देशों की भाँति, उन्होंने अपने पारिभाषिक शब्द अरबी से लिये थे। १९वीं शताब्दी में जब पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव से नये पारिभाषिक शब्दों की आवश्यकता पड़ी तब ओटोमन तुर्कों ने अरबी तथा फारसी से ही शब्द गढ़े। नये युग में जब तुर्की भाषा को प्रतिष्ठापित करने का प्रश्न आया तो उस समय भी पारिभाषिक शब्द अरबी-फारसी से ही गढ़े गये, यद्यपि यूरोपीय भाषाओं से भी कतिपय शब्द ग्रहण किये गये। किन्तु अतातुर्क के अधिनायकत्व में, रिपब्लिकन दल के हाथ में शक्ति आते ही तुर्की का नक्शा ही बदल गया। अब तुर्क लोग इस्लामी सभ्यता तथा संस्कृति से विमुख हो गये, स्कूलों में अरबी-फारसी का अध्ययन-अध्यापन बन्द हो गया तथा रोमन लिपि चालू हो गयी।

इस परिस्थिति में अरबी-फारसी के पारिभाषिक शब्द बेकार हो गये। इसके दो कारण थे—प्रथम, रोमनलिपि में लिखित अरबी शब्द लोगों के लिए दुर्बोध्य हो गये, दूसरे पुराने पारिभाषिक शब्द अपर्याप्त थे। ओटोमन तुर्की में अनेक पारिभाषिक शब्द उपलब्ध न थे और ज्ञान-विज्ञान की उन्नति के साथ-साथ इस अभाव को पूरा करना आवश्यक था।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पारिभाषिक शब्दों के सम्बन्ध में भाषा-परिषद् ने नये मार्गों का अवलम्बन किया। उसने फ्रेंच, जर्मन तथा अँगरेजी कोशों की सहायता से पारिभाषिक शब्दों की सूची तैयार की तथा ओटोमन तुर्की में उपलब्ध इनके पर्यायों की जाँच की। इन सभी पर्यायों को भाषा-परिषद् ने अस्वीकार कर दिया और उनके स्थान पर या तो अन्तर्राष्ट्रीय शब्दों को या तुर्की शब्दों को रखा।

साधारण विदेशी शब्दों के लिए बोलचाल की तुर्की में पर्याय प्राप्त कर लेना सरल था किन्तु पारिभाषिक शब्दों के सम्बन्ध में काफी कठिनाई थी। इनके प्रतिरूप न तो बोलचाल की भाषा ही में मिलते थे और न प्राचीन साहित्यिक भाषा में ही उपलब्ध थे। नये शब्दों का गढ़ना भी आसान न था। पश्चिमी भाषाओं, विशेषतया जर्मन में उपसर्ग, प्रत्यय तथा समास की सहायता से नूतन शब्दों के गढ़ने की पूर्ण क्षमता है। किन्तु तुर्की तथा सामी भाषाओं में इस शक्ति का अभाव है। कुछ हद तक तुर्की ने अपने में यह शक्ति पैदा की।

भाषा-परिषद् ने पारिभाषिक शब्दों को दो मुख्य भागों में बाँट रखा है। पहले भाग में वे शब्द आते हैं जो प्राइमरी तथा मिडिल (छठीं से आठवीं) कक्षाओं में प्रयुक्त होते हैं। दूसरे भाग में वे शब्द हैं जो इससे ऊपर की कक्षाओं (९वीं से ११वीं) में व्यवहृत होते हैं। जहाँ तक प्राइमरी तथा मिडिल कक्षाओं में प्रयुक्त होनेवाले पारिभाषिक शब्दों का प्रश्न है ये सभी तुर्की के हैं। भाषा-परिषद् के विचार में, देश को साक्षर बनाने तथा शिक्षा के शीघ्र प्रसार के लिए यह आवश्यक है कि शिक्षा की भाषा को दैनिक जीवन की भाषा के निकट लाया जाय। अतएव 'एलेक्ट्रिक' तथा 'डायनमो' जैसे कतिपय विदेशी शब्दों को छोड़कर, भाषा-परिषद् ने स्कूल की पाठ्य-पुस्तकों में तुर्की भाषा के पारिभाषिक शब्दों को ही स्थान दिया। सन् १९३९ की स्कूली पाठ्य-पुस्तकों में जो पारिभाषिक शब्द प्रयुक्त हुए थे वे ऊपर के ढंग से ही बनाये गये थे। भाषा-परिषद् के आँकड़ों के अनुसार पाँच हजार पारिभाषिक शब्दों में से, पहले केवल नौ प्रतिशत शब्द तुर्की भाषा के थे, किन्तु अब प्रायः अस्सी प्रतिशत शब्द खाँटी तुर्की हैं।

साधारणतया जो लोग भाषा-परिषद् की शुद्धीकरण की नीति को पसन्द नहीं करते थे उन्होंने भी तुर्की पारिभाषिक शब्दों का स्वागत किया तथा सभी लोगों ने इस बात को स्वीकार किया कि अरबी पारिभाषिक शब्दोंकी अपेक्षा तुर्की के ये शब्द सरल तथा बोधगम्य हैं। प्राणिशास्त्र तथा वनस्पतिशास्त्र के पारिभाषिक शब्दों के सम्बन्ध में भी यही बात थी। तुर्की के पारिभाषिक शब्द प्रायः जर्मन आदर्श पर गढ़े गये थे।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, उच्च कक्षाओं के पारिभाषिक शब्दों के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सम्बन्ध में पहले भाषा-परिषद् ने अपनी शुद्ध भाषावाली नीति अपनायी तथा बॉयालोजी, बोटेनिक जैसे अन्तर्राष्ट्रीय शब्दों को भी पाठ्य-पुस्तकों से निकालकर इनके बदले शुद्ध तुर्की शब्दों को रखा किन्तु १९४९ के छठें भाषा-परिषद् के अधिवेशन के बाद भाषापरिषद् की नीति में परिवर्तन हुआ और उन्होंने निश्चित नियम के आधार पर प्रगतिशील राष्ट्रों में प्रचलित अन्तर्राष्ट्रीय शब्दों को स्वीकार किया। अब तो परिषद् ग्रीक एवं लैटिन के कतिपय पारिभाषिक शब्दों को व्यवहृत करना ऐतिहासिक दृष्टि से आवश्यक मानती है।

अन्तर्राष्ट्रीय-पारिभाषिक शब्दों की अखरौटी तथा उनका उच्चारण किस रूप में हो यह आज तुर्की की एक समस्या है। इसका समाधान तीन ढंग से सम्भव है—यह कि फ्रेंच रूप में उच्चरित किया जाय तथा इसी रूप में इन्हें लिखा भी जाय, अथवा इनके मूल उच्चारण तथा अखरौटी को सुरक्षित रखा जाय या इन्हें तुर्की रोमक लिपि में लिखकर अखरौटी के अनुसार इन्हें उच्चरित किया जाय। सन् १९५० में भाषा-परिषद् ने निश्चय किया था कि अन्तर्राष्ट्रीय पारिभाषिक शब्दों को तुर्की व्याकरण एवं उच्चारण के नियमों का अनुगमन करना चाहिए। इन शब्दों के सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय करने के पूर्व परिषद् ने इनकी अखरौटी के विषय में एक प्रश्नावली तैयार की और विद्वानों के पास उसे भेजकर उनकी सम्मति ली। उदार सुधारवादी अन्तर्राष्ट्रीय पारिभाषिक शब्दों की अखरौटी मूल भाषा की ही रखना चाहते थे, किन्तु परिषद् उच्चारणानुसार अखरौटी के पक्ष में थी। परिषद् के कतिपय सदस्यों की तो यहाँ तक राय थी कि व्यक्तिवाचक विदेशी नामों को भी मूल अखरौटी के अनुसार न लिखकर उच्चारणनुसार ही लिखना चाहिए, किन्तु इसके साथ-ही-साथ मूल अखरौटी भी कोष्ठ में दी जानी चाहिए। इधर हाल में तुर्की में, विदेशी (विशेषतया यूरोपीय) शब्दों की अखरौटी व्युत्पत्ति के अनुसार दी जाने लगी है।

यह तो हुई यूरोपीय भाषाओं से लिये गये पारिभाषिक शब्दों की बात। अरबी-फारसी के इसप्रकार के शब्दों की बात इससे अलग है। भाषा-परिषद् इन भाषाओं के शब्दों को तुर्की में नहीं रखना चाहती और जनता में प्रचलित अरबी-फारसी शब्दों के लिए भी वह तुर्की पर्याय ही देना उपयुक्त समझती है। वह अरबी के **'अक़्ल'**, **'ज़ेक'** (बुद्धि), **'तबीअ'** (प्राकृतिक) जैसे जन-प्रिय शब्दों के स्थान पर भी तुर्की के **'उस'** **'अनलक'** तथा **'दोगल'** जैसे शब्दों को बिठाना चाहती है। उदार मतवादी भाषा-परिषद् की इस शुद्धीकरण की नीति को पसन्द नहीं करते। उनका कहना है कि थोड़े से अरबी-फारसी शब्दों से तुर्की भाषा को हानि नहीं पहुँच सकती। इसके अतिरिक्त जो शब्द जीवित-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भाषा में हैं तथा जनप्रिय हैं उन्हें निकालना उचित नहीं है। उदार मतवादियों के विचार का प्रभाव इधर भाषा-परिषद् पर पड़ा है। और उसने इस बात को विज्ञापित भी किया है कि पारिभाषिक शब्द जीवित भाषा से लिये जायेंगे किन्तु कौन-सी भाषा जीवित है, इसे भाषा-परिषद् ने स्पष्ट नहीं किया है।

परिभाषा-विषयक शब्दों के निर्माण-सम्बन्धी वाद-विवाद का यह परिणाम प्रतीत होता है कि कदाचित् ये शब्द अन्ततोगत्वा इस्तम्वोल विश्वविद्यालय के सुझाव के अनुसार बनेंगे। जहाँ तक ओषधि-विज्ञान (मेडिकल) के शब्दों का प्रश्न है, विद्वानों के अनुसार इनके दो रूप हैं—(१) राष्ट्रीय स्वास्थ्य, (२) अन्तर्राष्ट्रीय विज्ञान। रोगी से बातें करने के लिए डॉक्टर को तुर्की भाषा के शब्दों की आवश्यकता है किन्तु शिक्षा एवं अनुसन्धान के लिए ग्रीक एवं लैटिन पारिभाषिक शब्दों की जरूरत है। ओषधि-विज्ञान विभाग ने इन शब्दों को निम्नलिखित तीन वर्गों में विभक्त किया है—

(क) ओषधि तथा रोग सम्बन्धी वे शब्द जो जनसाधारण में प्रचलित हैं, ये सभी शब्द केवल तुर्की भाषा के होने चाहिए।

(ख) इसप्रकार वे शब्द जिन्हें साधारण शिक्षित लोग तक जानते हैं—इसके अन्तर्गत तुर्की, एवं अरबी-फारसी तथा ग्रीक-लैटिन के भी कतिपय पारिभाषिक शब्द आ सकते हैं।

(ग) वे शब्द जिनका प्रयोग केवल डाक्टर लोग आपस में करते हैं। ऐसे शब्द अन्तर्राष्ट्रीय होने चाहिए, किन्तु इनकी अखरौटी तुर्की भाषा की होनी चाहिए। इसके साथ ही, इनकी मूल अखरौटी भी कोष्ठ में रखनी चाहिए।

विदेशी शब्दों के तुर्की पर्याय

विदेशी शब्दों के बहिष्कार में तभी सफलता सम्भव है जब उनके पर्यायवाची तुर्की शब्द मिलें। इस सम्बन्ध में तुर्की भाषा-सुधारकों को अनेक सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक समस्याओं का समाधान करना पड़ता है और कई प्रश्नों का तो वास्तव में समाधान हो भी नहीं पाता।

भाषा-परिषद् ने निम्नलिखित सिद्धान्तों के आधार पर विदेशी शब्दों के लिए तुर्की पर्याय ढूंढ़े—

(क) विदेशी शब्दों के लिए आधुनिक साहित्यिक-भाषा से तुर्की शब्द चुनकर; यथा—वफात (मृत्यु) के लिए ओलुम।

(ख) बोलचाल की भाषा तथा तुर्की बोलियों से शब्द लेकर; यथा—खेल के लिए गोर्कम्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(ग) तुर्की भाषा से लुप्त प्राचीन शब्दों को पुनर्जीवित करके; यथा—अतिथि के लिए **कोनुक्** तथा साक्षी के लिए **तानिक्**।

(घ) प्राचीन तुर्की ग्रन्थों तथा टर्की से वाहर वोली जानेवाली इस परिवार की अन्य भाषाओं से शब्द लेकर; यथा—राष्ट्रपति के लिए **बश्कन्**।

(ङ) उपलब्ध तुर्की शब्दों को विशिष्ट अर्थ में प्रयुक्त करके; यथा—**उरुन**, मूल अर्थ में गोरस (dairy product) सम्बन्धी वस्तुएँ, किन्तु विशिष्ट अर्थ में वस्तुएँ।

(च) वस्तुवाची तुर्की शब्दों को भाववाची वनाकर; यथा—**कथनक**, पानी का सोता, किन्तु भाववाची अर्थ में उत्पत्ति अथवा मूल।

(छ) विदेशी शब्दों को अक्षरशः तुर्की में अनूदित करके; यथा—**बकन्**, मंत्री। अरवी **नाजिर** से यह शब्द वना है। नाजिर का शाब्दिक तुर्की शब्द **बक्** है। इसी से **बकन्** शब्द वनाया गया है।

(ज) विदेशी शब्दों को तुर्की ध्वनियों के अनुसार उच्चरित करके; यथा—अरवी कुव्वेत को **कुवेत** तथा अँगरेजी स्पोर्ट को **इस्पोर** रूप में उच्चरित करके।

(झ) अनेक प्रकार के सामासिक शब्द वनाकर; यथा—**ते-केल** (एक-हाथ); एकाधिपत्य अर्थ में; **यु-जिल** (सौ-वर्ष), शताब्दि अर्थ में।

(ञ) उपसर्ग जोड़कर; यथा—**उस्त** (उपरि) + इन्सान > **उस्तिन्सान**, मानवोपरि।

(ट) प्रयत्नों से नये शब्द वनाकर; यथा—अरा (व्यक्तियों के सम्बन्ध) में **चि** प्रत्यय जोड़कर **अराचि** शब्द बना जिसका अर्थ है, मध्यस्थ।

(ठ) विदेशी भाषाओं—फ्रेंच, अरवी, आदि के शब्दों को तुर्की-ध्वनियों के अनुकूल वनाकर; यथा—**ओकुल** (फ्रेंच ecole. स्कूल), **तेरिम्** (फ्रेंच, terme, अँगरेजी, term), **बेलेतिन**, (फ्रेंच तथा अँगरेजी bulletin), दायलेक (फ्रेंच, dialecte, अँगरेजी dialect,) **कमुन** (फ्रेंच, Commune), **नोमल** (फ्रेंच-अँगरेजी normal) आदि। इसीप्रकार अरवी 'इरादे' को तुर्की **इर्दे** में परिणत कर दिया गया है। कहीं-कहीं तो विदेशी एवं तुर्की ध्वनियाँ एक-सी हैं किन्तु इसे वास्तव में संयोग ही समझना चाहिए। भाषा-परिषद् इस वात को नहीं स्वीकार करती। उसके अनुसार तो ये सभी शब्द तुर्की धातुओं से ही निर्मित हुए हैं; यथा—तुर्की धातु, **ओकु** 'पढ़ना' से **'ओकुल'**; **तेर**, आधुनिक तुर्की धातु, देर, चयन करना' से **'तेरिम्'**; तुर्की, **बेल्ले,** 'कंठाग्र करना' से **'बेलेतिन्'**। यहाँ यह वात स्मरण रखनी चाहिए कि ध्वनि-परिवर्तन द्वारा ये नये शब्द

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उस समय बनाये गये थे जब तुर्की में 'पुत्र-भाषा सिद्धान्त' का जोर था और जब लोग ये मानते थे कि विश्व की सभी भाषाएँ तुर्की से निकली हैं। भाषा-परिषद् इन नये शब्दों को उसी प्रकार से सिद्ध करती है जिस प्रकार अपने देश में संस्कृत को विश्व की भाषाओं की जननी माननेवाले लोग पाणिनि के सूत्रों से मियाँ, मुलुक, मौलना तथा डियाँ, डुलुक, डोलना सिद्ध करते हैं। आज सभी भाषाओं में अनेक ऐसे शब्द हैं जिनकी लोग परम्परा से जनश्रुति-प्रचलित-व्युत्पत्ति (Folk Etymology) देते आ रहे हैं। तुर्की भाषा तथा इस प्रकार की व्युत्पत्ति में अन्तर यह है कि यहाँ जान बूझ कर इस प्रकार की व्युत्पत्ति दी जाती है।

विदेशी शब्दों के बदले जिन स्रोतों से तुर्की के नये शब्द लिये गये हैं, उनका सापेक्षिक-महत्त्व, भाषा-परिषद् द्वारा प्रस्तुत किये गये निम्नलिखित आँकड़ों से स्पष्ट हो जाता है। ये आँकड़े विदेशी शब्दों के ८७५२ तुर्की-पर्याय के आधार पर तैयार किये गये हैं—

५४ प्रतिशत बोलचाल की तुर्की से लिये गये हैं।

२० प्रतिशत शब्द ऊपर के शब्दों में प्रत्यय लगाकर बनाये गये हैं।

५ प्रतिशत शब्द तुर्की के बाहर की बोलचाल की तुर्की भाषाओं से लिये गये हैं।

५ प्रतिशत शब्द इन बाहरी तुर्की भाषाओं में प्रत्यय लगाकर बनाये गये हैं।

६ प्रतिशत अरबी-फारसी के वे शब्द हैं जो आधुनिक तुर्की में घुल-मिल गये हैं।

१० प्रतिशत शब्द इन घुले-मिले शब्दों में प्रत्यय जोड़ कर बनाये गये हैं।

इधर हाल में भाषा-परिषद् ने अन्य तुर्की भाषाओं से शब्द उधार लेना बन्द कर दिया है क्योंकि इन शब्दों को जनता पसन्द नहीं करती। दूसरी ओर परिषद् ने समास तथा प्रत्ययों द्वारा अनेक नये शब्दों का निर्माण किया है। इस रीति से नये शब्दों के निर्माण की कहाँ तक गुंजायश है, इस अनुसन्धान में आज भी परिषद् व्यस्त है।

भाषा-परिषद् ने अरबी धातुओं से बने हुए शब्दों के स्थान पर तुर्की धातुओं से निर्मित शब्दों को रखने का सफलतापूर्वक प्रयत्न किया है। तुर्की भाषा में प्रचलित आज के नये शब्द, इस बात को स्पष्टतया प्रकट करते हैं कि जनता की विचारधारा किस रूप में परिवर्तित हो गयी है तथा प्राचीन आदर्शों के बदले किस रूप में जनता ने नये आदर्शों को ग्रहण किया है। लोग आज उपनिवेशवाद से कितनी घृणा करते हैं, यह भाव सोमुर्गे तथा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मोमुर्मक शब्दों से प्रकट होता है। इनमें से प्रथम का अर्थ 'उपनिवेश' तथा दूसरे का अर्थ 'निगलना' है। संविधान के लिए तुर्की **अन्यास** शब्द प्राचीन तुर्की—मंगोल भाषा **'यास्'** (स्मृति) से बनाया गया है। इससे यह भाव स्पष्टतया द्योतित होता है कि आज के राष्ट्रवादी तुर्की किस प्रकार अरबी-फारसी के विदेशी-शब्दों के बदले तुर्की के बाहर की तुर्की भाषाओं से शब्द लेना उपयुक्त समझते हैं। इसी प्रकार **बस रिलि** तथा **येनेर** शब्द तुर्की की धर्म निरपेक्ष भावना को द्योतित करते हैं। इन शब्दों के अर्थ हैं—स्व-अर्जित सफलता। ये शब्द आज अरबी-शब्द 'मुवफ्फक' तथा 'मन्सूर' या 'मुजफ्फर' शब्दों के बदले चालू हो रहे हैं जिनका अर्थ है 'ईश्वरप्रदत्त सफलता'।

सुधारवादियों ने मुख्यरूप से विदेशी शब्दों के निष्कासन तथा उनके बदले तुर्की शब्दों को प्रचलित करने का ही सर्वाधिक प्रयत्न किया है, किन्तु भाषा के प्रधान तत्त्व वाक्य एवं वाक्य-विन्यास पर उन्होंने बिल्कुल ध्यान नहीं दिया है। इसका परिणाम यह हुआ कि अनुवाद में प्रायः विदेशी वाक्य-विन्यास ज्यों-के-त्यों आ गये हैं। साहित्यिक लोग स्वाभाविक रीति से यह बात पसन्द नहीं करते।

तुर्की शब्द-समूह की वर्तमान स्थिति

भाषा-सुधारकों को आधुनिक तुर्की-शब्द-समूह को बदलने में कितनी सफलता मिली है, इसका आज निश्चयात्मक रूप से उत्तर देना कठिन है क्योंकि अभी तक परिनिष्ठित तुर्की भाषा का वास्तविक रूप सामने नहीं आ सका है। आज तुर्की समाचारपत्रों, शासन, कानून, स्कूली पाठ्य-पुस्तकों तथा उच्च साहित्य की भाषा में उल्लेखनीय अन्तर है। साहित्य के एक ही क्षेत्र में कार्य करनेवाले लेखकों की भाषा में भी पर्याप्त अन्तर है क्योंकि प्रायः प्रत्येक व्यक्ति अपनी रुचि के अनुसार शब्दों का चयन करता है। फिर भी तुर्की भाषा के शब्द-समूह के सम्बन्ध में, कतिपय सामान्य बातें उल्लेखनीय हैं।

साधारणतया तुर्की समाचारपत्रों की भाषा बोलचाल के इतना निकट रहती है कि उसे प्रायः निरक्षर लोग भी समझ जाते हैं। चूंकि तुर्की में प्रायः मासिक पत्रों का अभाव है, अतएव विद्वान् लोग भी दैनिक समाचारपत्रों में ही लिखते हैं। परिनिष्ठित भाषा के विकास पर इसका बहुत अच्छा प्रभाव पड़ रहा है। कतिपय समाचारपत्रों की भाषा दो अन्तों की होती है। इनमें से एक छोर पर कुछ तो ऐसी भाषा का प्रयोग करते हैं जो आज से बीस वर्ष पूर्व प्रचलित थी और जिनमें अधिकांश शब्द अरबी-फारसी के ही होते हैं। दूसरे छोर पर वे समाचारपत्र हैं जो तुर्की-शब्दों के अतिरिक्त अरबी-फारसी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शब्दों को बिल्कुल प्रयोग नहीं करते । साधारण समाचारपत्रों की भाषा इन दोनों के बीच की होती है। कभी-कभी एक ही वाक्य में अरबी-फारसी तथा तुर्की के नवीन शब्दों का विचित्र संगम रहता है। प्रतिष्ठा-द्योतन के लिए भी समाचारपत्रों में कतिपय अरबी-फारसी शब्द प्रयुक्त होते हैं, किन्तु अनेक अरबी-फारसी शब्द एवं वाक्य केवल हास-परिहास में ही आते हैं और इनका अधिकतर प्रयोग व्यंग्य-चित्रों में होता है। यह सब होते हुए भी समाचारपत्रों की भाषा में आज भी लगभग ४० प्रतिशत शब्द अरबी-फारसी के हैं।

नयी पीढ़ी की भाषा पर पाठ्य-पुस्तकों की भाषा का प्रभाव है। प्रारम्भ के चार वर्षों की रीडरों में अरबी-फारसी शब्द अल्प मात्रा में हैं। यह उल्लेखनीय बात है कि प्रारम्भिक प्राइमर में **'और'** के लिए अरबी **'वे'** संयोजक नहीं प्रयुक्त होता । इसी प्रकार इसमें नवनिर्मित शब्दों का अभाव है और केवल तुर्की-शब्द प्रयुक्त हुए हैं। ऊपर की कक्षाओं में नवनिर्मित शब्द क्रमशः अधिक संख्या में प्रयुक्त होते हैं। चौथी कक्षा की इतिहास की पुस्तक में **ओलय्** (घटना) **उय्गर्लिक** (सभ्यता), **ओजेत** (सारांश), **एत्कि** (प्रभाव), एवं **उलुसल** (राष्ट्रीय) शब्द प्रयुक्त हुए हैं। नवनिर्मित शब्द अधिकांशतः, विज्ञान की पाठ्यपुस्तकों में प्रयुक्त होते हैं।

आधुनिक साहित्य की भाषा के सम्बन्ध में, साधारणतया कुछ भी कहना कठिन है। यहाँ प्रत्येक लेखक देशी तथा विदेशी शब्दों का चुनाव अपनी रुचि के अनुसार करता है। इस सम्बन्ध में इतना ही कहना पर्याप्त है कि अधिकांश लेखक नव-निर्मित शब्दों का बहुत कम प्रयोग करते हैं किन्तु अरबी-फारसी शब्दों के स्थान पर वे तुर्की के बोलचाल के शब्दों का प्रयोग अवश्य करते हैं। इसके फलस्वरूप आधुनिक तुर्की भाषा में अरबी-फारसी शब्दों की संख्या धीरे-धीरे कम होती जा रही है। दूसरी ओर साहित्य में यथार्थ चित्रण के साथ-साथ अनेक ग्रामीण मुहावरे तथा शब्द धड़ल्ले के साथ आ रहे हैं।

तुर्की में कानून की भाषा में बहुत कम परिवर्तन हुआ है। जिस प्रकार इंगलैण्ड में १८वीं शती तक फ्रेंच कानूनी शब्दों का प्रयोग होता था उसी प्रकार तुर्की के वकील आज भी कचहरियों में अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग करते हैं।

शासन की भाषा का सम्बन्ध प्रायः शासकों से होता है। अतातुर्क तथा उनके उत्तराधिकारी अरबी-फारसी शब्दों के अत्यधिक विरुद्ध थे, अतएव उनके शासन-काल में तुर्की शब्दों का ही शासन में अधिक प्रयोग चलता था। किन्तु सन् १९५० के चुनाव के बाद, भाषा के विषय में, शासन ने उदार-नीति का अवलम्बन किया और अरबी-फारसी के अनेक पुराने प्रचलित शब्द पुनः

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चालू किये गये किन्तु भाषा-सुधार के परिणामस्वरूप अनेक नवनिर्मित शब्दों का प्रयोग भी शासन में होता है।

तुर्की के भाषा-सुधार-आन्दोलन की तुलना इसी प्रकार के नार्वे एवं मध्य पूर्वी योरप तथा एशिया के भाषा-सुधार-सम्बन्धी आन्दोलनों से की जा सकती है। फिन्नो-उग्रीय वंश की भाषा हुंगेरीय की विशुद्धीकरण नीति का भी तुर्की के आन्दोलन पर विशेष रूप से प्रभाव पड़ा क्योंकि तुर्की के अनेक भाषाशास्त्रियों की शिक्षा-दीक्षा बुडापेस्ट में हुई थी। आधुनिक जर्मन भाषा के विकास का भी अत्यधिक प्रभाव तुर्की-भाषा-सुधारकों पर पड़ा। इन सुधारकों ने भाषा-सुधार-विषयक योजना को जनता के सामने रखते हुए वारंवार जर्मन भाषा का उदाहरण दिया। तुर्की पर जर्मन भाषा के प्रभाव के अनेक कारण हैं। इनमें से पहला कारण यह है कि तुर्की का राष्ट्रीय आन्दोलन वहुत-कुछ १९वीं शताब्दी के जर्मन राष्ट्रीय आन्दोलन के समान है। दूसरी वात यह है कि तुर्की में उच्च शिक्षा प्राप्त लोग केवल जर्मन भाषा से परिचित हैं और विदेशी शब्दों के सम्वन्ध में तुर्की और जर्मन की समस्या समान है। इन कारणों से जर्मन-भाषा के विशुद्धीकरण की नीति का वहुत-कुछ प्रभाव तुर्की भाषा के सुधार में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है और जिस प्रकार जर्मनी में इस नीति का विरोध हुआ था उसी प्रकार टर्की में भी इसका विरोध हुआ।

ऊपर तुर्की तथा जर्मन भाषाओं की समानता का उल्लेख किया गया है किन्तु कई वातों में तुर्की की समस्या सर्वथा भिन्न एवं जटिल है। इनमें पहली वात यह है कि जर्मनी के विपरीत तुर्की में भाषा-सुधार का कार्य परम्परागत प्रचलित लिपि एवं भाषा के वहिष्कार से प्रारम्भ हुआ। आज का तुर्क अपने प्राचीन साहित्य में न तो आस्था ही रखता है और न उसमें अपने लिए कुछ आदर्श ही पाता है। दूसरी वात यह है कि ओटोमन तुर्की में विदेशी शब्दों के रूप में केवल अरवी-फारसी के शब्द हैं। इन दोनों में से किसी का तुर्की से वंशगत सम्वन्ध नहीं है क्योंकि अरवी सामी भाषा है और फारसी भारोपीय परिवार की। यही कारण है कि तुर्की अरवी-फारसी शब्दों को आत्मसात् न कर सकी। तीसरी वात इस सम्वन्ध में यह है कि विदेशी अरवी-फारसी शब्दों के वाहुल्य के कारण ओटोमन तुर्की अशिक्षित एवं निरक्षर जनता के लिए अवोधगम्य थी। यही कारण है कि जव जनसाधारण को साक्षर एवं शिक्षित वनाने का प्रश्न सामने आया तव भाषा को सरल वनाना आवश्यक हो गया और सुधारकों को स्वर्ण अवसर मिल गया। अन्तिम वात इस सम्वन्ध में यह है कि सुधारकों को केवल भाषा की ही शुद्धि नहीं करनी थी अपितु पारिभाषिक शब्दों से भी उसे पूर्ण वनाना था। ओटोमन तुर्की में पारिभाषिक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शब्दों का अभाव था और ज्ञान-विज्ञान के प्रसार के साथ इनमें निर्माण करना आवश्यक था।

तुर्की भाषा के सुधारकों से चाहे जो भी भूलें हुई हों, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि सुधार का परिणाम शुभ ही हुआ है। इससे तुर्की भाषा विकसित एवं समृद्ध हुई है। इसने विद्वानों का ध्यान तुर्की भाषा की रूपरेखा तथा उसके इतिहास के अध्ययन की ओर प्रवृत्त किया है। अब तुर्की भाषा सरस, सरल एवं बोधगम्य बन गयी है तथा धीरे-धीरे वह नव-निर्मित पारिभाषिक शब्दों से भी पूर्ण हो रही है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अनुक्रमणिका

[क] भाषा, बोली तथा लिपि

अर्द्धमागधी—६३
अपभ्रंश—१४३
अरबी-फारसी—१०१, ११२, १४७, १८७, १८८, १९३, १९४, १९५, १९६, १९७, २०१, २०३, २०६, २०७, २०९, २१०, २११, २१२, २१३, २१५, २१९ ।
अरबी—१, २, १६०, १८५ १८६, १८८, १८९, १९०, १९१, १९८, २०१, २०२, २०३, २०८ २१३, २१७
अवधी—६३, १४९
अक्षरात्मक लिपि, ७९
अंग्रेजी—३, ७९, ११३, १४२, १४३, १४८, १४९, १५२, १५३, १५४, १५७, १५८, १६२, १६३, १६५, १६६, १६८, १७०, १७३, १७९, १८१, २०९, २११, २१७
आर्माइक—८३, ८४, ९१, ९३ ।
इतालीय—७९, १५७, २१२
उर्दू—११०, १४७, १४९, १५२
उड़िया—७९, १०३, ११०, १४०, १५२, १७०
एलामीय—८१
ओटोमन तुर्की—१८६, १८७, १८८
कन्नौजी—१४९
कन्नड़—७९, ९७, १०७, ११०, १४०, १४१, १४७, १५२, १५६, १५८, १७०
करनी—१०३
कश्मीरी—९८, १४०, १४२, १५२
कश्टवारी—१००
कावुलीय—८२
कांस्पर्शेली—१७४
कुटिल—९८, १०१
कुल्लई—१००
कुम्रोयु—१७१
किठठाली—९९
क्रिटीय—७५, ८१, ८६
केल्टिक—१
कैंटनी—१७१
कैथी—१०१, ११०
कोइने—१५३
कोछी—१००
कोल—१७०
खड़ी बोली—१४९
खरोष्ठी—८०, ८२, ८४, ८५
खुड़वाड़ी १००, १०१

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गुरुंग—१७०
गुजराती—७६, ११०, १११, ११३, ११७, १४०, १४१, १५२, १५६, १५८, १७०
गुरुमुखी—६८, १०१, ११०, ११३
गुप्तब्राह्मी—६७
ग्रथ—११३
गार्थिक—१, १६०
ग्रीक—१, ६, २८, ८५, ८६, ८६, ६२, १४३, १५०, १५३, २०६, २१२, २१५, २१६
गोरखाली—१०३, ११३
घासशैली—१७४
चमेम्रोली—६६
चित्रलिपि—७५, १७३
चीनी—१, ५, २६, ३१, ३६, ८०, ८३, १३०, १६८, १७०, १७३, १७७, १८१
छत्तीसगढ़ी—१४६
जर्मन—३, ७, ६, १४३, १४६, १५७, १५८, १६०, १७०, २१४, २२१
जापानी—५, १६८
जौनसारी—६६
टक्री—६८, ६६, १००
डैनिश—१५६
डोग्री—६६
तमिल—७६, ८२, ८६, १०३, १०३, १०७, ११०, १४०, १४१, १४७, १५२, १५५, १५६, १५८, १७०
तलंग—६८
ताज़िकी—१८५
तिब्बती—६८, ११४
तिब्बती-चीनी ७४, १७०
तिब्बती-वर्मी—१०३
तिरहुती १०१, १०२
तुर्की—७६, ११२, ११४, १८७, १८८, १६३, १६४, १६५, १६६, १६७, १६८, १६६, २००, २०१, २०२, २०३, २०४, २०५, २०६, २०७, २०८, २०६, २१०, २११, २१२, २१३, २१४, २१५, २१६, २१७, २१८, २१६, २२०, २२१, २२२
तेलगू—७६, ६७, १०३, १०७, ११०, ११३, १४०, १४७, १५२, १५५, १५६, १७०
तोखारी—६७
थाई—१०८, ११४
दक्षिणी सामी —६०
द्रविड़ ८२, ८५, ८६, १५० १६५,
देवनागरी—१०७, १११, ११३, १२२, १२३, १२५, १६४, १६८
ध्वन्यात्मक लिपि—७८
घावितशैली—१७४
नन्दिनागरी—१०५
नागलिपि—१०४
नागरी १०३, १०६, १११, ११२, १२२
नार्वेजियन—१५८
नेपाली—७६, १०३, १४२
नेवारी—१०३, ११३
पश्तो—१८५

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पहाड़ी—१००, १७०
पंजाबी—१४०, १४१, १४२, १४९, १७०
पाई हुआ—१७९
पालि—२६, २७, २८, २९, ३१, ३५, ३७, ३९, ४३ ४७, ४९, ५०, ५३, ५६, ५७, ५९
प्राकृत—२९, ८८, १४३
पुरानी खोतनी—९७
फारसी—१८६, १०५, १८५, १८९, २०३, २१३,
फिन्नो उग्रीय—२२१
फ्रेंच—२, ६०, ७९, १४३, १५७, १५८, २०९, २१२, २१४, २१५, २१७, २२०
फोनेशीय—९०, ९१, ९३
बघेली—१४९
बटक लिपि—९८
बर्मी—९८, १०८
वल्कल शैली—१७४
बरेली—१४७
ब्रज—१४९
बंगला ६३, ७९, १०२, ११०, १११, ११३, १४०, १५२, १५५, १५६, १५८, १६५, १७०, १८५
ब्राह्मी—८०, ८२, ८३, ८४, ८५, ९३, ९४, ९५, ९७, ९८, ११०, १११।
बांगरू—१४९
बिहारी—१०१, १७०
बुन्देली—१४९
बैक्ट्रो-पालि २९, ८२, ८५
भाव-लिपि—७५, ७८
भारत-ईरानीकुल—१८५
भारोपीय परिवार—२, १४३, १७०, १८५
भोजपुरी—६३, ७९, १०१
मगही—६३, १०२
मनीपुरी—१०३
मराठी—७९, १४०, १५२, १५५, १५६, १७०,
मलयालम—७९, १०७, ११०, ११३, १४०, १४१, १४७, १५२, १५६, १७०
महानमुद्रा शैली—१७४
मागधी—४४
मुण्डा परिवार—१७०
मुल्तानी १००
मैथिली—७९, १०२, ११३,
मंडारिन—१७१, १७५, १७६, १७८
मंडेआली—९९
यिडिश—१६०, १६१, १६२
राजस्थानी—१४९, १७०
रूसी—३, ११२, १५८, १६८, १७६
रैटो रोमांस—१५७
रोमन लिपि—७९, १०५, १०८, १०९, ११०, १११, ११२, ११४, १६०, १९०, २१२, २१३
लण्डा—९८, १००, १०१
लहँदा—१००
लिपिक शैली—१७४
लिपिक शैली—१७४
लैटिन—१, २, ६, ६०, १४३,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

१७६, १८१, १८२, १८३, १८४, २०६, २१५, २१६
वर्णनात्मक लिपि—७६, ११४
वाणमुख—८२
शाहवाज-गढ़ी—८२
शारदा—६८, १००, ११३
सौरसेनी अपभ्रंश—१०४
संस्कृत—१, २, ३, ८, १०, २२, २६, ४३, ५३, ५७, ५८, ६१, ६३, ८१, ६७, १०४, १३७, १४३, १४६, १५०, १५५, २१८
सामीकुल—१८५
सामी—८२, ८६, ६३, १०६, ११४
सिन्धी—१००, १०१, ११०, १४०, १४१, १४२
सिरमौरी—६६
सिंहली—२७, ३५, ३८, ४७ ५१, ५४, ५६, ५७, १०८, ११४, १४२, १५८
सुमेरीय—८१
हिन्दी—३, ६३, ७६, १०६, १०७, ११३, १४०, १४१, १४२, १४८, १४६, १५०, १५३, १५५, १५६, १६३, १६६, १६७, १६८, १७०,१७३
हिन्दुस्तानी—१०८, ११८, १६३
हिब्रू—२, ३, १६०, १६२, २१३
हुँगेरीय—२१२, २२१

[ख] स्थान-नाम

अल्बैनिया—१८७
अरब—६०, १६१, २१३
अफ्रीका—१०७, ११४, १५८, १६५
अनुराधापुर—३५, ५६, ५८,
अहमदाबाद—१४३
अफगानिस्तान—८५
असीरिया—६१
अमरावती—१६३
अयोध्या—१४६
अलीगढ़—१४३
अटक—८
असम—१०१, १०५, १०७, १४७
अमरीका—४, ५, ७, ७८, ११३, १३६, १५३, १५८, १६१, १७६
अंकारा—२०१, २०६
ऑक्सफोर्ड—१३७
आगरा—१३६, १४५, १४७
आस्ट्रेलिया—७५, १५३
आर्यावर्त—१५४
इजराइल—१६०, १६१, १६२, २१३
इलाहाबाद—१०६, १४५
इस्तम्बोल—१८६, १८६, १६२, १६४, १६६, २०१, २०२, २०६, २०८, २१६
इंगलैंड—१४८, १६८
इंडोनेशिया—६८, ११२
उड़ीसा—१०१, १०३
उत्कल—१०७, १४७
उज्जैन—१४५

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उत्तरप्रदेश—१०१, १०४, ११३, १२१, १२२, १३६, १४२, १४३, १४६, १४७, १५२
एशिया—६७, ६८, ११२, ११४, १४८, १५८, १७१
कनाडा—१५३
कन्नौज—१५६
कम्बोडिया—६८, ११४
कलकत्ता—१५२, १६४
कलकत्ता विश्वविद्यालय—१०६, १३७
कश्मीर—१२, १४
काम्पिल्प—१४६
काशगर—८३
काञ्चीपुरम—१०४
काशी—६, १४६, १५५
कुरुनगल—५८
कुरुक्षेत्र—१४३
केम्ब्रिज—१०७, १३७
केरल—१०४
केलिफोर्निया—७८
कैंटन—१७०
कैंडी—५६
कोयम्बटूर—१३६, १४३
कौशाम्बी—१२, २४
गुजरात—१०४, १०७, १४७,
गया—१०२
ग्लालिय १४३
गंजाम—१०३
गोश्रा:—११०
गोरखपुर—४३
घोषिताराम—२४
चिदम्बरम—१३६
चम्वा—६६
चीनी तुर्किस्तान—८२
चीन—१५७, १६८, १७०, १७१, १७२, १७४, १७५, १७६, १८२, १८३, १८४
जबलपुर—१४५
जर्मनी—१३७, १५७
जम्बूद्वीप—३४, ४२, ४७, ५२
जयपुर—१४५
जापान—१५७, १६८
जावा—६८
जेतवन—५८
जोधपुर—१४५
जौनसार—६६
टर्की—१८५, १८६, १८९, १९०, २०२, २०५, २१२, २१३, २१६, २२१
ट्रावनकोर—१४३
डेनमार्क—४, १५८
तक्षशिला—८३
तुखार—८३
तित्थगाम—५६
दक्षिण पंजाव ११३
दिल्ली—११३, १४३, १४५, १४७, १५२, १५५
देहरादून—१३६, १४३
धारवाड़ १४३
नालन्दा—१०८, ११३,
नार्वे—१५८, १६०
निधनपुर—१०४
नेपाल—१०१, ११३
पटना—१०२, १४५
पंजाब—८, ८०, १००,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

१०५, १४२, १४४, १४६, १५०, १६४
प्रयाग—१०६, १४४, १४६
प्राहा (स्कूल) ४, १८५
पाकिस्तान—८०
पाटलिपुत्र—१२
पुलित्थिपुर—५८
पूना—१३६, १४३, १४४
पेकिंग—१७०, १७५, १७६, १७८
पेरिस—१३७
फरीदपुर—१०२
फारस—८३
फ्रांस—७५, १५७, १६१
फिलीपाइन्स—६८, १७१
फिलिस्तीन (पैलेस्टाइन) १६०, १६१
फोनेशिया—७५, ८६
बनारस—१४३
बम्बई—१५२
बर्मा—२०, ४८, ४६, ५०, ५२, ५३, ५४, ५५, ५७, ५८, ५६, ११५
बलूचिस्तान—८५
बंगाल—१०१, १०६, १०७, १६४
बालीद्वीप—६८
बोधगया—६७
बिहार—१०१, १०२, ११३, १४२, १४३, १४५, १४६, १५०, १५२, १५५, १७०
भारत—६, ८०, ८४, ८७, ८६, ६०, ६३, ६७, १०४, १०६, १०७, १०८, १५७, १६०, १६३, १६६, १७०
मथुरा—१२, १४६
मद्रास—६४, १०७, १०६, १३६
मध्यएशिया—८५, १६६
मध्यदेश—१५५
मध्यप्रदेश—६४, ११३ १४२, १४३, १४६, १५२, १७०
महाराष्ट्र—१०४, १०६, १०७, ११३, १४७, १६४
मिस्र—७५
मेरठ—१४५, १४७
मोहनजोदड़ो—८०
यवतमाल—१६३
यूरोप—५, ६, १०८, १३७, १४८, १५८, १६०, १६१
राजस्थान—१०३, १०५, १०३, १४२, १४३, १४६, १५२
रायपुर—१४५
राँची—१४५
रुढ़की—१४५
रूस—१५७, १५८ ,१६८, १७७, १७८,
लखनऊ—१२१, १४५
लन्दन—१०८, १३७, १५२
लंकाद्वीप—४७, १०४
वर्धा—१०७, १६३
विजयनगर—१०५
विद्यापीठ काशी—१४५
वाल्टेयर ६०, १४३
वैशाली १६
शांतिनिकेतन विश्वविद्यालय—१४४

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

श्रावस्ती—१७, १४६
शिमला—९९
शंघाई—१७१, १७२, १७७
शालातुर—८
सहारनपुर—१४७
सभा दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार १०७
सम्मेलन काशी हिन्दी साहित्य ११७
सभा काशी नागरी प्रचारिणी १०६, १०९
स्याम ५४, ९८
संयुक्त राज्य अमेरिका १४८, १५७
स्पेन—७५, १५७
सागर—९४, १४५
साकेत—१२
स्यालकोट—९९
स्विटजरलैण्ड—१५७
सिन्धुघाटी—८०, ८६
सिंघल—३५, ४२, ५२, ५३, ९८, ११४
सिंगापुर—१७१
सिंध—१००, १०७, १४७
सीलोन—१६, १९, २०, २५, २६, ३५, ३९, ४४, ४६, ४७, ४८, ४९, ५२, ५७
सूरत—१०६
सेलिबीज—९८
हड़प्पा—८०
हरियाणा—१५२
हारवर्ड—११३
हिन्दचीन—९८
हिन्देशिया—९८
हिन्दू विश्वविद्यालय—८१
हिमांचल प्रदेश ११३, १५२,
हैदराबाद—१००, १५३

[ग] व्यक्ति-नाम

अतातुर्क—१८९, १९०, १९७, १९८, २०२, २०६, २१२, २१३, २२०
अनातोलिया—१८७, १९५ २१२
अरिमद्दन—५४, ५५, ५७, ५९
अशोक—२६, २९, ५२, ८२, ८५, ९४
अय्यर बी० कृष्ण स्वामी—
आइन्स्टाइन—१६१
आसेन इबार—१५९, १६०
इनोनु—१९८, २०२, २०६,
उदाल एच.जे.—४
ओझा गौरीशंकर हीराचंद—८६
क्यच्वा—५५, ५९
क्रोष्टा—११
क्रुजवस्की—४
कस्सप—४
कल्हण—१४
कच्चायन —२८, ४३, ४४, ५४, ५६
कनिंघम—८०, ८६, ९४
कमालपाशा—१९१
कात्यायन—१, ८, ११, १२, १३७

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कारल्डवेल—१३७
काश्यप जगदीश—२६
कार्जन लार्ड—१६५
कार्लमार्क्स—१६१
कालेलकर काका—११५
किलहार्न डाक्टर—१२
कुडसेन—१५६, १६०
केम्पलेन—३
कौत्स—६
कौसल्यायन भदन्त आनन्द ३८, ३६
खाइम लाइट्ज मैन—१६१
खानखोज डा० पांडुरंग सदाशिव—१६३
गांधीजी—१०७, ११६, १६३, २६५, १६६
गाइगर—४३
ग्रियर्सन—१३७
गेन्शकालेम्लेर—१८८
गैड सी० जे०—८१
गोणिका पुत्र—१२
गोरखप्रसाद डा०—११८
गोर्ड स्कूटर डा०—८
गोनर्दीय—१२
गौतम बुद्ध—१७, २१, २२, ३७
चांगकाई शेक—१७७
च० च्युपाई०—१७६
चटर्जी सुनीतिकुमार —१०६, १११, ११२, १३७
चन्द्र गोमिन—५६
चन्द्राचार्य—१४
चट्टोपाध्याय बंकिमचंद्र —१६४
चक्रवर्ती एस० एन०—१०२
चूर्णिकार—१२
चाऊ एन लाई—१८२
जयापीड—१४
जयादित्य—६
जॉन मार्शल—६०
जार्ज स्टैक—१००
जिया पाशा—१८६
जेम्स प्रिंसेप—८६
जेम्स वाई० सी० यन० —१७६
जोर्गेन जोर्गेन्सन—४
जोन्स विलियम—१, २
जोतिपाल—४६
जोसेफ हाल्वे—८६
टंडन पुरुषोत्तमदासजी—१०६, १०७, १०८, १६५
ट्रम्प—१३७
टर्नर—६३, १३७
टामस एडवार्ड—८५
टेलर—६०
डाउसन—८६
डिके—६०
डी० जोयसा—५६, ५७, ५६,
डेविड डिरिंगर—८३, ८४, ८६, ८८, ६१, ६३
तारापुरवाला जे. एस० —१३७
तिलक—८८, १०६, १०६
तुर्कशे सोजलुक—२००
थूपाराम—५६, ५८,
दत्त माइकेल मधुसूदन—१६४
दयानन्द सरस्वती—१६३

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दीपङ्कर—२१, ५४
देव पुरुषोत्तम—८, १५
धम्मपाल—४१, ४३, ५२
धातुसेन—४३
नाइडा—४
नागनाथ—१२, १३
नागार्जुन—१४९
नागसेन—२८, २९, ३०, ३१, ३२, ३३, ३४, ३५
नीलकंठ—१५
नेमिक केमाल—१८६
नरेन्द्रदेव—११७, १२१, १६५, १६९
प्राणनाथ डा०—८१
प्रेमचन्द—१४८
पटक्कमभुज—५६, ५८
पटक्कमवाहु—४४
पतंजली—१, ८, ११, १२, १३, १४, १५, १३७, १५४
पराक्रमवाहु—१०५
पाइक—४
पाणिनि—१, २, ३, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२, ५६, ५७, १३७, १५३, १५४
परमानन्दजी भाई—१६४
पाल विपिनचन्द्र—१०६
पुनर्वसु—११
पुष्यमित्र—१३
फॉसवेल—५४, ५९
फांके आर० ओ०—१८, ४३, ५३, ५७, ५८
फिंक—३
पलीट—९४
फँज वोग्रा—३५
फर्निडनेण्ड डी० सस्योर—४, १८५
फणीश्वरनाथ रेणु—१४८
फुकयन—१७१
व्लाख—१३७
व्लूमफील्ड—३, ४, ५, ३९
वावर—९९
वालकृष्ण दीक्षित—८७
वापू—१०९, १४७
वालकृष्ण शर्मा 'नवीन'—१५५
वाल वान्धव—१६३
वार्नेट एल० डी०—१०४
वीम्स—१३७
वीरसेन—३१
वुद्ध—१६, १७, २४, २९, ३०, ३२, ३४, ३६, ३७, ४३, ४७, ४८, ५१, ५२
वुद्धघोष—२६, २७, २८, ३५, ३६, ३७, ३९, ४०, ४१, ४३, ५०
वुद्धदत्त—४०, ४१, ४७, ५२
वूलर—८३, ८४, ८६, ८८, ९०, ९४, ९५, ९७, ९८, १०२
वेलवेलकर—१३
भर्तृहरि—१३, १४, १५
भण्डारकर—८
भट्टाचार्य एच० के० —९६
भारद्वाज—११
भास्कर वर्म्मन—१०४
महिन्द—१६, २६

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मालवीय मदनमोहन—१०६, १०७, १६५
मिलिन्द—२८, २६, ३१, ३२, ३३, ३५
मिनाण्डर—१३, २८
मूलर ओ०—८६
मूलर फ्रेडरिक—३
मेहनत एमिन—१८८
मेरी हास—४
मेघंकर—४७, ५६
मैकी० इ० जे० एच० —८१
मैक्समूलर—८, १०५, ११३
मैकडानेल एन्थेनी—१०६
मोग्गल्लिपुत्त—१६, २६
मोगलान—१६, ५३, ५४, ५५, ५६, ५८
यकोब्सन रोमन—४
यलिएज़रमेन—१६१, १६२
यास्क—६१
योनक—५३
राजाधिराज विलासिनी ५१
राजसिंह ५६
राजवली पाण्डेय—८३, ८५, ८८
राजेन्द्रलाल मित्र—१२
राजेन्द्र बाबू—१०७
राममोहन राय राजा—१६४
रामदास—७४
रामवृक्ष वेनीपुरी—१४८
रोंग—१७०
रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर —१३७
राहुल सांकृत्यायन—५४, ५६, ५७, १४८
लाला लाजपतराय—१०६, १६४
लिओनार्ड ग्लैशियर—१६२
लुई हेम सेव—४
लुकन चैंग—१७२
लैसेन—८६
लैंग्डेन एस—८१
लैंडमल—१५६, १६०,
वत्स मधुस्वरूप—८०
व्याघ्रभूति—११
वल्लभभाई पटेल—१०८
वात्सायन—१३
वररुचि—११
वानडेर गैवेलेंज—३
वान हम्बोल्ट—३
वॉडविन डि० पुर्तने—४
वासुदेवशरण अग्रवाल—१२
विजयबाहु—४७, १०५
विल्हेम गाइगर—३६
विंटनिर्टज़—२५
विल्सन—८६
विलिस—३
विष्णुमित्र—१५
वुण्ड—३
वुलनर ए० सी०—१३७
वू० यू० चंग—१७१, १७६ १७०
वेबर—८
वैयाघ्रपाद—११
वेलवेलकर—१२
शंकराचार्य—१३
शिवाजी—७४
शेषविष्णु—१५
शेषनारायण—१५

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शिवरामेन्द्र—१५
शशांक—१०४
श्रीनिवास—११८,११९
शेम्सेद्दीन—१८७
सन्त कन्फ्युशस—१७४
सर राल्फ लिली टर्नर—१३८
सत्यव्रतसामाश्रमी—८
सन्त विनोबा—१६७
साहनी दयाराम—८०
सावरकर वन्धु—११५
सारिपुत्त—१८, ५६
साभी शेम्सेद्दीन १९४
स्मिथ एस०—८१
स्टिथल—३
सिंहसेन—३१
सुचाउ—१७१,१७२
सुमित्र मंगेश कत्रे—१३७
सुधीर मुखमंडन—५९
सुभाषचन्द्र बोस—७८
सुर सेन—३१
सूफी अम्बाप्रसाद—१६४
सोजलुक—२०१,२०७
हंसराज लाला—१६४
हंटर जी० आर०—८१
हरमन पाउल—३
हर्षवर्द्धन—९८, १०४, १०५
हॉंग चाउ—१७१, १७२
हार्नले—१३७
हिमांशु श्रीवास्तव—१४८
श्री ह्यूम—१०६
हूफं वेंजामिन—४, ६
ह्वेन सांग—४१
हेमहोल्ज—३
हेरॉस—८२
हैटिस जैलिग—४

[घ] ग्रन्थ-नाम

अग्गवंस—५७
अट्ठकथ—२६, २७
अभिधानप्पदीपिका—५३, ५७, ५८
अभिधम्म पिटक—१६, २५, ३६
अमरकोश—५८
अष्टाध्यायी—२, ९, १०, ११, १५३
अरियवंस—५०, ५२, ५९
आर्य भाषाओं का तुलनात्मक कोश—६३
ऋग्वेद—८०, ९०
कच्चायन-धातु मंजूसा—५८
कच्चायन सार—५५
कच्चायन-वण्णना—५५
कथावत्थुप्पकरण—१६
कामसूत्र—१३
भविकल्पद्रुम—५८
किलावुज—१९६, १९७, २०५
कैयट महाभाष्य—१३
कैयट महाभाष्य प्रदीप—१५
कारक पुप्फ मंजरी—५९
गन्धवंस—५२, ५४, ५६, ५८
गीता—२०
चरक-टीका—१३
चुल्ल सद्दनीति—५३, ५७
जाम्ववती-विजय—९

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जातकट्ठकथा—४०

जिनालंकार—४७

तरमादेर्गिंसि—१६४, १६५, १६७

त्रिकाण्डशेष कोष—८

त्रिपिटक (तेपिटक), १६, १८, २०, २१, २२, २६, २८, ३२, ३५, १०८

थेरी गाथा—२०, २१

दीपवंस—१६, ३५, ४२, ४३, ५२

द्विरूप-कोश—६

धम्मपद—२०, २६, ३७

धम्मकित्ति—५४

धम्मपदट्ठकथा—४०

धातुपाठ—५३, ५८

धात्वत्थदीपिनी—५३, ५८

धातुमंजूषा—५३, ५८

निघण्टु—६१

नेपाली शब्दकोष—६३

पयोगसिद्धि—५३, ५६

पातालविजय—६

पंचतंत्र—६

प्रातिशाख्य—६६

पालि -त्रिपिटक—११४

बाइबिल—४

महाभाष्य—११, १४

महावंस—१६, ४२, ४३, ५०; ५२

मिलिन्दपञ्हों—२८

राजतरंगिणी—१४

रूपसिद्धि—५३, ५४

लघुकौमुदी—५४

लिनत्थसूदनी—५५

लोकप्पदीपसार—४६

वेद—१५३

विनयपिटक—२२, २३, ३५, ४०, ४२, ४४, ४६

वाम्यवदीय—१४

सद्धम्मोपायन—४६

सद्धम्मविलास—५५

सद्धम्म संग्रह—५४

सर्वज्ञन्याय दीपनी—५६

सारत्थ दीपिनी—४४

सारसंग्रह—४८

सुत्तपिटक—१८, ३५

सिंघली अट्ठकथा—३६

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection